पुस्तक सं. 2052
जयपुर

* श्रीजिनाय नमः *

ऋषि मण्डल-यंत्र-पूजा

सरल हिन्दी-पद्यानुवाद व स्तोत्र सहित

प्रकाशक—गुलाबचन्द साह

वीर संवत् २४६१
प्रति १०००
जयपुर
मूल्य—श्रीजिनेन्द्र-भक्ति।

प्रकाशक के दो शब्द

ऋपि-मंडल यंत्र से हमारे कितने मनोरथ सफल हो सकते है—यह उसके श्रद्धालु भक्तों से छुपी हुई बात नही है। इसकी पूजा संस्कृत मे होने से मेरे जैसे मंद बुद्धियो का कुछ भी उपकार नही होता। यह सोच कर मैने श्रीयुत पं० **आनन्द उपाध्याय** जयपुर से इसका संशोधन कराकर इस पुस्तक को आप जैसे गुणानुरागी विज्ञ पूजको के सामने रखा है। मेरा विचार आगे और भी भाषा पूजाओ के प्रकाशित करने का है। मै इस पुस्तक को बिना मूल्य आप जैसे सद्भक्तो कर-कमलो मे अर्पण करता हूं। आशा है, आप लोग इसे स्वीकार कर उचित पूजा का लाभ उठावेगे।

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा
वीरनिर्वाणसं० २४६१
जयपुर

प्रकाशक—
गुलाबचन्द साह
जयपुर।

पुस्तक मिलने का पता—
गुलाबचन्द साह
रास्ता कोठी सेठ मनीरामजी
जैपुर सिटी (राजपूताना)

प्रस्तावना

ऋषि-मंडल यंत्र का माहात्म्य अपूर्व है। श्रद्धालु-समाज इसे बड़े ही आदर की दृष्टि से देखता है। इस मन्त्रराज के द्वारा सैकड़ो महापुरुषो ने समय समय पर असाधारण चामत्कारिक प्रयोगो से जैन धर्म का मुकुट ऊंचा किया है। आधुनिक युग मे वास्तविकता की अपेक्षा समाज चमत्कारो को अधिक आदर की दृष्टि से देखना चाहता है। जिस किसी भी व्यक्ति के पास कुछ अंशो मे चमत्कार दिखा कि समाज उसका गुलाम बन जाता है। संसार-मार्ग मे चलते हुए हमें अपनी आत्म-रक्षा करना अधिक प्रिय मालूम होता है, हम अपनी आन्तरिक निर्वलता द्वारा अभी तक उस आदर्शमार्ग को नही पहुंच पाए है जो कि परम श्रेय है। वस्तुतः गृहस्थावस्था मे रहते हुए वह मार्ग हमारे उपादेय भी नही है।

श्रद्धालु-समाज कुछ अन्यान्य सम्प्रदायो के भौतिक चमत्कारो को देख कर अपने वास्तविक श्रद्धान से न गिर जाये, इसही लक्ष्य को ध्यान मे रख कर हमारे आचार्यों ने ऐसे मांत्रिक-प्रयोगो का निर्माण किया है, जो कि विद्यानुवाद नामक दशवे पूर्व का अंग कहा जा सकता है। मांत्रिक-प्रयोगो को सिद्ध करने के लिए असाधारण-शक्ति की आवश्यकता है अन्यथा लाभ के वदले हमे हानि ही उठाना होगा।

जैनियों का अधिक साहित्य संस्कृत और प्राकृत भाषा मे है। बिना संस्कृत-परिज्ञान के उससे हम उचित लाभ नही उठा सकते। इस कारण कविवर बनारसीदास जी, पं० वृन्दावन जी, पं० जयचन्द जी प्रभृति महापुरुषो ने उसका भाषानुवाद एवं स्वतंत्र-रचनाएं समय २ पर प्रकाशित की है, जिनके द्वारा जैन धर्म का तत्त्व अल्पज्ञानियो की बुद्धि मे भी समा सकता है। किसी भी मंत्र को सिद्ध करने के पहिले उसकी पूजा कर लेना भी अनिवार्य माना जाता है। प्रस्तुत-स्तोत्र संस्कृत मे है। अभी तक उसका कोई हिन्दी अनुवाद नहीं निकला है। जयपुर के एक पंडित चतुर्थमल जी शर्मा ने इसका पद्यानुवाद करना प्रारंभ किया था लेकिन दु:ख होता है कि वे इसे पूर्ण न कर सके। इस यंत्र की पूजा संस्कृत मे है जो कि पं० मनोहरलाल जी शास्त्री ने तैयार करके जैनग्रन्थ कार्यालय बम्बई से प्रकाशित कराई है। साधारण संस्कृत के श्लोको को शुद्ध पढ़ लेना संस्कृतानभिज्ञो के लिए बहुत दुर्लभ है। इसलिये पंडित प्रवर दौलतराम जी ने इसकी स्वतंत्र पूजा तैयार करके समाज के एक महान्-कार्य की पूर्ति की है। दौलतराम जी ने कई ग्रंथों की भाषा-टीकाएं भी की है जोकि समाज मे अधिक मान्य है। सच तो यह है कि "दौलतराम" नाम के तीन चार व्यक्ति हुए है जिनमे यह कौन से कवि अथवा भाषाकार है यह हम नहीं जान सके। पूजा के अन्त मे केवल निम्नांकित पद द्वारा रचयिता ने अपना नाम मात्र दिया है जैसे:—

"दौलत" ओरोरी मिन दाय, तुम शरण गही [illegible] [illegible]।

समाज के कई एक प्रदेशों मे इस पूजा का [illegible] प्रचार है [illegible]

"दौलत" ओसेरी मित्र दाय, तुव शरण गही हरपित सुहोय।

समाज के कई एक प्रदेशो मे इस पूजा का अत्यधिक प्रचार है यह जानकर श्रीयुत मित्रवर गुलावचन्द जी साह ने इसको छपाकर प्रकाशित करने का पूरा २ विचार किया है। किसी पुस्तक के छपने के पहिले उसके संशोधन की अत्यधिक आवश्यक्ता है यह जानकर उन्होने मुझसे इसके संशोधन करने के लिए कहा। मैने अपना कुछ समय निकाल कर अपनी मंद बुद्धि द्वारा इसका संशोधन और संवर्धन किया है। कविता की दृष्टि से तो यह पुस्तक साधारण है लेकिन पूजको के लिए ही इसका खासतौर से प्रकाशन हुआ है। पुराने जमाने के लेखक केवल नकल कर देना मात्र जानते थे। किस जगह किस पद का क्या अर्थ होना चाहिये यह उनकी बुद्धि के परे की बात थी। मैने दो तीन प्रतियो द्वारा इसको शुद्ध करके कुछ कविता में भी परिवर्तन किया है आशा है जैन समाज के गुणानुरागी महानुभाव इसका उचित आदर करके मुझे प्रोत्साहन प्रदान करेगे।

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा
जयपुर।

संशोधक—
"आनन्द" उपाध्याय जयपुर।

नित्य अभिषेक पाठ

(१)

श्रीमज्जिन तुव चरण नख, नव्य कंज हित सूरि।
विघ्न-शिलोच्चय दलन पवि, नमूं हरन भव भूरि॥

(२)

आप्त वदन उद्भव वचन, हितमित विशद प्रमान।
दृष्ट इष्ट अविरोध कृत, जिनवाणी सुखखान॥

(३)

निरारंभ परिग्रह रहित, विषय वासनातीत।
ज्ञान-ध्यान तप रक्त मुनि, सहज जगतजन मीत॥

(४)

तदाकार प्रतिबिम्ब को, प्रथम कर्‌यो अभिषेक।
तातैं विधि अभिषेक की, योग्य रचों सविवेक॥

इति अभिषेक प्रतिज्ञा कृत्वा पुष्पाजलिं क्षिपेत्॥

दोहा

मंत्र।

इति अभिषेक प्रतिज्ञां कृत्वा पुष्पांजलि क्षिपेत् ॥

दोहा

[1]प्रणव आदि जय जय उचरि, नमन ठानि [2]पढि मंत्र ।
मंगल उत्तम शरण गहि, स्वस्तिक लिखहुँ स्वतन्त्र ॥

अथ मंत्र पाठः—

ॐ जय जय जय ॥ नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु ॥ णमो अरहंताणं ॥ णमो सिद्धाणं ॥ णमो आइरियाणं ॥ णमो उवज्झायाणं ॥ णमो लोए सव्वसाहूणम् ॥

एसो पंच णमोयारो, सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणंच सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ॥

चत्तारि मंगलं, अरहंत मंगलं, सिद्धमंगलं, साहूमंगलं, केवलि पण्णत्तो, धम्मो-मंगलं ॥ चत्तारि लोगुत्तमा, अरहत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा । केवलि पण्णत्तो, धम्मो लोगुत्तमा ॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि—केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥

(१) ॐकार (२) जलकुम्भ ॥

अपराजित मंत्रोऽयं, सर्व विघ्न विनाशकं ।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतं ॥

सत्तयगयंद (सवैया)

श्री जिनको पद पंकज को नमि नित्य सही विधि न्हौंन प्रसारैं ।
ताहित सन्मुख तिष्ठत उज्वल द्रव्य सुधार यहां विस्तारैं ॥
कंचन पीठक पैं करि स्वस्तिक पुष्प सुगंधित धो करि डारैं ।
तामधि तोय शिवालय नायक हो अभिषेक हितार्थ सुधारैं ॥

ॐ ह्रीं सिंहपीठे जिनबिम्बं स्थापयाम्यहम् ॥

नीर महाशुचि गंधत चन्दन अक्षत पुष्प सु ले अनियारे ।
व्यंजन संजुत ले चरु उत्तम दीप धूप फलअर्घसु-धारे ॥
यों वसु द्रव्य तनों करि अर्घ उतारि उतारियजों पद थारे ।
द्यो मुझ शीघ्र शिवालय वास सदा तुम भव्य उबारन वारे ॥

ॐ ह्रीं स्तपन पीठे स्थित जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

कृत्रिम और अकृत्रिम बिम्ब सनातन राजत श्री जिन तेरे ।

ॐ ह्रीं स्नपन पीठे स्थित जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

(१)

कृत्रिम और अकृत्रिम विम्ब सनातन राजत श्री जिन तेरे ।
तास तनी नित इन्द्र उपासन ठानत भानत कर्म करेरे ॥
क्षीर समुद्र नदी नद तीरथ तास तनों जल प्राशुक हेरे ।
कंचन कुम्भ भरे परिपूरण ल्याय यथाक्रम उत्थित टेरे ॥

(२)

कर्म जंजीर जरयो यह जीव शुभाशुभ भोगत ज्ञान न पायो ।
पैं अब कालसुलब्धि प्रसाद लह्यो तुव दर्शन आनन्द आयो ॥
हो तुम कर्मकलंक विनाशक प्रेम तउ इत प्रेरित लायो ।
हो गुनकार करों अभिषेक वरों शिव नारि समय अब आयो ॥

(३)

यों कहि दीप चहों दिशि जोय कियो बहु धूमसु धूपक केरो ।
बाजत ताल सुबीन मृदंग शची पुनि नाचत भाव सु टेरो ॥
जय जिनराज इतीश उचारि कियो अभिषेक जिनेश्वर तेरो ।
तासम शक्ति प्रमाण इहां हम ठानत भानत कर्म करेरो ॥

ॐ ह्रीं शुद्धोदकेन जिनाभिषेकं करोम्यहं ।

यों अभिषेक कियो अब पूरण पूजन के हित अर्घ सुधारो।
तीरथ को जल प्रासुक चन्दन अक्षत अक्षत पुष्प सुप्यारो॥
ले चरु दीपक उत्तम धूप फलार्घ करों वर मंत्र उचारो।
वार धरो तुव चरणन के ढिंग हो जिन तारक मोहि उधारो॥

ॐ ह्रीं अभिषेकोत्सव प्राप्ताय श्री जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

या उपरांत शचीपति आदिक सर्व सुरासुर स्तोत्र उचारयो।
हो तुम नाथ अनाथनि के पुनि मोह महाभट उद्धत मारयो॥
मैं जगजाल फँस्यों बहुदुःख सह्यो नहिं जात भयो दुखियारो।
हो करुणानिधि जाननहार तुम्हीं समरत्थ मुझे अब त्यारो॥

इति पठित्वा पुष्पांजलि परिक्षिपेत॥

तीन प्रदक्षिण दे शिरनाय शचीपति आदिक सर्व सुरेशा।
ले चरणोदक शीस धरयो सुरनाथ प्रभृत्ति जु नाग नरेशा॥
मैं धरिध्यान प्रदक्षिण देय नमूँ तुअ पाद जिनेश महेशा।
हो तुव पाद प्रसादथकी मम मोक्ष महाफल शीघ्र विशेषा॥

इति प्रदक्षिणां दत्वा नमस्कारं च कृत्वा जिन गंधोदकं शिरसि धारयाम्यहं।

इति प्रदक्षिणां दत्वा नमस्कारं च कृत्वा जिन गंधोदक शिरसि धारयाम्यहं ।

ले शुचि उज्वल स्वर्ग समुद्भव वस्त्र अलौकिक हस्त मँझारे ।
तव तन ऊपर नीर निहार शचीपति मार्जन को विस्तारे ॥
पुलकित सहस नयन करि मघवा निरखत पावन रूप तिहारे ।
धन्य धन्य जिनराज लोक में वसुविध कर्म जलावन हारे ॥

इति पठित्वा जिन बिम्बस्य संमार्जनं करोम्यहम् ॥

॥ दोहा ॥

मार्जन करि वेदी विषैं, सिंहासन परि थापि ।
प्रातिहार्य युत निरख जिन, यजन करों गुन जापि ॥

इति सिंहासनोपरि श्री जिन बिम्बस्थापयित्वा पूजाप्रतिज्ञांच कृत्वा पुष्पांजलि क्षिपेत ॥

इति अभिषेक पाठ संपूर्णम् ॥

जय सुभग ऋषि मण्डल विराजैं पूजि मनवचतन सदा।
जय सुभग ऋषि मण्डल विराजैं पूजि मनवचतन सदा।

तिस मनोवांछित मिलत सब सुख स्वप्न में दुख नाहिं कदा ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय यंत्र संबंधि परम देवाय चंदनं ॥ २ ॥

इन्दु किरण समान सुंदर जोति मुक्ता की हरैं।

हाटक रकेबी धारि भविजन अखय पद प्राप्ती करैं ॥

जय सुभग ऋषि मडण्ल विराजैं पूजि मनवच तन सदा।

तिस मनो वांछित मिलत सब सुख स्वप्न में दुख नाहिं कदा ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय यंत्र संबंधि परम देवाय, अक्षतं ॥ ३ ॥

पाटल गुलाब जुही चमेली मालती बेला घने।

जिस सुरभितें कलहँस नाचत फूल गुँथि मालाबने ॥

जय सुभग ऋषिमण्डल विराजैं पूजि मन वच तन सदा।

तिस मनोवांछित मिलत सबसुख स्वप्न में दुख नाहिं कदा ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय यंत्र संबंधि परम देवाय, पुष्पं ॥ ४ ॥

अर्द्ध चन्द्र समान फेनी मोदकादिक ले घने।

घृत पक्व मिश्रित रस सु पूरे लख क्षुधा डायनि हने ॥

जय सुभग ऋषिमंडल विराजै पूजि मन वच तन सदा।
तिस मनोवांछित मिलत सबसुख स्वप्नमें दुख नहिं कदा ॥

ॐ ह्री सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय यंत्र संबंधि परम देवाय, नैवेद्यं ॥ ५ ॥

मणि दीप जोति जगाय सुंदर वा कपूर अनूपकं ।
हाटक सुथाली मांहि धरिके वारि जिनपद भूपकं ॥
जय सुभग ऋषि मंडल विराजै पूजि मन वच तन सदा ।
तिस मनोवांछित मिलत सब सुख स्वप्न में दुख नहिं कदां

ॐ ह्री सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय यंत्र सम्बन्धि परम देवाय, दीपं ॥ ६ ॥

चंदन सु कृस्नागरु कपूर मंगाय अग्नि जराइये ।
सो धूप-धूम अकाश लागी मनहुँ कर्म उडाइये ॥
जय सुभग ऋषि मंडल विराजै पूजि मन वच तन सदा ।
तिस मनोवांछित मिलत सबसुख स्वप्न में दुख नहिं कदा

ॐ ह्री सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय यंत्र संबंधि परम देवाय, धूपं ॥ ७ ॥

दाडिम सु श्रीफल आम्र कम्रख और केला लाइये।
मोक्ष फल के पायवे की आशधरि करि आइये ॥
जय सुभग ऋषि मंडल विराजै पूजि मनवचतन सदा।
तिस मनोवांछित मिलत सब सुख स्वप्न में दुख नहिंकदा।

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय यंत्र संबंधि परम देवाय, फलं ॥ ८ ॥

जल फलादिक द्रव्य लेकर अर्घ सुन्दर कर लिया।
संसार रोग निवार भगवन् वारि तुम पद पैं दिया ॥
जय सुभग ऋषिमंडल विराजै पूजि मन वचतन सदा।
तिस मनोवांछित मिलत सबसुख स्वप्न में दुख नहिंकदा ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय यंत्र संबंधि परम देवाय, अर्घ ॥ ९ ॥

(इति अष्टकं)

नोट—पाठको को प्रत्येक द्रव्य चढाते हुए स्थापना के मंत्र को पूरा २ पढ़ना चाहिये। हमने यहां केवल संक्षिप्त मंत्र देकर लिखा है।

अर्घावलिः

अडिल्ल छंद—

वृषभ जिनेश्वर आदि अंत महावीर जी ।
ये चउविस जिनराज हनों भवपीर जी ॥
ऋषि मंडल विच हीं विषै राजै सदा ।
पूजूं अर्घ बनाय होय नहिं दुख कदा ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय वृषभादि चतुर्विंशति तीर्थंकरपरम देवाय, अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

आदि कवर्ग सु अन्तजानि शाषासहा ।
ये वसुवर्ग महान यंत्र में शुभ कहा ॥
जल शुभ गंधादिक वर द्रव्य मंगायके ।
पूँजूँहं करजोर शीश निज नायके ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय अष्टवर्ग कवर्गादि देशासापाहा ह्म्ल्व्र्यूं परमयंत्रेभ्यो अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ॥

कामिनी मोहिनी छन्द—

परम उत्कृष्ट परमेष्ठी पद पांच को ।
नमत शत इन्द्र खगवृंद पद सांच को ॥
तिमिर अघनाश करणको तुम अर्क हो ।
अर्घ लेय पूज्य पद देत बुद्धि तर्क हो ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय पंच परमेष्ठि परम देवाय, अर्घं ॥

सुन्दरी छन्द—

सुभग सम्यग् दर्शन ज्ञान जू ।
कह चारित्र सुधारिक मान जू ॥
अर्घ सुदर दर्वसु आठ ले ।
चरण पुंजहुँ साजसु ठाठले ॥

ॐ ह्रा सर्वोपद्रव विनाशन समर्थाय सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

हरिगीता छन्द

भवनवासी देव व्यन्तर जोतिषी कल्पिन्द्र जू ।
जिनगृह जिनेश्वर देव राजै रत्न के प्रतिबिम्ब जू ॥

तोरन ध्वजा घण्टा विराजै चवर ढुरै नयान जू ।

तोरन ध्वजा घण्टा विराजे चंवर ढरत नवान जू ।
वर अर्घ ले तिन चरण पूजों हर्ष हिय अति लीन जू ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थाय भवनेन्द्र-व्यंतरेन्द्र-ज्योतिरिन्द्र-कल्पेन्द्र-चतुः प्रकार-देवगृहे श्रीजिनचैत्यालयसंयुक्ताय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ॥

दोहा

अवधि चार प्रकार मुनि, पारत जे ऋषिराय ।
अर्घ लेय तिन चर्ण जजि, विघन सघन मिटजाय ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थेभ्य' चतुःप्रकारा अवधिधारकमुनिभ्यो अर्घं ॥

भुजंगप्रयात छंद

कही आठ ऋद्धि धारे जे मुनीशं ।
महा कार्यकारी बखानी गनीशं ॥
जल गंध आदि दे जजों चर्न नेरे ।
लहों सुःख सबरे हरो दुःख फेरे ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थेभ्यो अष्टऋद्धिसहितमुनिभ्यो अर्घं ॥

श्री देवी प्रथम बखानी ।
इन आदिक चौबीसों मानी ॥
तत्पर जिन भक्ति विषै है ।
पूजत सब रोग नशै है ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थाभ्य श्रीआदिचतुर्विंशतिदेविभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

हंसा छंद

यंत्र विषै बरन्यो तिरकोन ।
ह्रीं तहतीन युक्त सुखभोन ॥
जलफलादि वसु द्रव्य मिलाय ।
अर्घ सहित पूजूँ शिरनाय ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थाय त्रिकोणमध्ये त्रिह्रींसंयुक्ताय अर्घं ॥

तोमर छंद

दस आठ दोष निरवारि ।
छियालीस महागुण धारि ॥

वसु द्रव्य अनूप मिलाय।
तिन चर्न जजों सुखदाय॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थाय छियालीसमहागुणयुक्ताय आर्हते अर्घं॥

सोरठा

दस दिश दस दिग्पाल, दिशानाम सो नाउवर।
तिनगृह श्रीजिन आल, पूजों मैं वदों सदा॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थेभ्यो दशदिग्पालेभ्यो जिनभक्तियुक्तेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

॥ दोहा ॥

ऋषि मण्डल शुभयंत्र के, देवी देव चितारि।
अर्घ सहित पूजहुँ चरन, दुख दारिद्र निवारि॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थेभ्यो ऋषिमण्डलसम्बन्धिदेवीदेवेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

(इति अर्घावलिः)

अथ जयमाला

दोहा

चौबीसों जिन चरन नमि, गणधर नाँऊ भाल।
शारद पद पंकज नमूँ, गाँऊ शुभ जयमाल॥

पद्धड़ी छन्द

जय आदीश्वर जिन आदिदेव, शतइन्द्र जजे मैं करिहुँ सेव।
जय अजित जिनेश्वर जे अजीत, जे जीतभये भव ते अतीत॥
जय संभव जिन भवकूप मांहि, डूवत राखहुं तुम शर्ण आहि।
जय अभिनंदन आनन्द देत, ज्यों कमलों पर रवि करत हेत॥
जय सुमति सुमति दाता जिनन्द, जे कुमति तिमिर नाशन दिनन्द।
जय पद्मालंकृत पद्मदेव, दिन रयन करिहुँ तव चरन सेव॥
जय श्री सुपार्श्व भवपाश नाश, भवि जीवन कूँ दियो मुक्तिवास।
जय चंद जिनेश दया निधान, गुण सागर नागर सुख प्रमान॥
जय पुष्पदंत जिनवर जगीश, शतइन्द्र नमत नित आत्मशीश।
जय शीतल वच शीतल जिनन्द, भवताप नशावन जगत चंद॥

जय शीतल वच शीतल जिनन्द, भवताप नशावन जगत चंद ॥

जय जय श्रेयांस जिन अति उदार, भवि कंठ मांहि मुक्ता सुहार ॥
जय वासुपूज्य वासव खगेश, तुम स्तुति करि पुनि नमि हैं हमेश ।
जय विमल जिनेश्वर विमलदेव, मल रहित विराजत करहुँ सेव ॥
जय जिन अनंत के गुण अनंत, कथनी कथ गणधर लहे न अंत ।
जय धर्म धुरन्धर धर्मधीर, जय धर्म चक्र शुचि ल्याय वीर ॥
जय शान्ति जिनेश्वर शांतभाव, भव वन भटकत शुभ मग लखाव ।
जय कुन्थु कुन्थु वाजीव पाल, सेवक परि रक्षा करि कृपाल ॥
जय अरहनाथ अरि कर्मशैल, तपवज्र खंड लहि मुक्ति गैल ।
जय मल्लि जिनेश्वर कर्म आठ, मल डारे पायो मुक्ति ठाठ ॥
जय सुव्रत मुनि सुव्रत धरंत, जय सुव्रत व्रत पावत महंत ।
जय नम्मि नमत सुर वृन्द पाय, पद पंकज निरखत शीश नाय ॥
जय नेमि जिनन्द दयानिधान, फैलायो जग मे तत्त्वज्ञान ।
जय पारस जिन आलस निवारि, उपसर्ग रुद्र कृत जीत धारि ॥
जय महावीर महाधीरधार, भवकूप थकी जग को निकार ।
जय वर्ग आठ सुन्दर अपार, तिन भेद लखत वुध करत सार ॥
जय परम पूज्य परमेष्ठि सार, जिन सुमरत वरसे अनन्द धार ।
जय दर्शन ज्ञान चरित्र तीन, ये रत्न महा उज्वल प्रवीन ॥

२१

जय चार प्रकार सुदेव सार, तिनके गृह जिन मंदिर अपार।
जो पूजै वसुविधि द्रव्य ल्याय, मै इत जजि तुम पद शीश नाय ॥
जो मुनिवर धारत अवधि चारि, तिन पूजै भवि भवसिंधु पार।
जो आठ ऋद्धि मुनिवर धरन्त, ते मोपै करुणा करि महन्त ॥
चौवीस देवि जिन भक्ति लीन, वंदन ताको सु परोक्ष कीन।
जे ह्री तीन त्रैकोण मांहि, तिन नमत सदा आनन्द पाहिं ॥
जय जय जय श्रीअरहंत बिंब, तिन पद पूजूं मै खोइ डिम्ब।
जो दस दिग्पाल कहे महान, जे दिशा नाम सो नाम जान ॥
जे तिनके गृह जिनराज धाम, जे रत्नमई प्रतिमाभिराम।
ध्वज तोरन घंटा युक्तसार, मोतिन माला लटके अपार ॥
जे ता मधि वेदी है अनूप, तहँ राजत है जिनराज भूप।
जय मुद्रा शान्ति विराजमान, जा लखि वैराग्य बढे महान ॥
जे देवी देव सु आय आय, पूजे तिन पद मन वचन काय।
जल मिष्ट सु उज्वल पय समान, चन्दन मलयागिरि को महान ॥
जे अक्षत अनियारे सुलाय, जे पुष्पन की माला बनाय।
चरु मधुर विविध ताजी अपार, दीपक मणिमय उद्योतकार ॥
जे धूप सु कृष्णागरु सुखेय, फल विविध भाति के मिष्ट लेय।
वर अर्घ अनूपम करत देव, जिनराज चरण आगे चढेय ॥

वर अर्घ अनूपम करत देव, जिनराज चरण आगे चढ़ेव ॥
फिर मुखतै स्तुति करते उदार, हो करुणानिधि संसार तार ।
मै दुःख सहे संसार ईश, तुमतै छानी नांही जगीश ॥
जे इह विधि मौखिक स्तुति उचार, तिन नशत शीघ्र संसार भार ।
इह विधि जो जन पूजन कराय, ऋषि मंडल यंत्र सु चित्त लाय ॥
जे ऋषि मंडल पूजा करंत, ते रोग शोक संकट हरंत ।
जे राजा रन कुल वृद्धि जान, जल दुर्ग सुगज केहरि बखान ॥
जे विपत घोर अरु कहि मसान, भय दूर करै यह सकल जान ।
जे राजभ्रष्ट ते राज पाय, पद भ्रष्ट थकी पद शुद्ध थाय ॥
धन अर्थी धन पावै महान, या मे संशय कछु नहि सुजान ।
भार्या अर्थी भार्या लहंत, सुत अरथी सुत पावे तुरन्त ॥
जे रूपा सोना ताम्रपत्र, लिख तापर यंत्र महा पवित्र ।
ता पूजै भागै सकल रोग, जे बात पित्त ज्वर नाशि शोग ॥
तिन गृह तै भूत पिशाच जान, ते भाग जांहि संशय न आन ।
जे ऋषिमंडल पूजा करंत, ते सुख पावत कहि लहै न अन्त ॥
जब ऐसो मै मनमांहि जान, तब भाव सहित पूजा सुठान ।
वसुविधि से सुन्दर द्रव्य ल्याय, जिनराज चरण आगे चढ़ाय ॥

फिर करत आरती शुद्ध भाव, जिनराज सभी लख हर्ष आव।
तुम देवन के हो देव देव, इक अरज चित्त में धारि लेव॥
जे दीन दयाल दया कराय, जो मैं दुखिया इह जग भ्रमाय।
जे इस भव वन में वासलीन, जे काल अनादि गमाय दीन॥
मैं भ्रमत चतुर्गति विपिन माहि, दुख सहे सुख को लेश नाहि।
ये कर्म महारिपु जोर कीन, जे मनमाने ते दुःख दीन॥
ये काहू को नहिं डर धराय, इनतें भयभीत भयो अघाय।
यह एक जन्म की बात जान, मैं कह न सकत हूँ देवमान॥
जय तुम अनन्त परयाय जान, दरशायो संसृति पथ विधान।
उपकारी तुम बिन और नाहि, दीखत नाहीं इस जगत माहि॥
तुम सब लायक ज्ञायक जिनन्द, रत्नत्रय सपति द्यो अमन्द।
यह अरज करूँ मैं श्री जिनेश, भव भव सेवा तुम पद हमेश॥
भव भव में श्रावक कुल महान, भव भव में प्रकटित तत्त्वज्ञान।
भव भव में व्रत हो अनागार, तिस पालन तें हो भवाब्धि पार॥
ये योग सदा मुझको लहान, हे दीनबन्धु करुणा-निधान।
"दौलत" "ओसेरी" मित्र दोय, तुम शरण गही हरषित सुहोय॥

नन्द छुन्द घत्ता

जो पूजै ध्यावै, भक्ति बढावै, ऋषि मंडल शुभ यंत्र तनी ।
या भव सुख पावै, सुजस लहावै, परभव स्वर्ग सुलक्ष धनी ॥

ॐ ह्रीं सर्वापद्रवविनाशनसमर्थाय रोगशोक-सर्व-संकटहराय सर्वशान्ति पुष्टि कराय, श्रीवृषभादि चौबीस तीर्थंकर अष्ट वर्ग अरहंतादि पंचपद दर्शन ज्ञान चारित्र सहित चतुर्णिकाय देव चव प्रकार अवधिधारक श्रमन अष्ट ऋद्धि संयुक्त बीस चार सूरि तीन ह्रीं अर्हं बिम्ब दशादिग्पाल यंत्र संबंधि परमदेवाय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

आशीर्वाद

ऋषि मंडल शुभ यंत्र को, जो पूजै मन लाय ।
ऋद्धि सिद्धि ता घर वसै, विघन सघन मिट जाय ॥
विघन सघन मिट जाय, सदा सुख वो नर पावै ।
ऋषि मंडल शुभ यन्त्र तनी, जो पूज रचावै ॥
भाव भक्ति युत होय, सदा जो प्राणी ध्यावै ।
या भव मे सुख भोग, स्वर्ग की संपति पावै ॥
या पूजा पर भाव मिटै, भव भ्रमण निरन्तर ।
यातै निश्चय मांनि करो, नित भाव भक्ति धर ॥

इत्याशीर्वादः । पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

संवत् भूषग्रह मांहि, सावन सार असेत ।
पहर रात बाकी रही, पूर्ण करी सुख हेत ॥

इति

विसर्जन पाठ

अडिल्ल छंद

पूजन हर्षित होय करी मैने जिन स्वामी ।
अल्पज्ञानतै लगे दोष क्षमिये जगनामी ॥
अक्षर मात्रा अल्प अधिक कीने उच्चारण ।
सो अब क्षमिये दीनबंधु हे अधम उधारण ॥
आह्वानन विधि ठान, भक्तियुत पूजा कीनी ।
बार बार गुणगाय करी मै स्तुति रसभीनी ॥
अब मेरी हे नाथ अरज है तुम चर्णों मे ।
यथा पूर्व जिनदेव विराजो निज थानक मे ॥

इति

ऋषि-मंडल-स्तोत्र

आद्यंताक्षरसंलक्ष्यमक्षरं व्याप्य यत्स्थितम् ।
अग्निज्वालासमं नादं विन्दुरेखासमन्वितं ॥ १ ॥
अग्निज्वालासमाक्रान्तं मनोमलविशोधनं ।
दैदीप्यमानं हृत्पद्मे तत्पदं नौमि निर्मलं ॥ ॥ युग्मं ।
ॐ नमोर्हद्भ्य ईशेभ्य ॐ सिद्धेभ्यो नमो नमः ।
ॐ नमः सर्वसूरिभ्यः उपाध्यायेभ्य ॐ नमः ॥ ३ ॥
ॐ नमः सर्वसाधुभ्यः तत्त्वदृष्टिभ्य ॐ नमः ।
ॐ नमः शुद्धबोधेभ्यश्चारित्रेभ्यो नमो नमः ॥ ४ ॥ युग्मं ।
श्रेयसेस्तु श्रियेस्त्वेनदर्हदाद्यष्टकं शुभं ।
स्थानेष्वष्टसु संन्यस्तं पृथग्बीजसमन्वितम् ॥ ५ ॥
आद्यं पदं शिरो रक्षेत् परं रक्षतु मस्तकं ।
तृतीयं रक्षेन्नेत्रे द्वे तुर्यं रक्षेच्च नासिकां ॥ ६ ॥

पंचमं तु मुखं रक्षेत् षष्ठं रक्षतु घंटिकां ।
सप्तमं रक्षेन्नाभ्यंतं पादांतं चाष्टमं पुनः ॥ ७ ॥ युग्मं ।
पूर्वं प्रणवतः सांतः सरेफो द्वित्रिपंचपान् ।
सप्ताष्टदशसूर्यांकान् श्रितो बिंदुस्वरान् पृथक् ॥ ८ ॥
पूज्यनामाक्षराद्यास्तु पंचदर्शनबोधकं ।
चारित्रेभ्यो नमो मध्ये ह्रीं सांतसमलंकृतं ॥ ९ ॥
जंबूवृक्षधरो द्वीपः क्षारोदधि-समावृतः ।
अर्हदाद्यष्टकैरष्टकाष्ठाधिष्ठैरलंकृतः ॥ १ ॥
तन्मध्ये संगतो मेरुः कूटलक्षैरलंकृतः ।
उच्चैरुच्चैस्तरस्तारतारामंडलमंडितः ॥ २ ॥
तस्योपरि सकारांतं बीजमध्यास्य सर्वगं ।
नमामि बिम्बमार्हंत्यं ललाटस्थं निरंजनं ॥ ३ ॥ विशेषकं ।
अक्षयं निर्मलं शांतं बहुलं जाड्यतोज्झितं ।
निरीहं निरहंकारं सारं सारतरं घनं ॥ ४ ॥

अनुद्भूतं शुभं स्फीतं सात्त्विकं राजसं मतं ।
तामसं विरसं बुद्धं तैजसं शर्वरीसमं ॥ ५ ॥
साकारं च निराकारं सरसं विरसं परं ।
परापरं परातीतं परं परपरापरं ॥ ६ ॥
सकलं निष्फलं तुष्टं निर्भृतं भ्रान्तिवर्जितं ।
निरंजनं निराकांक्षं निर्लेपं वीतसंशयं ॥ ७ ॥
ब्रह्माणमीश्वरं बुद्धं शुद्धं सिद्धमभंगुरं ।
ज्योतीरूपं महादेवं लोकालोकप्रकाशकं ॥ ८ ॥ कुलकं ।
अर्हदाख्यः सवर्णान्तः सरेफो बिंदुमंडितः ।
तुर्यस्वरसमायुक्तो बहुध्यानादिमालितः ॥ ९ ॥
एकवर्णं द्विवर्णं च त्रिवर्णं तुर्यवर्णकं ।
पंचवर्णं महावर्णं सपरं च परापरं ॥१०॥ युग्मं ।
अस्मिन् बीजे स्थिताः सर्वे ऋषभाद्या जिनोत्तमाः ।
वर्णैर्निजैर्निजैर्युक्ता ध्यातव्यास्तत्र संगताः ॥११॥

नादश्चंन्द्रसमाकारो बिंदुर्नीलसमप्रभः ।
कलारुणसमासांतः स्वर्णाभः सर्वतोमुखः ॥१२॥
शिरःसंलीन ईकारो विनीलो वर्णतः स्मृतः ।
वर्णानुसारिसंलीनं तीर्थकृन्मंडलं नमः ॥१३॥ युग्मं ।
चन्द्रप्रभपुष्पदंतौ नादस्थितिसमाश्रितौ ।
बिंदुमध्यगतौ नेमिसुव्रतौ जिनसत्तमौ ॥ १४ ॥
पद्मप्रभवासुपूज्यौ कलापदमधिश्रितौ ।
शिर ईस्थितिसंलीनौ पार्श्वपार्श्वौ जिनोत्तमौ ॥१५॥
शेषास्तीर्थकराः सर्वे रहःस्थाने नियोजिताः ।
मायाबीजाक्षरं प्राप्ताश्चतुर्विंशतिरर्हतां ॥१६॥
गतरागद्वेषमोहाः सर्वपापविवर्जिताः ।
सर्वदा सर्वलोकेषु ते भवंतु जिनोत्तमाः ॥१७॥ कलापकं ।
देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु पन्नगाः ॥१८॥

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु नागिनी ॥१९॥
देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसंतु गोनसाः ॥२०॥

देवदेव..............वृश्चिकाः ॥ २१ ॥
देवदेव..............काकिनी ॥ २२ ॥
देवदेव..............डाकिनी ॥ २३ ॥
देवदेव..............साकिनी ॥ २४ ॥
देवदेव..............राकिनी ॥ २५ ॥
देवदेव..............लाकिनी ॥ २६ ॥
देवदेव..............शाकिनी ॥ २७ ॥
देवदेव..............हाकिनी ॥ २८ ॥
देवदेव..............राक्षसाः ॥ २९ ॥
देवदेव..............व्यंतराः ॥ ३० ॥

देवदेव..............भक्रमाः ॥ ३१ ॥
देवदेव... .. .. ते ग्रहाः ॥ ३२ ॥
देवदेव... ....तस्कराः ॥ ३३ ॥
देवदेव... . .. .. वह्नयः ॥ ३४ ॥
देवदेव..... ..... शृंगिणः ॥ ३५ ॥
देवदेव..............दंष्ट्रिणः ॥ ३६ ॥
देवदेव.... ....रेलपाः ॥ ३७ ॥
देवदेव .. ..पक्षिणः ॥ ३८ ॥
देवदेव.............. मुद्गलाः ॥ ३९ ॥
देवदेव...... . . ....जृंभकाः ॥ ४० ॥
देवदेव........ . ...तोयदाः ॥ ४१ ॥
देवदेव...............सिंहकाः ॥ ४२ ॥
देवदेव...............शूकराः ॥ ४३ ॥
देवदेव...............चित्रकाः ॥ ४४ ॥

देवदेव.............हस्तिनः ॥ ४५ ॥

देवदेव.............भूमिपाः ॥ ४६ ॥

देवदेव.............शत्रवः ॥ ४७ ॥

देवदेव.............ग्रामिणः ॥ ४८ ॥

देवदेव.............दुर्जनाः ॥ ४९ ॥

देवदेव.............व्याधयः ॥ ५० ॥

श्रीगौतमस्य या मुद्रा तस्या या भुवि लब्धयः ।
ताभिरभ्यधिकं ज्योतिरर्हः सर्वनिधीश्वरः ॥५१॥
पातालवासिनो देवा देवा भूपीठवासिनः ।
स्वःस्वर्गवासिनो देवा सर्वे रक्षंतु मामितः ॥५२॥
येऽवधिलब्धयो ये तु परमावधिलब्धयः ।
ते सर्वे मुनयो दिव्या मां संरक्षंतु सर्वतः ॥५३॥
ॐ श्री ह्रीश्च धृतिर्लक्ष्मी गौरी चंडी सरस्वती ।
जया वा विजया क्लिन्नाऽजिता नित्या मदद्रवा ॥ ५४ ॥

कामांगा कामवाणा च सानंदा नंदमालिनी ।
माया मायाविनी रौद्री कला काली कलिप्रिया ॥ ५५ ॥
एताः सर्वा महादेव्यो वर्तते या जगत्त्रये ।
मम सर्वाः प्रयच्छंतु कान्ति लक्ष्मीं धृतिं मतिं ॥ ५६ ॥
दुर्जना भूतवेतालाः पिशाचा मुद्गलास्तथा ।
ते सर्वे उपशाम्यंतु देवदेवप्रभावतः ॥ ५७ ॥
दिव्यो गोप्यः सुदुष्प्राप्यः श्रीऋषिमंडलस्तवः ।
भाषितस्तीर्थनाथेन जगत्त्राणकृतोऽनघः ॥ ५८ ॥
रणे राजकुले वह्नौ जले दुर्गे गजे हरौ ।
श्मशाने विपिने घोरे स्मृतो रक्षति मानवं ॥ ५९ ॥
राज्यभ्रष्टा निजं राज्यं पदभ्रष्टा निजं पदं ।
लक्ष्मीभ्रष्टाः निजां लक्ष्मी प्राप्नुवंति न संशयः ॥ ६० ॥
भार्यार्थी लभते भार्या पुत्रार्थी लभते सुतं ।
धनार्थी लभते वित्तं नरः स्मरणमात्रतः ॥ ६१ ॥

भूनाथो लभते वित्तं नरः स्मरणमात्रतः ॥ ६१ ॥

स्वर्णे रूप्येऽथवा कांस्ये लिखित्वा यस्तु पूजयेत् ।
तस्यैवेष्टमहासिद्धिर्गृहे वसति शाश्वती ॥ ६२ ॥
भूर्जपत्रे लिखित्वेदं गलके मूर्ध्नि वा भुजे ।
धारितः सर्वदा दिव्यं सर्वभीतिविनाशनं ॥ ६३ ॥
भूतैः प्रेतैर्ग्रहैर्यक्षैः पिशाचैर्मुद्गलैस्तथा ।
वातपित्तकफोद्रेकैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६४ ॥
भूर्भुवःस्वस्त्रयीपीठवर्त्तिनः शाश्वता जिनाः ।
तैः स्तुतैर्वदितैर्दृष्टैर्यत्फलं तत्फलं स्मृतेः ॥ ६५ ॥
एतद्गोप्यं महास्तोत्रं न देयं यस्य कस्यचित् ।
मिथ्यात्ववासिनो देये बालहत्या पदे पदे ॥ ६६ ॥
आचाम्लादितपः कृत्वा पूजयित्वा जिनावलिं ।
अष्टसाहस्रिको जाप्यः कार्यस्तत्सिद्धिहेतवे ॥ ६७ ॥
शतमष्टोत्तरं प्रातर्ये पठंति दिने दिने ।
तेषां न व्याधयो देहे प्रभवंति च संशयः ॥ ६८ ॥

अष्टमासावधिं यावत् प्रातः प्रातस्तु यः पठेत् ।
स्तोत्रमेतन्महातेजस्त्वर्हद्बिंबं स पश्यति ॥ ६९ ॥
दृष्टे सत्यार्हते बिंबे भवे सप्तमके ध्रुवं ।
पदं प्राप्नोति विश्रस्तं परमानंदसंपदां ॥ ७० ॥ युग्मं
इदं स्तोत्रं महास्तोत्रं स्तुतीनामुत्तमं परं ।
पठनात्स्मरणज्जाप्यात् च सर्वदोषैर्विमुच्यते ॥ ७१ ॥

इति ऋषि मंडल स्तोत्रं

संपूर्णम् ।

मुद्रक—बाबू कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा ।

* श्रीनेमनाथाय नमः *

सच्चा—

जिनवाणी संग्रह ।

(सचित्र)

पाठ संख्या ४१५—चित्र संख्या ४०

सम्पादक :—

पं० कस्तूरचन्द छावड़ा, 'विशारद'

दुलीचन्द परवार, "दिवाकर"

प्रकाशक

दुलीचंद पन्नालाल परवार

मालिक—जिनवाणी प्रचारक कार्यालय,

१६१।१ हरीसन रोड, कलकत्ता ।

सातवीं बार] श्रुतपंचमी १९९० [क्रम संख्या १३०००

दो शब्द

पाठको ! इस कार्यालयने अपने नामके अ...
"जिनवाणी संग्रह" नाम रख कर ऐसी प्रख्याति
की थी कि देश भर में शायद ही कोई घर ऐसा
गया हो जिसने इस महत्वपूर्ण संग्रहको देख कर
लिया हो यही कारण है कि ४ वर्षमें इस संग्रह
१२००० हजार कापियां हाथों हाथ बिक गई !

कई एक गार्हस्थिक विपत्तियोंके आ जानेसे मैं
वर्ष तक इस उपयोगी संग्रह को न छपा सका ...
मांगे आने पर भी उन्हें न भेज सका !

अब यह ४१५ पाठोंका अपूर्व संग्रह सातबीबार न
टाइपोंमें, पुष्ट कागज पर ४० चित्रोंसे विभूषित हो
भेंट किया जा रहा है, आशा है हमारे भाई सदा
तरह इस कार्यालय पर वैसाही प्रेम रक्खेंगे जैसा
आये हैं।

शीघ्रताके कारण दृष्टि दोषसे अगर कुछ त्रुटि
रह गई हों तो क्षमा करेंगे।

विनीत—

दुलीचन्द परवार।

विषय-सूची ।

पांचवां अध्याय

छठा अध्याय

सावधान ।

जिनवाणी संग्रह का जैन समाजमें अत्याधिक प्रचार देख कर नीच प्रकृतिके व्यक्तियोंने उसीसे मिलता जुलता नाम रख कर ग्राहकोंको खूब धोखा दिया है।

अब यह

सच्चा जिनवाणी संग्रह (सचित्र) आपके साम्हने है, मगाते समय साफ लिखें सातवीं आवृत्तिका ४१५ पाठ हों १६ हाफटोन और २४ लाइन ब्लाक अर्थात् कुल ४० चित्र हों ! वही भेजें—

सच्चे संग्रहकी खास पहिचान ।

पुस्तक पर—

"जिनवाणी प्रचारक कार्यालय" 'जिनवाणी प्रेस"

का

जिनवाणी संग्रह (सचित्र) लिखा देखें

प्रकाशकः—

दुलीचन्द पन्नालाल परवार,
मालिक—जिनवाणी प्रचारक कार्यालय,
१६११, हरीसन रोड, कलकत्ता।

सं० १६८५ प्रथमवार १०००
„ १६८५ द्वितीयवार २०००
„ १६८६ तृतीयवार २०००
„ १६८६ चौथीवार २०००
„ १६८७ पांचवींबार २०००
„ १६८८ छठवींवार ३०००
„ १६६० सातवींबार १०००

प्रिन्टर

दुलीचन्द परवार,
मालिक—"जिनवाणी प्रेस"

भगवानकी दीक्षा कल्याणकका दृश्य

श्री परमात्मने नमः ।

पहला अध्याय ।

१—णमोकार मन्त्र ।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

ॐ अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नमो नमः ।

इस णमोकार मन्त्रमें पांच पद, पैंतीस अक्षर, अट्ठावन मात्रायें हैं ॥

२—णमोकार मन्त्रका माहात्म्य ।

(पं० [illegible] न्यायतीर्थ)

णमोकार है मंत्र सर्व पापोंका हर्ता ।
मङ्गल सबमें प्रथम यही श्रुति ज्ञानसुभर्ता ॥
संसार सार है मन्त्र जगमें अनुपम भाई ।
सर्व पाप अरिनाश मंत्र स्वर्गकी सुखदाई ॥१॥
संसार छेदके लिये मंत्र है सर्व प्रधाना ।
जिसको अमृत सार जाननेसे सब माना ।

कर्मनाश कर ऋद्धि सिद्धि शिव सुखका दाता ॥
मंत्र प्रथम जिन मंत्र सदा तू क्यों नहिं ध्याता॥२॥
सुर सम्पत्ति प्रधान मुक्ति लक्ष्मी भी होती।
सर्व विपत्ति विनाश ज्ञानकी ज्योती होती ॥
पशु पक्षी नर नारि श्वपच जो धारण करते।
ज्ञान, मान, सन्मान, और सुख सम्पत्ति भरते॥३॥
जीवन्धर थे स्वामि एक जन करुणा धारी।
कुत्ते को दे मंत्र शीघ्र गति भली सुधारी ॥
मन्त्र प्रभाव स्वर्गमें जाकर सब सुख पाये।
ध्याये जो जन उसे सर्व सुख हों मन चाये ॥ ४

३—सुप्रभात स्तोत्रम्।

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे । यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः सङ्गीतस्तुतिमङ्गलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः ॥ १ ॥ श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभिरालीढपादयुगदुर्धरकर्मदूर श्रीनाभिनन्दनजिनाजितशम्भवाख्य ! त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥२॥ छत्रत्रयप्रचलचामरवीज्यमान देवाभिनन्दनमुने सुमते जिनेन्द्र ! पद्मप्रभारुणमणि द्युतिभासुराङ्ग, त्व० ॥ ३ ॥ अर्हन् सुपार्श्वकदलीदलवर्णगात्र प्रालेयतारगिरिमौक्तिकवर्णगौर । चन्द्रप्रभस्फटिकपान्डुर पुष्पदन्त, त्व० ॥ ४ ॥ संतप्तकाञ्चनरुचे जिनशीतलाख्य

श्रेयान्विनष्ट दुरिताष्टकलङ्कपङ्क। बंधूकबंधुररुचे जिनवा-
सुपूज्य, त्व० ॥ ५ ॥ उद्दण्डदर्पकरिपो विमलामलांगस्थेम-
न्ननन्तजिदनन्तसुखाम्बुराशो। दुष्कर्मकल्मषविवर्जित
धर्मनाथ, त्व० ॥ ६ ॥ देवामरीकुसुमसन्निभ शांतिनाथ
कुन्थो दयागुणविभूषणभूषितांग। देवाधिदेव भगव-
न्नरतीर्थनाथ, त्व० ॥७॥ यन्मोहमल्लमदभञ्जनमल्लिनाथ
क्षेमङ्करावितथशासनसुव्रताख्य। यत्सम्पदा प्रशमितो
नमिनामधेय, त्व० ॥८॥ तापिच्छगुच्छरुचिरोज्ज्वल नेमि-
नाथ घोरोपसर्गविजयन् जिन पार्श्वनाथ। स्याद्वाद सूक्ति-
मणिदर्पणवर्द्धमान, त्व० ॥ ९ ॥ प्रालेय नीलहरितारुण-
पीतभासंयन्मूर्तिमव्ययसुखावसथंमुनीन्द्राः। ध्यायन्ति
सप्ततिशतं जिन वल्लभानां, त्व ॥ १० ॥ सुप्रभातं सुन-
क्षत्रं मांगल्यं परिकीर्तितम्। चतुर्विंशतितीर्थानां सुप्र-
भातं दिने दिने ॥११॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेय प्रत्य-
भिनन्दितम्। देवता ऋषयः सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने
॥ १२ ॥ सुप्रभातं तवैकस्य वृषभस्य महात्मनः। येन
प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्वसुखावहम् ॥ १३ ॥ सुप्रभातं
जिनेन्द्राणां ज्ञानोन्मीलित चक्षुषाम्। अज्ञानतिमिरान्धानां
नित्यमस्तमितो रविः ॥ १४ ॥ सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य
वीरः कमललोचनः। येन कर्माटवी दग्धा शुक्लध्यानोग्र-
वह्निना ॥१५॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं सुकल्याणं सुमङ्गलम्।
त्रैलोक्यहितकर्तॄणां जिनानामेव शासनम् ॥ १६ ॥

४—आराधना पाठ।

(स्नान करते समय बोलना चाहिये)

मैं देव नित अरहंत चाहूं, सिद्धका सुमिरन करौं। सूरगुरुमुनि तीनिपद ये, साधुपद हिरदय धरौं॥ मैं करुणामयजु चाहूं, जहां हिंसा रंच ना। मैं शास्त्र विराग चाहूं, जासुमें परपंचना॥ १॥ चौबीस श्रीजिन देव चाहूं और देव न मन बसै। जिन बीस चाहूं, वंदिते पातकनसै॥ गिरनार शिखर समेद चंपापुर पावापुरी। कैलाश श्रीजिनधाम चाहूं, भजत अघजुरी॥ २॥ नवतत्त्वका सरधान चाहूं, और तत्त्व मन धरौं। षद्‌द्रव्यगुन परजाय चाहूं, ठीक तासों भय हरों॥ पूजा परम जिनराज चाहूं, और देव न हूं सदा तिहुंकालकी मैं जाप चाहूं पाप नहिं लागै कदा॥३॥ म्यक दर्शन ज्ञान चारित, सदा चाहूं भावसों। क्षणी मैं धर्म चाहूं, महा हरख उछावसों॥ सोलह भारन दुख निवारण, सदा चाहूं प्रीतिसों। मैं पर्व चाहूं, महामंगल रीतिसों॥४॥ मैं वेद चारों चाहूं, आदि अन्त निवाहसों। पाये धरमके चार अधिक चित्त उछाहसों॥ मैं दान चारौं सदा चाहूं, नवशि लाहो लहूं। आराधना मैं चारि चाहूं, अन्तमें गहूं॥ ५॥ भावना बारह जु भाऊं, भाव होत हूं। मैं व्रत जु बारह सदा चाहूं, त्याग भाव

हैं ॥ प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूं, ध्यान आसन सोहना। वसुकर्मतैं मैं छुटा चाहूं, शिवलहूं जहँ मोह ना ॥६॥ मैं साधुजनको संग चाहूं, प्रीति तिनहीसों करों। मैं पर्वके उपवास चाहूं, अवर आरम्भ परिहरों॥ इस दुक्ख पंचमकालमाहीं, कुल शरावक मैं लह्यो। अरु महाव्रत धरिसकों नाहीं, निबल तन मैंने गह्यो ॥ ७ ॥ आराधना उत्तम सदा, चाहूं सुनो जिनरायजी। तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी ॥ वसुकर्मनाश विकाश ज्ञानप्रकाश मोको कीजिये। करि सुगतिगमन समाधिमरन सुभक्ति चरनन दीजिये ॥ ८ ॥

५—दृष्टाष्टक स्तोत्र।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि भव्यात्मनां विभवसंभवभूरिहेतुः। दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वलकूटकोटीनद्धध्वजप्रकरराजिविराजमानम् ॥ १ ॥ दृष्टं जिनेन्द्र भवनं सुवर्णकलक्ष्मीधर्मर्द्धि वर्द्धि तमहामुनिसेव्यमानम्। विद्याधरामरवधूजनमुक्तदिव्यपुष्पाञ्जलिप्रकरशोभितभूमिभागम् ॥२॥ दृष्टं जिनेन्द्र भवनं भवनादिवासविख्यातनाकगणिकागणगीयमानम्। नानामणिप्रचयभासुररश्मिजालव्यालीढनिर्मलविशालगवाक्षजालम् ॥ ३ ॥ दृष्टं जिनेन्द्र भवनं सुरसिद्धयक्षगन्धर्वकिन्नरकरार्पितवेणुवीणा। सङ्गीतमिश्रितनमस्कृतधीरनादैरापूरिताम्बरतलोरुदिगन्तरालम् ॥ ४ ॥ दृष्टं जिनेन्द्र भवनं विलसद्विलोलमालाकुलालि-

ललितालकविभ्रमाणम् । माधुर्यवाद्यलयनृत्यविलासिनीनां लीलाचलद्वलयनूपुरनादरम्यम् ॥ ५ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणिरत्नहेमसारोज्ज्वलैः कलशचामरदर्पणाद्यैः । सन्मङ्गलैः सततमष्टशतप्रभेदैर्विभ्राजितं विमलमौक्तिकदामशोभम् ॥ ६ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेवदारुकर्पूरचन्दनतरुष्कसुगन्धिधूपैः । मेघायमानगगने पवनाभिघातचंचच्चलद्विमलकेतनतुङ्गशालम् ॥७॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं धवलातपत्रच्छायानिमग्नतनुयक्षकुमारवृन्दैः । दोधूयमानसितचामरपङ्क्तिभासं भामण्डलद्युतियुतप्रतिमाभिरामम् ॥८॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकारपुष्पोपहाररमणीयसुरत्नभूमिः । नित्यं-वसन्ततिलकश्रियमादधानं सन्मङ्गलं सकलचन्द्रमुनीन्द्रवंद्यम् ॥९॥ दृष्टं मयाद्यमणिकाञ्चनचित्रतुङ्गसिंहासनादिजिनबिम्बविभूतियुक्तम् । चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे सन्मङ्गलं सकलचन्द्रमुनीन्द्रवन्द्यम् ॥ १० ॥

६—अद्याष्टक स्तोत्र ।

अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम । त्वामद्राक्षं यतो देव हेतुमक्षयसम्पदः ॥ १ ॥ अद्य संसारगम्भीरपारावारः सुदुस्तरः । सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ २ ॥ अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते । स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ३ ॥ अद्य मे सफलं जन्म प्रशस्तं सर्वमङ्गलम् । संसारार्ण-

वतीर्णोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ४ ॥ अद्य कर्माष्टक-ज्वालं विधूतं सकषायकम् । दुर्गतेर्विनिवृत्तोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ५ ॥ अद्य सौम्याग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादशस्थिताः । नष्टानि विघ्नजालानि जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ६ ॥ अद्य नष्टो महाबन्धः कर्मणां दुःखदायकः । सुखसङ्गं समापन्नो जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ७ ॥ अद्य कर्माष्टकं नष्टं दुःखोत्पादनकारकम् । सुखाम्भोधिनिमग्नोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥८॥ अद्य मिथ्यान्धकारस्य हन्ता ज्ञानदिवाकरः । उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ९ ॥ अद्याहं सुकृती भूतो निर्धूताशेषकल्मषः । भुवनत्रयपूज्योऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥१०॥ अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानन्दितमानसः । तस्य सर्वार्थसंसिद्धिर्जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ११ ॥

७—तीर्थंकरोंकी स्तुति प्रभाती ।

बन्दौं जिनदेव सदाचरण कमलतेरे । जा प्रसाद सकल कर्म छूटत अघ मेरे ॥ टेक ॥ ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन केरे । सुमति पद्म श्रीसुपार्श्व चन्द्रप्रभु मेरे ॥ १ ॥ पुष्पदंत शीतल श्रीयांस गुण घनेरे । बासपूज्य विमल अनन्त धर्म जग उजेरे ॥ २ ॥ शान्ति कुन्थ अरह मल्लि मुनिसुव्रत केरे । नमि नेमि पार्श्व नाथ महावीर मेरे ॥ ३ ॥ लेत नाम अष्ट याम छूटत भव फेरे । जन्म पाय जादोराय चरननके चेरे ॥ ४ ॥

८—णमोकार महिमा प्रभाती।

प्रातकाल मन्त्र जपो णमोकार भाई। अक्षर पैंतीस शुद्ध हृदय में धराई॥ टेक॥ नरभव तेरो सुफल होत पातक टर जाई। विघन जासु दूर होत संकटमें सहाई॥ १॥ कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि जाई। ऋद्धि सिद्धि पारस तेरे प्रगटाई॥ २॥ मन्त्र जन्त्र तंत्र सब जाही बनाई। सम्पति भण्डार भरे अक्षय निधि आई॥ ३॥ तीन लोक मांहि सार वेदनमें गाई। जगमें प्रसिद्ध धन्य मङ्गलीक भाई॥ ४॥

९—दौलतकृत प्रभाती।

पारस जिन चरण निरखि हरख यों लहायो। चितवन चन्दा चकोर ज्यों प्रमोद पायो॥ टेक॥ ज्यों सुनि घनघोर शोर मोर हर्षको न ओर रङ्क निधि समाज राज पाय मुदित थायो॥ १॥ ज्यों जन चिर क्षुधित कोय, भोजन लहि सुखित होय, भेषज गदहरन पाय आतुर हरषायो॥ २॥ बासर धन्य आज, दुरित दूर परे आज, शान्ताकृति देखि महामोह तम विलायो॥ ३॥ जाके गुन जानन जिमि भानन भव कानन इमि जान 'दौल' सरन आय शिव सुख ललचायो॥ ४॥

१०—भागचन्दकृत प्रभाती।

परणति सब जीवनकी तीन भांति वरणी। एक पुण्य एक पाप एक राग हरणी॥टेक॥ जामें शुभ अशुभ बन्ध

वीतराग परणति सब भव समुद्र तरणी ॥ १ ॥ छाँड़ि अशुभ क्रिया कलाप मत करो कदाचि पाप शुभमें न मगन होय अशुद्धता विसरणी ॥ २ ॥ यावत ही शुभो-पयोग तावत ही मन उद्योग तावत ही करणयोग कही पुण्य करणी ॥३॥ 'भागचन्द' जा प्रकार जीव लहे सुख अपार याको निरधार स्याद्वाद्की उचरणी ॥ ४ ॥

११—जैनदासकृत प्रभाती।

उठि प्रभात पूजिये श्री आदिनाथ देवा। आलसको त्याग जागि पूजा विधि सेवा ॥टेक॥ जल चन्दन अक्षत प्रीति सम लेवा। पुष्प सुबास होय काम जरि जेवा ॥ १ ॥ नैवेद्य उज्ज्वल करि दीप रतन लेवा। धूपले सुगन्ध होय अष्ट कर्म खेवा ॥ २ ॥ श्रीफल बदाम लौंग डोंड़ा शुभ मेवा। उज्ज्वल करि अर्घ पूजि श्रीजिनेन्द्र देवा ॥ ३ ॥ जिनजी तुम अर्ज सुनो भवदधि उतरेवा। जैनदास जन्म सुफल भगति प्रभू एवा ॥ ४ ॥

१२—भवानीकृत प्रभाती।

ताण्डव सुरपतिने जहां हर्ष भाव धारी ॥ टेक ॥ रुनु रुनु रुनु नूपुर ध्वनि ठुमकि ठुमकि पैंजन पग झुन झुन झुन कीन छवि लगति अति प्यारी ॥१॥ अ न न न न सारदानि स न न न न न किनरान अ घ घ घ गंधर्व सर्व देत जहां तारी ॥ २ ॥ पं पं पं पग झपटि फं फं फ फ न न न न न वं व मृदंग बाजे बीना धुन

सारी ॥ ३ ॥ अ द द द द द विद्याधर दि दि दि दि दि दि देव सकल दास भवानी ज्यों कहें जिन चरनन वलिहारी ॥ ४ ॥

१३—प्रभाती (राग भैरों)

उठोरे सुज्ञानी जीव, जिनगुन गावोरे ॥ उठोरे० ॥ टेक ॥ निशि तो नशाय गई, भानको उद्योत भयो। ध्यानको लगावो प्यारे, नींदको भगावोरे ॥ उठोरे० ॥ १ ॥ भववनचौरासी बीच, भ्रमतो फिरत आंख मीच, मोहजाल फंद फंस्यो, जन्म मृत्यु पावोरे ॥ उठो रे० ॥ २ ॥ आरज पृथ्वीमें आय, उत्तम नरजन्म पाय, श्रावककुलको लहाय, मुक्तिक्यों न जावोरे ॥ उठो रे० ॥ ३ ॥ विषयनि राचि राचि, बहुविधि पाप सांचि, नरकनि जाय क्यों, अनेक दुःख पावोरे। उठो रे० ॥ ४ ॥ परको मिलाप त्यागि, आतमके काज लागि, सुबुधि बतावै गुरु, ज्ञान क्यों न लावोरे ॥ उठो रे० ॥५॥

१४—शारदास्तवन प्रभाती।

केवलिकन्ये वाङ्मय गंगे, जगदंबे अघनाश हमारे। सत्य स्वरूपे मंगलरूपे, मनमंदिरमें तिष्ठ हमारे ॥ टेक ॥ जंबूस्वामी गौतम गणधर, हुये सुधर्मा पुत्र तुम्हारे। जगतैं स्वयं पार है करके, दे उपदेश बहुत जन तारे ॥ १ ॥ कुंदकुंद अकलंकदेव अरु, विद्यानंदि आदि मुनि सारे। नवकुलकुमुद चंद्रमा ये शुभ, शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे

॥ २ ॥ तूने उत्तम तत्त्व प्रकाशे, जगके भ्रम सब क्षय कर डारे। तेरी ज्योति निरख लज्जावश, रवि शशि छिपते नित्य विचारे ॥३॥ भवभय पीडित व्यथित चित्त जन, जब जो आए सरन तिहारे। छिन भरमें उनके तब तुमने, करुणाकरि संकट सब टारे ॥ ४ ॥ जबतक विषय कषाय नशै नहिं, कर्मशत्रु नहिं जांय निवारे। तब तक 'ज्ञानानंद' रहै नित, सबजीवनतैंसमता धारे ॥ ५ ॥

१५—जवाहरकृत प्रभाती।

उठि प्रभात सुमिरन कर श्री जिनेन्द्र देवा ॥ टेक ॥ सिंहासन झिलमिलात तीन छत्र शिर सुहात चमर फह-रात सदा भविजन भजेवा ॥१॥ भेंटे पार्श्व जिनेन्द्र कर्मके कटेजु फंद अस्वसेनके जु नंद वामा सुखदेवा ॥२॥ वानी तिहुंकाल खिरे पशुवनपर दृष्टि परै नमत सुरनर मुनीन्द्रा-दिक चरनशीश नेवा ॥ ३ ॥ प्रभुके चरणारविंद जपत हैं 'जवाहरचंद' कर जोरें ध्यान धरैं चाहत नितसेवा ॥४॥

१६—बृहद्द दर्शन पाठ।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं, ॥ १ ॥

मंदिरजीकी वेदीगृहमें प्रवेश करते ही "ॐ जय जय जय, निः सहि निः सहि निः सहि" इस प्रकार उच्चारण करके उपर्युक्त महामंत्रका ९ बार पाठ करे तत्पश्चात्—

चत्तारि मंगलं, अरहन्त मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू

मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥१॥ चत्तारि लोगुत्तमा, अरहन्तलोगुत्तमा सिद्धलोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥ २ ॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहन्त सरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॐ ह्रौं ह्रौं स्वाहा ॥

१ श्रीऋषभः २ अजितः ३ संभवः ४ अभिनन्दनः ५ सुमतिः ६ पद्मप्रभः ७ सुपार्श्वः ८ चन्द्रप्रभः ९ पुष्पदंतः १० शीतलः ११ श्रेयाँसः १२ वासुपुज्यः १३ विमलः १४ अनन्तः १५ धर्मः १६ शांतिः १७ कुन्थुः १८ अरः १९ मल्लिः २० मुनिसुव्रतः २१ नमिः २२ नेमिः २३ पार्श्वनाथः २४ महावीरः इति वर्तमानकाल सम्बन्धि चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमोनमः ।

इस प्रकार बोलकर साष्टाग नमस्कार करना चाहिये। पश्चात् चावल चढ़ाना हो तो नीचे लिखा पद्य बोलकर चढ़ावै।

यह भवसमुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई ।
अति दृढ परमपावन जथारथ भक्तिवर नौका सही ॥
उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥१॥
तंदुल सालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन । जासों पूजों परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन ॥ १ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

यदि पुष्पोंसे पूजन करना हो तो नीचे लिखा पद्य पढ़कर चढ़ावे ।

जे विनयवंत सुभव्य उर अंबुज-प्रकाशन भान हैं ॥
जे एकमुख चारित्र भाषत; त्रिजगमाहिं प्रधान हैं ।
लहि कुंदकमलादिक पहुप ; भव भव कुवेदनसों बचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥२॥
विविधभांति परिमलसुमन; भ्रमर जास आधीन । तासों
पूजौं परमपद; देवशास्त्रगुरु तीन ॥ २ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वसनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

यदि किसीको लोंग, बादाम इलायची या कोई प्रासुक फल चढ़ाना हो तो नीचे लिखा पद्य पढ़कर चढ़ावे ।

लोचन सुरसना घ्राण उर उत्साहके करतार हैं ।
मोपै न उपमा जाय वरणी; सकल फल गुण सार हैं ॥
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन; सकल अमृतरस सचूं ।
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥३॥
जे प्रधान फलफलविषै, पंचकरण रसलीन । जासौं पूजौं
परमपद; देवशास्त्रगुरु तीन ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

किसीको अर्घ चढ़ाना हो, तो नीचे लिखा पद्य बोलकर चढ़ाना चाहिये ।

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत पुष्प चरु दीपक धरूं । वर धूप निर्मल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं; । इह भांति अर्घ चढ़ाय नित भवि करत शिव-पंकति मचूं । अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नित पूजा

रचूं ॥ ४ ॥ वसुविधि अर्घ सँजोयके, अतिउछाह मन कीन । जासों पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

धूप खेनेका मंत्र ।

दुष्टाष्टकर्मेन्धन पुष्टजालसंधूपने भासुर धूमकेतून् । धूपैर्विधूतान्य सुगंधगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥ ५ ॥ दोहा—अगनिमांहि परिमलदहन, चंदनादि गुण लीन । जासों पूजूं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥ ५ ॥

गंधोदक लेनेका मंत्र ।

निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्रं पापनाशकं । जिन गंधोदकं वंदे, अष्टकर्मविनाशकं ॥ ६ ॥ दोहा—निर्मलसे निर्मल अती अघनाशक सुखसीर । वंदूं जिनअभिषेककृत, यह गंधोदक नीर ॥ ६ ॥

आशिका लेनेका दोहा ।

श्रीजिनवरकी आशिका, लीजै शीश चढ़ाय ।
भव भवके पातक कटैं, दुःख दूर हो जाय ॥

शास्त्रजीको नमस्कार करनेका सवैया ।

मत्त गयन्द ।

वीर हिमाचलतैं निकसी, गुरु गौतमके मुखकुंड ढरी है । मोहमहाचल भेद चली, जगकी जडतातप दूर करी है ॥ ज्ञान पयोनिधिमांहिं रली, बहु भंगतरंगनिसों उछरी है । ता शुचि शारद गंगनदी प्रति, मैं अंजुरी निज शीश

धरी है ॥१॥ या जगमंदिरमें अनिवार अज्ञान अंधेर छयो अति भारी। श्रीजिनकी धुनि दीपशिखासम, जो नहिं होति प्रकाशन हारी॥ तो किस भांति पदारथ पांति, कहां लहते, रहते अविचारी। या विधि संत कहैं धनि हैं, धनि हैं जिनवैन बड़े उपकारी॥ २॥

१७—दर्शनदशक।

छप्पय

देखे श्रीजिनराज, आज सब विघन नशाये। देखे श्रीजिनराज, आज सब मंगल छाये॥ देखे श्रीजिनराज काज करना कछु नाहीं। देखे श्रीजिनराज, हौंस पूरी मनमांही॥ तुम देखे श्रीजिनराज पद, भौजल अंजुलि-जल भया। चिंतामनिपारसकल्पतरु, मोहसबनिसों उठि गया॥ १॥

देखे श्रीजिनराज, भाज अघ जाहिं दिगंतर। देखे श्रीजिनराज, काज सब होंय निरंतर॥ देखे श्रीजिनराज, काज मनवांछित करिये। देखे श्रीजिनरज नाथ, दुख कबहुं न भरिये॥ तुम देखे श्रीजिनराजपद, रोमरोम सुख पाइये। धनि आज दिवस धनि अब घरी माथ नाथकों नाइये॥ २॥

धन्य धन्य जिनधर्मकर्मकों छिनमें तोरै। धन्य धन्य जिनधर्म परमपदसौं हित जोरै॥ धन्य धन्य जिनधर्म भर्मको मूल मिटावै। धन्य धन्य जिनधर्म शर्मकी राह

बतावै ॥ जग धन्य धन्य जिनधर्म यह, सो परगट तुमने किया। भविखेत पापतपतपतकौं, मेघरूप ह्वै सुख दिया ॥ ३ ॥

तेजसूरसम कहूँ, तपत दुखदायक प्रानी। कांति चंदसम कहूँ कलंकित मूरति मानी। वारिधिसम गुण कहूँ, खारमें कौन भलप्पन ॥ पारससम जस कहूँ, आपसम करै न परतन ॥ इन आदि पदारथ लोकमें, तुम समान क्यों दीजिये। तुम महाराज अनुपमदसा, मोहि अनूपम कीजिये ॥ ४ ॥ तब बिलम्ब नहिं कियो, चीर द्रौपदिको बाढ्यो। तब बिलम्ब नहिं कियो, सेठ सिंहासन चाढ्यो ॥ तब बिलम्ब नहिं कियो, सीय पावकतैं टार्यो। तब बिलम्ब नहिं कियो, नीर मातंग उबार्यो ॥ इहिविधि अनेक दुख भगतके, चूर दूर किय सुख अवनि। प्रभु मोहि दुःख नासनिविषैं, अब बिलम्ब कारण कवन।

कियो मौनतैं गौन, मिटी आरति संसारी। राह आन तुम ध्यान, फिकर भाजी दुखकारी। देखे श्रीजिनराज, पाप मिथ्यात विलायो। पूजा श्रुति बहु भगति, करत सम्यकगुन आयो। इस मारवाड़ संसारमें कल्पवृक्ष तुम दरश है। प्रभु मोहि देहु भौ भौ विषैं, यह वांछा मन सरस है ॥ ६ ॥

जै जै श्रीजिनदेव, सेवतुमरी अघनाशक। जै जै

सच्चा जिनवाणी संग्रह (सचित्र)

हनुमानजी विमानसे गिरे और शिला चूर्ण हुई।

॥ १० ॥ दर्शन दशक कवित्त, चित्तसों पढ़ै त्रिक
प्रीतम सनमुख होय, खोय चिंता गृहजालं ॥ सु
निसिदिन जाय, अंत सुरराय कहावै। सुर कहाय
गाय, जनम मृति जरा मिटावै ॥ धनि जैनधर्म दी
गट, पाप तिमिर छयकार है। लखि साहिबराय सुअ
सों, सरधातारनहार है ॥ ११ ॥

१८—देव दर्शन।

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनं,। दर्शन
स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनं ॥१॥ दर्शनेन जिनेंद्रा-
णाम्, साधूनां वंदनेन च। न चिरं तिष्ठते पापम्,
छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥२॥ वीतरागमुखं दृष्ट्वा पद्मरागस-
मप्रभं। अनेकजन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥३॥ दर्शनं
जिनसूर्यस्य संसारध्वान्तनाशनं। बोधनं चित्तपद्मस्य,
समस्तार्थप्रकाशनं ॥४॥ दर्शनं जिनचंद्रस्य, सद्धर्मामृतव-
र्षणं। जन्मदाहविनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः ॥५॥ जीवा-
दितत्त्वं प्रतिपादकाय। सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय ॥
प्रशांतरूपाय दिगंबराय। देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥६॥
चिदानन्दैकरूपाय, जिनाय परमात्मने। परमात्मप्रकाशाय,
नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥७॥ अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमे-
वशरणं मम। तस्मात्कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर
॥८॥ नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये। वीत-
रागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥ ९ ॥ जिने भ-

क्तिर्जिने भक्ति-र्जिने भक्तिर्दिने दिने। सदामेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥ १० ॥ जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भवच्चक्रवर्त्यपि। स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः॥ ११ ॥जन्मजन्मकृतं पापं जन्मकोटिभिरर्जितं। जन्ममृत्युजरारोगं हन्यते जिनदर्शनात् ॥१२॥ अद्याभवत् सुफलता नयनद्वयस्य। देव त्वदीयचरणांबुजवीक्षणेन। अद्य त्रिलोकतिलकप्रतिभापते मे। संसारवारिधिरयंचुलुकप्रमाणं ॥

१६—दर्शन स्तुति।

छप्पय।

तुव जिनेन्द्र दिठ्ठियो, आज पातक सब भज्जे। तुव जिनेन्द्र दिठ्ठियो, आज बैरी सब लज्जे॥ तुव जिनेन्द्र दिठ्ठियो, आज मैं सरवस पायो। तुव जिनेन्द्र दिठ्ठियो आज चिंतामणि आयौ ॥ जै जै जिनेन्द्र त्रिभुवन तिलक आज काज मेरे सरयो। कर जोरि भविक विनती करत, आज सकल भवदुख टरयो ॥ १ ॥ तुव जिनंद ममदेव सेव मैं तुमरी करिहौं। तुव जिनंद मम देव, नाथ तुम हिरदै धरिहौं। तुवजिनंद मम देव, तुही साहिब मैं बंदा। तुव जिनंद मम देव, मही कुमुदनि तुम चंदा ॥जै जै जिनंद भवि कमल रवि, मेरो दुःख निवारिकै। लीजै निकाल भव जालतैं, अपनो भक्त विचारिकै ॥ २ ॥

२०—बुधजनकृत स्तुति ।

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरन आयो सरनजी
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरनजी ॥ १ ॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविधप्रकारजी ।
या बुद्धि सेती निज न जाण्यो, भ्रम गिण्यो हितकारजी
॥२॥ भवविकट वनमैं करम वैरी, ज्ञानधन मेरो हरयो । तब
इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिरयो ॥ ३ ॥
धन घड़ी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो ।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुको लखलयो
॥ ४ ॥ छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासापै धरैं ।
वसु प्रातिहार्य अनंत गुण जुत, कोटि रवि छविको
हरैं ॥५॥ मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदयरवि आतम
भयो । मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि
लयो ॥ ६ ॥ मैं हाथ जोड नवाय मस्तक, बीनऊं तुअ
चरन जी । सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन
तरन जी ॥७॥ जाचूं नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन
साथजी । बुध जाचहूँ तुअ भक्ति भव भव, दीजिये
शिव नाथ जी ॥ ८ ॥

२१—पार्श्वनाथ स्तुति ।

भुजङ्गप्रयात छन्द

नरेन्द्रं फणींद्रं सुरेंद्रं अधीसं । शतेन्द्रं सु पूजैं
भजैं नाय शीशं ॥ मुनींद्रं गणेंद्रं नमो जोड़ि हाथं ।

नमो देव देवं सदा पार्श्वनाथं ॥१॥ गजेंद्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुड़ावे। महा आगतैं नागतैं तू बचावै ॥ महावीरतैं युद्धमें तू जितावै। महा रोगतैं बंधतैं तू छुड़ावै ॥२॥ दुखी-दुखहर्त्ता सुखीसुक्खकर्त्ता। सदा सेवकोंको महानन्द भर्त्ता ॥ हरे यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं। विषं डांकिनी विघ्नके भय अवाचं ॥३॥ दरिद्रीनको द्रव्यके दान दीने। अपुत्रीनकों तू भले पुत्र कीने ॥ महासंकटोंसे निकारै विधाता। सबै संपदा सर्वको देहि दाता ॥ ४ ॥ महाचोरको वज्रको भय निवारै। महापौनके पुंजतैं तू उबारै ॥ महाक्रोधकी अग्निको मेघधारा। महालोभशैलेशको वज्र भारा ॥ ५ ॥ महामोह अंधेरको ज्ञानभानं। महाकर्मकांतारको दौं प्रधानं ॥ किये नाग नागिन अधोलोकस्वामी। हर्यो मान तू दैत्यको हो अकामी ॥ ६ ॥ तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनं। तुही दिव्यचिन्तामणी नाग एनं ॥ पशू नर्कके दुःखतैं तू छुड़ावै। महास्वर्गमें मुक्तिमें तू बसावै ॥७॥ करै लोहको हेमपाषाण नामी रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी ॥ करै सेव ताकी करैं देव सेवा। सुनै बैन सोही लहै ज्ञान मेवा ॥ ८ ॥ जपै जाप ताको नहीं पाप लागै। धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै ॥ बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे। तुम्हारी कृपातैं सरैं काज मेरे ॥ दोहा—

गणधर इन्द्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान।

'द्यानत' प्रीति निहारिकैं, कीजे आप समान ॥ १ ॥

२२—भूधरकृत पार्श्वनाथ स्तुति।

दोहा—कर जिनपूजा अष्टविधि, भावभक्ति जिन भाय।
अब सुरेश परमेश थुति, करौं शीश निज नाय॥
प्रभु इस जग समरथ ना कोय। जासौं तुम यश वर्णन होय॥ चार ज्ञानधारी मुनि थकैं। हमसे मंद कहा करि सकैं॥ १ ॥ यह उर जानत निश्चय कीन। जिनमहिमा वर्णन हम हीन॥ पर तुम भक्तिथकी वाचाल। तिस वश हो, गाऊँ गुणमाल॥ २ ॥ जय तीर्थंकर त्रिभुवनधनी। जय चन्द्रोपम चूड़ामनी॥ जय जय परम धरमदातार। कर्मकुलाचल-चूरनहार॥ ३ ॥ जय शिव-कामिनिकंत अर्हंत। अतुल अनन्त चतुष्टयवन्त॥ जय जय आश-भरन बड़भाग। तपलछमीके सुभग सुहाग ॥ ४ ॥ जय जय धर्मध्वजाधर धीर। स्वर्ग-मोक्षदाता वर वीर। जय रतनत्रय रतनकरन्ड। जय जिन तारन-तरन तरन्ड॥५॥ जय जय समवसरनशृङ्गार। जय संशयवन-दहन तुपार॥ जय जय निर्विकार निर्दोष। जय अनन्तगुणमाणिककोष॥६॥ जय जय ब्रह्मचर्यदलसाज। कामसुभटविजयी भटराज॥ जय जय मोहमहातरु करी। जय जय मदकुञ्जर केहरी॥७॥ क्रोधमहानलमेघ प्रचन्ड। मानमहीधर दामिनिदण्ड॥ मायावेलि धनंजय दाह। लोभसलिलशोषण-दिननाह॥ ८ ॥

अगम अपार । ज्ञान-जहाज न पहुंचै पार ॥ तट ही तटपर डोले सोय । कारज सिद्ध तहां नहिं होय ॥ ९॥ तुम्हरी कीर्ति वेल बहु बढ़ी । यत्न बिना जगमंडप चढ़ी ॥ और कुदेव सुयश निज चहैं । प्रभु अपने थल ही यश लहैं ॥१०॥ जगत जीव घूमैं बिन ज्ञान । कीनौं मोहमहाविष-पान ॥ तुम सेवा विषनाशक जरी । यह मुनिजन मिलि निश्चय करी ॥ ११ ॥ जन्मलता मिथ्यामत मूल । जन्म मरण लागैं तहँ फूल ॥ सो कबहूं बिन भक्ति कुठार । कटै नहीं दुखफल दातार ॥१२॥ कल्पतरूवर चित्रावेलि कामपोरषा नवनिधि मेलि ॥ चिंतामणि पारस पाषान । पुण्य पदारथ और महान ॥ १३ ॥ ये सब एक जन्म संजोग । किंचित सुखदातार नियोग ॥ त्रिभुवननाथ तुम्हारी सेव । जन्म जन्म सुख दायक देव ॥१४॥ तुम जगबांधव तुम जगतात । अशरण शरण विरद विख्यात ॥ तुम सब जीवनके रखवाल । तुम दाता तुम परम दयाल ॥१५॥ तुम पुनीत तुम पुरुष प्रमान । तुम समदर्शी तुम सब जान ॥ जय जिन यज्ञ पुरुष परमेश । तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥१६॥ तुम जगभर्ता तुम जगजान । स्वामि स्वयम्भू तुम अमलान ॥ तुम बिन तीन काल तिहूँलोय । नाहीं शरण जीवको कोय ॥१७॥यातैं अब करुणानिधि नाथ । तुम सम्मुख हम जोड़ैं हाथ ॥ जबलौं निकट होन निर्वा-न । जगनिवास छूटै दुखदान ॥१८॥ तबलौं तुम चरणांबुज

बास । हम उर होऊ यही अरदास ॥ और न कुछ वांछा भगवान । हो दयाल दीजै बरदान ॥ १६ ॥

दोहा—इहिविधि इन्द्रादिक अमर, कर बहु भक्ति विधान
निज कोठे बैठे सकल, प्रभु सन्मुख सुख मान ॥२०॥
जीति कर्म रिपु जे भये केवल लब्धि निवास ।
सो श्रीपार्श्वप्रभु सदा, करो विघ्न घन नास ॥ २१ ॥

२३—अहिछिति पार्श्वनाथ स्तुति ।

जोगीरासेकी चालमे ।

वंदों श्रीपारसपदपंकज, पंच परम गुरु ध्याऊँ । शारदमाय नमो मनवचतन, गुरु गौतम शिर नाऊँ ॥ एक समय श्रीपारस जिनवर वन तिष्ठे वैरागी । बाह्याभ्यंतर परिगह त्यागे आतमसों लव लागी ॥१॥ कल्पद्रुमसम प्रभुतन सोहै, करपल्लव तनसाखा । अविचल आतमध्यान पगे, प्रभु इक चितमन थिर राखा ॥ माता तात कमठचर पापी, तपसी तप करि मूवो । अज्ञानी अज्ञानतपस्या-बल, करि सो सुर हूवो ॥ २ ॥ मारग जात विमान रह्यो थिर, कोप अधिक मन ठान्यो । देखत ध्यानारूढ जिनेश्वर, शत्रु आपनो मान्यो ॥ भीषणरूप भयानक दृग कर, अरुणवरण तन कांपै । मूसलधारासम जल छोडै, अधर उरातल चांपै ॥३॥ अति अँधियार भयानक निशि अति, गर्जे घटा घनघोरै । चपला चपल चमकती चहुंदिशि धीर न धीरज छोरै ॥

शब्द भयंकर करत असुर गण, अग्निजाल-मुख-छोड़ै। पवन प्रचंड चलाय प्रलयवत, द्रुमगण तृणसम तोड़ै ॥४॥ पवन प्रचंड मूसलजलधारा; निशि अति ही अंधियारी। दामिनिदमक चिक्कार पिसाचन, वन कीनो भयकारी॥ अविचल धीर गँभीर जिनेश्वर, थिर आसन वन ठाढे। पवनपरीषहसों नहिं कांपे सुरगिरि सम मन गाढें ॥५॥ प्रभुके पुण्यप्रताप पवनवश, फणपति आसन कंप्यो। अति भय भीत विलोक चहूँदिशि, चकित ह्वै मन जंप्यो॥ जान्यो प्रभु उपसर्ग अवधिबल पद्मावति-जुत धायो। फणको छत्र कियो प्रभुके शिर, सर्वारिष्ठ नशायो ॥ ६ ॥ फणपतिकृत उपसर्गनिवारण, देखि असुर दुठ भाग्यो। लोकालोक विलोकन प्रभुकै, तुरतहिं केवल जाग्यो॥ समवशरनकी रचना कारण, सुरपति आज्ञा दीनी। मणिमुक्ता हीराकंचनमय, धनपति रचना कीनी ॥ ७ ॥ तीनों कोट रचे मणिमंडित, धूलीसाल वनाई। गोपुर तुंग अनूप विराजै, मणिमय गहरी खाई॥ सरवर सजल मनोहर सोहैं, वन उपवनकी शोभा। वापी विविध विचित्र विलोकत, सुरनर खगमन लोभा ॥ ८ ॥ खेवैं देव गलिनमैं घटभरि धूपसुगंध सुहाई। मंद सुगंध प्रतापपवनवश, दशहूँ दिशिमैं छाई॥ गरुड़ादिकके चिन्ह-अलंकृत धुज चहुँओर विराजैं। तोरन वंदनवारी सोहैं, नवनिधिकी छवि छाजैं ॥ ६ ॥ देवीदेव

खड़े दरवानी, देखि बहुत सुख पावै। सम्यक वंत महा-श्रद्धानी, भविसों प्रीति बढ़ावै॥ तीन कोटके मध्य जिनेश्वर, गंधकुटी सुखदाई। अंतरीक्षसिंहासनऊपर, राजैं त्रिभुवनराई॥ १०॥ मणिमय तीनसिंहासन शोभा, वरणत पार न पाऊं। प्रभुके चरणकमलतल सोभैं, मन-मोदित शिर नाऊं॥ चंद्रकांतिसमदीप्ति मनोहर, तीन छत्रछवि आखी। तीनभुवन-ईश्वर ताके हैं, मानों वे सब साखी॥ ११॥ दुंदुभि शब्द गहिर अति बाजैं, उपमा वरणी न जाई। तीनभुवनजीवन प्रति भाखैं, जयघोषण सुखदाई॥ कल्पतरूवर पुष्प सुगंधित, गंधोदककी वर्षा। देवीदेव करैं निशवासर, भविजीवनमन हर्षा॥ १२॥ तरु अशोककी उपमा वरणत, भविजन पार न पावैं। रोग वियोगदुखीजन दर्शत, तुरतहि शोक नशावैं। कुंदपुहुपसम श्वेत मनोहर, चौसठि चमर दुराहीं। मानों निरमल सुरगिरिके तट, झरना झमकि झराहीं॥ १३॥ प्रभुतन-श्रीभामंडलकी द्युति, अद्भुत तेज विराजैं। जाकी दीप्ति मनोहर आगैं, कोटि दिवाकर लाजैं॥ दिव्य वचन सब भाषा गर्भित, खिरहिं त्रिकाल सुबानी। 'आसा' आस करै सो पूरण, श्रीपारस सुखदानी॥ १४॥ सुर नर जिय तिरजंच घनेरे, जिनवंदनचित आनैं। वैरभावपरिहार निरंतर, प्रीति परस्पर ठानैं॥ दशहूँ दिश निरमल अति दीखैं, भयो है शोभ घनेरा।

स्वच्छसरोवरजलकर पूरे, वृक्ष फरे चहुं फेरा ॥१५॥ साली आदिक खेत चहूँदिशि, भई स्वमेव घनेरी। जीवनबध नहिं होय कदाचित, यह अतिशय प्रभुकेरी। नख अरु केश बढ़ै नहिं प्रभुके, नहिं नैनन टमकारे। दर्पणवत प्रभुको तन दीपै, आनन चार निहारे॥ १६॥ इंद्र नरेंद्र धनेंद्र सबै मिलि धर्मामृत अभिलाषी। गण-धरपदशिरनाय सुरासुर प्रभुकी थुति अति भाषी॥ दीनदयाल कृपाल दयानिधि, तृषावन्त भवि चीन्हें। धर्मामृत वर्षाय जिनेश्वर, तोषित बहुविध कीन्हें ॥१७॥ आरज खंडविहार जिनेश्वर, कीनो भविहितकारी। धर्म-चक्र आगौनि चलै प्रभु, केवल महिमा भारी॥ पंद्रह पांति कमल पंद्रह जुग सुंदर हेम सम्हारे। अंतरीछ डग सहित, चलैं प्रभु, चरणांबुजतल धारे ॥१८॥ मिटि उप-सर्ग भये प्रभु केवलि, भूमि पवित्र सुहाई। सो अहि-क्षेत्र थप्यो सुरनर मिल, पूजककों सुखदाई॥ नाम लेत सर्वविघन विनाशै, संकट क्षणमैं चूरै। वन्दन करत बढ़ै सुख सम्पति सुमिरत आशा पूरै॥ १६॥ जो अहि-क्षेत्र विधान पढ़ै नित, अथवा गाय सुनावै। श्रीजिन-भक्ति धरै मनमैं दिढ, मनवांछित फल पावै॥ जुगल वेद वसु एक अङ्क गणि, बुधजन वत्सर जान्यो। मार्ग शुक्ल दशैं रविवासर, 'आसाराम' बखान्यो॥

द्वितिय अध्याय।

स्तुति संग्रह

२४—नामावली स्तुति।

जय जिनन्द सुखकंद नमस्ते। जय जिनंद जित-
फन्द नमस्ते॥ जय जिनन्द त्वरबोध नमस्ते। जय
जिनन्द जितक्रोध नमस्ते॥१॥ पापतापहर इन्दु नमस्ते।
अर्हवरनगुनविन्दु नमस्ते॥ शिष्टाचार विशिष्ट नमस्ते।
इष्टमिष्ट उत्कृष्ट नमस्ते॥२॥ पर्म धर्म वर शर्म नमस्ते।
मर्म अर्मघन धर्म नमस्ते। दृग विशाल वरभाल नमस्ते।
हृदयाल गुनजाल नमस्ते॥३॥ शुद्धबुद्ध अविरुद्ध नम-
स्ते। रिद्धिसिद्ध वरवृद्ध नमस्ते॥ वीतराग विज्ञान नमस्ते।
चिद्विलास धृतध्यान नमस्ते॥४॥ स्वच्छगुणाम्बुधि रत्न
नमस्ते। सत्य हितंकरयत्न नमस्ते॥ कुनयकरीमृगराज
नमस्ते। मिथ्याखगवरबाज नमस्ते॥५॥ भव्यभवोदधि-
पार नमस्ते। शर्मामृतसिवसार नमस्ते॥ दरशज्ञानसु-
खवीर्य नमस्ते। चतुराननधरधीर्य नमस्ते॥६॥ हरिहर-
ब्रह्मा विष्णु नमस्ते। मोहमर्द मनु जिष्णु नमस्ते॥ महा
दान महा भोग नमस्ते। महाज्ञान महजोग नमस्ते॥७॥
महाउग्र तपसूर नमस्ते। महामौन गुणभूरि नमस्ते॥
धर्मचक्र वृषकेतु नमस्ते। भवसमुद्रशतसेतु नमस्ते॥८॥
विद्याईश मुनीश नमस्ते। इन्द्रादिकनुतशीश नमस्ते॥
जय रत्नत्रयराय नमस्ते। सकल जीवदुखदाय नमस्ते॥९॥

अशरणशरणसहाय नमस्ते । भव्यसुपन्थ लगाय नमस्ते ॥
निराकार साकार नमस्ते। एकानेक अधार नमस्ते॥ १० ॥
लोकालोकविलोक नमस्ते । त्रिधा सर्वगुणथोक नमस्ते ॥
सल्लदल्लदलमल्ल नमस्ते। कल्लमल्लजितछल्ल नमस्ते ॥११॥
भुक्तिमुक्तिदातार नमस्ते । उक्तिसुक्तिशृंगार नमस्ते ॥
गुणअनन्त भगवन्त नमस्ते । जै जै जै जैवन्त नमस्ते ॥१२॥

२५—दौलतरामकृत स्तुति ।

दोहा—सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्दरसलीन ।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरिरजरहसविहीन ॥१॥

जय वीतराग विज्ञानपूर । जय मोहतिमिरको हर-नसूर ॥ जय ज्ञान अनंतानंतधार । दृग सुख वीरज-मण्डित अपार ॥ २ ॥ जय परमशांत मुद्रा समेत । भविजनको निज अनुभूति हेत ॥ भविभागनवशजोगे-वशाय । तुमधुनि ह्वै सुनि विभ्रम नसाय ॥ ३ ॥ तुम गुण चिंतत निजपरविवेक । प्रगटै विघटै आपद अनेक ॥ तुम जगभूषण दूषणवियुक्त । सब महिमायुक्त विकल्प-मुक्त ॥ ४ ॥ अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप । परमात्म परम पावन अनूप ॥ शुभअशुभविभाव अभाव कीन । स्वाभा-विकपरिणतिमयअछीन ॥ ५ ॥ अष्टादशदोषविमुक्त धीर । स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर ॥ मुनिगणधरादि सेवत महंत । नवकेवललब्धिरमा धरंत ॥ ६ ॥ तुम शासन सेयअमेय जीव । शिव गए जाहिं जैहैं सदीव ।

भवसागरमैं दुख छार वारि। तारनको अवरन आप टारि
॥ ७ ॥ यह लखि निज दुखगदहरणकाज। तुमही निमि-
त्तकारण इलाज, जाने तातैं मैं शरण आय। उचरौंनिज
दुख जो चिर लहाय ॥ ८ ॥ मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि
आप। अपनाये विधिफल पुण्य पाप। निजको परको
करता पिछान। परमें अनिष्टता इष्ट ठान ॥ ९ ॥ आकु-
लित भयो अज्ञान धारि। ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि
वारि ॥ तनपरणतिमें आपो चितार। कवहूं न अनुभवो
स्वपदसार ॥ १० ॥ तुमको विन जाने जो कलेश। पाये
सो तुम जानत जिनेश। पशुनारकनरसुरगतिमभार।
भव धर धर मर्यो अनंत वार ॥ ११ ॥ अव काललं-
िधवलतैं दयाल। तुम दर्शन पाय भयो खुस्याल ॥ मन
शांत भयो मिटि सकल द्वन्द। चाख्यो स्वातमरस दुख-
निकंद ॥ १२ ॥ तातैं अब ऐसी करहु नाथ। विछुरै न
कभी तुअ चरण साथ ॥ तुम गुणगणको नहिं छेव देव।
जग तारनको तुअ विरद एव ॥ १३ ॥ आतमके अहित
विषय कषाय। इनमें मेरी परिणति न जाय ॥ मैं रहूं
आपमें आप लीन। सो करो होउ ज्यों निजाधीन ॥१४॥
मेरे न चाह कछु और ईश। रत्नत्रयनिधि दीजै मुनीश ॥
मुझ कारजके कारन सु आप। शिव करहु, हरहु मम
मोहताप ॥ १५ ॥ शशि शांतकरन तपहरन हेत। स्वय-
मेव तथा तुम कुशल देत ॥ पीवतपीयूष ज्यों रोग

जाय। त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय ॥ १६ ॥ त्रिभुवन तिहुंकाल मंझार कोय। नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय॥ मो उर यह निश्चय भयो आज। दुखजलधि उतारन तुम जिहाज ॥ १७ ॥

दोहा—तुमगुणगणमणि गणपती, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किमि कहै, नमूं त्रियोग संभार ॥

२६—भूधरकृत गुरु स्तुति।

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जिहाज। आप तिरहिं पर तारहीं, ऐसे श्रीऋषिराज ॥ ते गुरु० ॥ १ ॥ मोहमहारिपु जानिकैं, छाड्यो सब घरबार। होय दिगंबर बन बसे, आतम शुद्ध विचार ॥ तेगुरु० ॥ २ ॥ रोग उरग विलवपु गिण्यो, भोग भुजङ्ग समान। कदलीतरु संसार है, त्याग्यो सब यह जान ॥ तेगुरु० ॥३॥ रतनत्रयनिधिउरधरै, अरु निरग्रन्थ त्रिकाल। मार्यो कामखबीसको, स्वामी परमदयाल ॥ तेगुरु० ॥४॥ पंचमहाव्रत आदरैं, पांचों समिति समेत। तीन गुपति पालैं सदा, अजर अमर पदहेत ॥ तेगुरु० ॥ ५ ॥ धर्म धरैं दशलाक्षनी, भावैं भावन सार। सहैं परीषह बीस दो, चारितरतन-भंडार ॥ तेगुरु० ॥६॥ जेठ तपैं रवि आकरो, सूखै सरवर नीर। शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नगन शरीर ॥तेगुरु० ॥ ७ ॥ पावस रैन डरावनी, बरसै जलधरधार। तरुतल निवसैं तब यती, बाजै झंझा व्यार

॥ तेगुरु० ॥ ८ ॥ शीत पड़ै कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय । तालतरंगनिके तटैं, ठाडे ध्यान लगाय ॥ तेगुरु० ॥ ९ ॥ इहि बिधि दुद्धर तप तपैं, तीनोंकाल मँझार । लागे सहज स्वरूपमें तनसों ममत निवार ॥ तेगुरु० ॥ १० ॥ पूरब भोग न चिंतवैं, आगम बांछैं नाहिं । चहुंगतिके दुखसों डरैं, सुरति लगी शिवमाहिं ॥ ते गुरु०॥११॥ रङ्गमहलमें पौढ़ते, कोमल सेज बिछाय। ते पच्छिम निशि भूमिमें, सोवें संवरिकाय ॥ तेगुरु० ॥ ॥ १२ ॥ गजचढ़ि चलते गर्वसों, सेना सजि चतुरङ्ग। निरखि निरखि पग वे धरैं, पालैं करुणा अङ्ग॥ तेगुरु० ॥ ॥ १३ ॥ वे गुरु चरण जहां धरैं, जगमें तीरथ जेह। सो रज मम मस्तक चढ़ो, भूधर मांगे एह ॥ तेगुरु० ॥१४॥

२७—भूधरकृत गुरु स्तुति ।

बंदों दिगंबर गुरुचरन जग, तरन-तारन जान। जे भरम भारी रोगको हैं, राजवैद्य महान ॥ जिनके अनुग्रह बिन कभी, नहिं कटै कर्मजँजीर। ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥ १ ॥ यह तन अपावन अथिर है, संसार सकल असार। ये भोग विषपकवानसे, इहभांति सोच विचार ॥ तप विरचि श्रीमुनि वनबसे सब छांड़ि परिगह भीर। ते साधु० ॥ २ ॥ जे काच कंचनसम गिनहिं अरि मित्र एक सरूप। निंदा बड़ाई सारिखी, वनखंड शहर अनूप। सुख दुःख जीवन-

मधुविन्दु (संसार दर्शन)
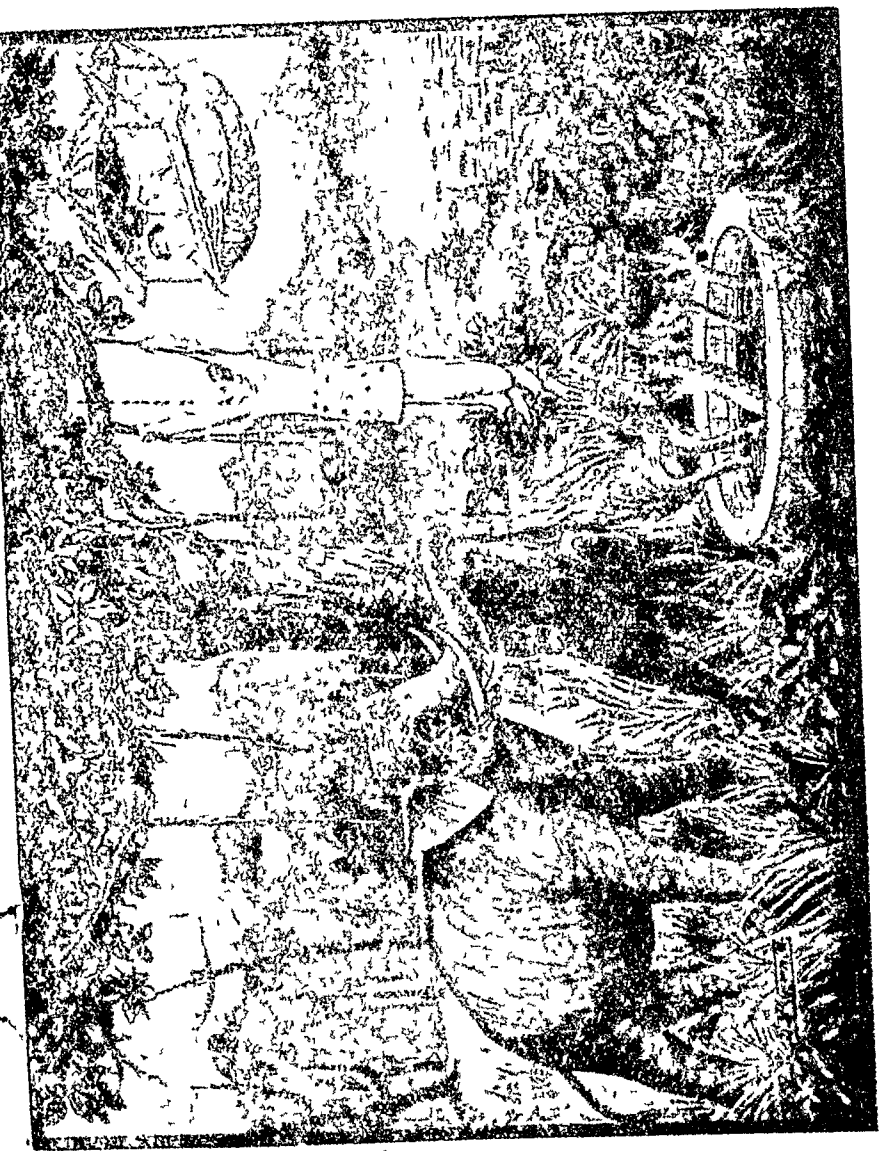
मरनमें, नहिं खुशी नहिं दिलगीर ॥ ते साधु० ॥ ३ ॥ जे बाह्य परवत वनवसैं, गिरिगुफा महल मनोग । सिल सेज समता सहचरी, शशिकिरनदीपक जोग ॥ मृग मित्र भोजन तपमई, विज्ञान निरमल नीर । ते साधु० ॥ ४ ॥ सूखहिं सरोवर जलभरे, सूखहिं तरंगिनि-तोय। घाटहि बटोही ना चलैं, जहँ घाम गरमी होय ॥ तिहँ-काल मुनिवर तप तपहिं, गिरिशिखर ठाड़े धीर ॥ ते साधु० ॥ ५ ॥ घनघोर गरजहिं घनघटा, जलपरहिं पाव-सकाल । चहुं ओर चमकहि बीजुरी, अति चलै सीरी ब्याल ॥ तरुहेठ तिष्ठहिं तब जती, एकान्त अचल शरीर ॥ ते साधु० ॥ ६ ॥ जब शीतमास तुपारसों, दाहै सकल वनराय । तब जमैं पानी पोखरां, थरहरै सबकी काय ॥ तब नगन निवसें चौहटै, अथवा नदीके तीर ॥ ते साधु० ॥ ७ ॥ करजोर 'भूधर' बीनवै, कब मिलहिं वे मुनिराज । यह आश मनकी कब फलै, मम सरहिं सगरे काज ॥ संसार विषम विदेसमें, जे विना कारण वीर ॥ ते साधु० ॥ ८ ॥

२८—भूधरकृत स्तुति ।

ढाल परमादी

अहो जगतगुरु एक, सुनिये अरज हमारी । तुम प्रभु ! दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी ॥ इस भव-वनके माँहि, काल अनादि गमायौ । भ्रमत चहूंगतिमांहि,

सुख नहिं दुख बहु पायो ॥ कर्म महारिपु जोर, एक न कान करैं जी। मनमानौ दुख देहिं, काहूसों नाहिं डरैं जी ॥ कबहूं इतर निगोद, कबहूं नरक दिखावैं। सुर नर पशु-गतिमाहिं, बहुविधि नाच नचावैं ॥ प्रभु! इनके परसंग, भव भवमाहिं बुरे जी। जो दुख देखे देव! तुम सौं नहिं दुरे जी ॥ एक जनमकी बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी। तुम अनंत परजाय, जानत अंतरजामी ॥ मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे। कियो बहुत बेहाल सुनियो साहिब मेरे ॥ ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल करि डारयो। इनहीं तुम मुझमाहिं, हे जिन! अंतर पारयो ॥ पाप पुण्यकी दोय, पांयनि बेडी डारीं। तन काराग्रहमाहिं, मोहि दियो दुख भारी ॥ इनको नेक बिगार, मैं कछु नाहिं कियो जी। बिन कारन जगवंद्य, बहुविधि बैर लियोजी ॥ अब आयौ तुम पास, सुन जिन सुजस तिहारो। नीति-निपुन महाराज, कीजै न्याव हमारौ ॥ दुष्टनि देहु निकास साधुनिकौ रखि लीजै। विनवै 'भूधरदास' हे प्रभु ढील न कीजै ॥

२६—पार्श्वनाथ स्तोत्र।

सोरठा—पारसप्रभुको नाऊं, सार सुधारस जगतमें।
मैं वाकी बलिजाऊं, अजर अमरपदमूल यह ॥ १ ॥

हरिगीतिका छन्द।

राजत उतंग अशोक तरुवर, पवन प्रेरित थरहरै।

प्रभु निकट पाय प्रमोद नाटक, करत मानौं मन हरै ॥नस फूल गुच्छन भ्रमर गुंजत, यही तान सुहावनी । सो जयो पार्श्व जिनेंद्र पातकहरन जग चूडामनी ॥ २ ॥ निज मरन देखि अनंग डरप्यो, सरन ढूंढत जग फिर्‌यो । कोई न राखै चोर प्रभुको, आय पुनि पायनि गिर्‌यो ॥ यौं हार निज हथियार डारे, पुहुपवर्षा मिस भनी । सो जयो० ॥ ३ ॥ प्रभुअंगनीलउतंगगिरितैं, वानि शुचि, सरिता ढली सो भेद भ्रमगजदंतपर्वत, ज्ञानसागरमें र... ...नय सप्तभंग-तरंगमंडित, पापतापविध्वंसनी । सो जयो० ॥४॥ चंद्रार्चिचयछवि चारु चंचल, चमरवृन्द सुहावने । ढोलै निरंतर यक्षनायक, कहत क्यों उपमा बनै ॥ यह नीलगिरिके शिखर मानों, मेघझरि लागी घनी । सो जयो० ॥ ५ ॥ हीरा जवाहिर खचित बहु-विधि, हेमआसन राजये । तहँ जगत जनमनहरन प्रभु तन, नील वरन विराजये । यह जटिलवारिजमध्यमानौं, नील मणिकलिका बनी । सो जयो० ॥ ६ ॥ जगजीत मोह महान जोधा जगतमें पटहा दियो । सो शुकल-ध्यान-कृपानबल जिन, निकट वैरी वश कियो ॥ ये बजत विजयनिशान दुन्दुभि, जीत सूचै प्रभुतनी । सो जयो० ॥ ७ ॥ छद्मस्थपदमें प्रथम दर्शन, ज्ञानचारित आदरे । अब तीन तेई छत्रछलसों, करत छाया छवि भरे ॥ अति धवल रूप अनूप उन्नत, सोमबिम्बप्रभा हनी।

सो जयो० ॥ ८ ॥ द्युति देखि जाकी चंद सरमैं, तेजसों रवि लाजई। तब प्रभामंडलजोग जगमें, कौन उपमा छाजई॥ इत्यादि अतुल विभूति मंडित, सोहिये त्रिभुवनधनी। सो जयो० ॥ ९ ॥ याँ असम महिमा सिंधु साहब, शक्र पार न पावहीं। तजी समय तुम दास 'भूधर' भगतिवश यश गावहीं॥ अब होउ भवभव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं। कर जोरि यह वरदान मांगौं, मोक्षपद जावत लहौं॥

३०—भूधर कृत दर्शन स्तुति।

पुलकंत नयन चकोर पक्षी, हँसत उर इंदीवरो। दुर्बुद्धि चकवी विलख विछुरी, निबिड मिथ्यातम हरो॥ आनन्द अम्बुधि उमगि उछर्यो, अखिल आतम निरदले। जिनबदन पूरनचंद्र निरखत, सकल मनवांछित फले॥१॥ मम आज आतम भयो पावन, आज विघन विनाशिया। संसारसागर नीर निबर्यो, अखिल तत्त्व प्रकाशिया॥ अब भई कमला किंकरी मम, उभय भव निर्मल थये। दुख जर्यो दुर्गति वास निवर्यो, आज नव मंगल भये॥ २ ॥ मनहरन मूरति हेरि प्रभुकी, कौन उपमा लाइये। मम सकल तनके रोम हुलसे हर्ष और न पाइये। कल्याणकाल प्रतच्छ प्रभुको लखैं, जे सुरनर घने। हित समयकी आनन्द महिमा, कहत क्यों मुखसों बने॥ ३ ॥ भर नयन निरखे नाथ तुमको,

और वांछा ना रही। मम सब मनोरथ भये पूरन रंक मानों निधि लही॥ अब होऊ भव भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिये। कर जोर भूधर दास बिनवै, यही वर मोहि दीजिये।

३१—भूधरकृत गुरु स्तुति।

त्रिभुवनगुरुस्वामीजी, करुनानिधिनामीजी। सुनि अंतरजामी, मेरी बिनती जी ॥१॥ मैं दास तिहाराजी दुखिया बहुभाराजी। दुख मेटनहारा तुम जादौंपतीजी ॥ २॥ भरम्यो संसाराजी, चिरविपति-भंडाराजी। कहिं सार न सार, चहूँगति डोलियाजी ॥ ३॥ दुखमेरु समा-नाजी, सुख सरसों-दानाजी। अब जान धरि ज्ञानतराजू तोलियाजी ॥४॥ थावर-तन पायाजी, त्रस नाम धराया-जी। कृमिकुन्थु कहाया, मरि भंवरा हुवाजी ॥५॥ पशु-काया सारीजी, नानाविधधारीजी। जलचारी थलचारी, उडन पखेरुवाजी ॥ ६ ॥ नरकनके माहींजी, दुखओर न काहींजी। अति घोर जहां है, सरिता खारकीजी ॥ ७॥ पुनि असुर संहारैजी, निज वैर विचारैजी। मिल बांधै अरु मारै, निरदय नारकीजी ॥ ८॥ मानुष अवतारैजी, रह्यो गरभ मझारैजी। रटि रोयो जनमत, विरियां मैं घनोजी॥ ९ ॥ जोवन तन रोगीजी, के विरह वियोगी जी। फिर भोगी बहुविध, विरधपनाकी वेदना जी॥१०॥ सुरपदवी पाईजी, रंभा उरलाईजी। तहां देखि पराई,

संपति झूरियोजी ॥ ११ ॥ माला मुरझानीजी, जब आरति ठानीजी । थिति पूरन जानी, मरत विसूरियोजी ॥१२॥ यौं दुख भव केराजी, भुगते बहुतेराजी । प्रभु ! मेरे कहते पार न है कहाँ जी ॥१३॥ मिथ्यामद्मताजी चाही नित साताजी । सुखदाता जगत्राता, तुम जाने नहीं जी ॥ १४ ॥ प्रभु भागनि पायेजी, गुन श्रवण सुहाये जी । तकि आया सब सेवककी, विपदा हरौंजी ।१५॥ भवबास बसेराजी, फिर होय न फेराजी । सुख पावैजन तेरा, स्वामी सो करौंजी ॥१६॥ तुम शरन सहाईजी, तुम सज्जन भाईजी। तुम माई तुम्हीं बाप दया मुझ लीजियेजी ॥१७॥ भूधर करजोरेजी, ठाढो प्रभु ओरेजी निजदास निहारौ, निरभय कीजियेजी ॥ १८ ॥

३२—जिनेन्द्र स्तुति ।

जै जगपूज परमगुरु नामी । पतितउधारन अंतर-जामी ॥ दासदुखी तुम अति उपगारी । सुनिये प्रभु ! अरदास हमारी ॥ १ ॥ यह-भव-घोर-समुद्र महा है। भूधर-भ्रम-जल-पूर रहा है ॥ अंतर दुख दुःसह बहुतेरे ते बडवानल साहिब मेरे ॥ २ ॥ जनमजरागदमरन जहां है । वे ही प्रबल तरंग तहां है ॥ आवत विपति नदीगन जामैं । मोह महान मगर इक तामैं ॥ ३ ॥ तिहि-मुख जीव पर्यो दुख पावै । हे जिन ! तुम बिन कौन छुडावै ॥ अशरनशरन अनुग्रह कीजै । यह दुख मेटि

मुकति मुहि दीजै ॥४॥ दीरघकाल गया विललावै। अब ये सूल सहे नहिं जावै ॥ सुनियत यों जिन शासनमाहीं। पंचमकाल परमपद नाहीं ॥ ५ ॥ कारन पांच मिलै जब सारे। तब शिव सेवक जाहिं तिहारे ॥ तातैं यह विनती अब मेरी। स्वामी! शरण लई हम तेरी ॥ ६ ॥ प्रभु आगे चित चाह प्रकासौं। भव भव श्रावककुल अभिलाषौं ॥ भव भव जिन आगम अवगाहौं। भव भव भक्ति चरणकी चाहौं ॥ ७ ॥ भव भवमैं सत संगति पाऊं। भव भव साधनके गुन गाऊं॥ परनिंदा मुख भूलि न भाखूं। मैत्रीभाव सबनसौं राखूं ॥ ८ ॥ भव भव अनुभव आतमकेरा। होहु समाधिमरण नित मेरा॥ जबलौं जनम जगतमैं लाधौं। काल लब्धि बल लहि शिव साधौं ॥ ९ ॥ तबलौं ये प्रापति मुझ हूजो, भक्ति प्रताप मनोरथ पूजौ ॥ प्रभु सब समरथ हम यह लोरैं। 'भूधर' अरज करत कर जोरैं ॥ १० ॥

२३—भागचन्द्रकृत स्तुति।

तुम परमपावन देव जिन अरि,-रजरहस्य विनाशनं। तुम ज्ञान-दृग जलवीच त्रिभुवन, कमलवत प्रतिभासनं ॥ आनन्द निजज अनंत अन्य, अचिंत संतत परनये। बल अतुलकलित स्वभावतैं नहिं, खलितगुन अमिलित थये ॥१॥ सब रागरुषहन परम श्रवन, स्वभाव घन निर्मल दशा ॥ इच्छारहित भविहित खिरत वच, सुनतही

भ्रमतम नशा। एकांतगहनसुदहन स्यात्पद, बहनमय निज परदया। जाके प्रसाद विषादविन, मुनिजन सपदि शिवपद लहा॥ २॥ भूषनवषनसुमनादिविनतन, ध्यानमयमुद्रा दिपै। नासाग्रनयन सुपलक हलय न, तेज लखि खगगन छिपै॥ पुनि वदननिरखत प्रशमजल, वरखत सुहरखतउर धरा। बुधि स्वपर परखत पुन्य आकर, कलिकलिल दरखत जरा॥३॥ इत्यादि बहिरंतर असाधारन, सुविभव निधान जी। इन्द्रादिवंदपदारविंद, अनिंद तुम भगवान जी॥ मैं चिरदुखी परचाहतैं, तप-धर्म नियत न उर धर्यो॥ परदेव सेव करी बहुत, नहिं काज एकहु तहं सर्यो॥ ४॥ अब "भागचंद" उदय भयौ मैं, शरन आयो तुम-तनी। इक दीजिये वरदान तुम जस, स्वपददायक बुधमनी॥ परमाहिं इष्ट-अनिष्ट-मति-तजि, मगन निजगुनमें रहौं। दृग-ज्ञान-चरन समस्त पाऊं, भागचन्द, न पर चहौं॥ ५॥

३४—दुःखहरण स्तुति।

(शेरकी रीतिमें तथा और और रागनियोंमें भी बनती है।)

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुमारा बाना है। मत मेरी बार अबार करो, मोहि देहु विमल कल्याना है॥ टेक॥ त्रैकालिक वस्तु प्रत्यक्ष लखो, तुमसौं कछु बात न छाना है। मेरे उर आरत जो वरतैं, निश्चै सब सो तुम जाना है॥ अवलोक विथा मत

मौन गहो नहिं मेरा कहीं ठिकाना है। हो राजीवलोचन सोचविमोचन, मैं तुमसों हित ठाना है ॥श्री०॥१॥ सब ग्रंथनिमें निरग्रंथनिने, निरधार यही गणधार कही। जिननायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायक ज्ञानमही ॥ यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही। क्यों मेरी बार विलंब करो, जिननाथ कहो वह बात सही ॥श्री० ॥ २ ॥ काहूको भोग मनोग करो, काहूको स्वर्गविमाना है। काहूको नागनरेशपती, काहूको ऋद्धि निधाना है ॥ अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है। इनसाफ करो मत देर करो, सुखवृन्द भरो भगवाना है ॥ श्री० ॥ ३ ॥ खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है। तुम ही समरत्थ न न्याव करो, तब बंदेका क्या चारा है ॥ खल घालक पालक बालकका नृपनीति यही जगसारा है। तुम नीतिनिपुन त्रैलोकपती, तुमही लगि दौर हमारा है ॥ श्री० ॥ ४ ॥ जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमहीको माना है। तुमरे ही शासनका स्वामी, हमको शरना सरधाना है ॥ जिनको तुमरी शरनागत है, तिनसौं जमराज डराना है। यह सुजस तुम्हारे सांचेका, सब गावत वेद पुराना है ॥ श्री० ॥ ५ ॥ जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुख हाना है। अघ छोटा मोटा नाशि तुरत, सुख

दिया तिन्हें मनमाना है ॥ पावकसों शीतल नीर किया, औ चीर बढा असमाना है। भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया कुवेर समाना है ॥ श्री० ॥६॥ चिंता-मन पारस कल्पतरू, सुखदायक ये परधाना है। तब दासनके सब दास यही, हमरे मनमें ठहराना है ॥ तुम भक्तनको सुरइंदपदी, फिर चक्रपतीपद पाना है। क्या बात कहों विस्तार बड़ी, वे पावें मुक्ति ठिकाना है ॥ श्री० ॥ ७ ॥ गति चार चुरासी लाखविषै, चिन्मूरत मेरा भटका है। हो दीनबन्धु करुणानिधान, अबलों न मिटा वह खटका है ॥ जब जोग मिला शिवसाधनका, तब बिघन कर्मने हटका है। तुम बिघन हमारे दूर करो सुख देहु निराकुल घटका है ॥ श्री० ॥ ८ ॥ गजग्राह-ग्रसित उद्धार लिया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है। ज्यों सागर गोपदरूप किया, मैनाका संकट टारा है ॥ ज्यों सूलीतें सिंहासन औ, बेड़ीको काट बिडारा है। त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूं आस तुम्हारा है ॥ श्री० ॥ ९ ॥ ज्यों फाटक टेकत पांव खुला औ, सांप सुमन कर डारा है। ज्यों खड्ग कुसुमका माल किया, बाल-कका जहर उतारा है ॥ ज्यों सेठ विपत चकचूर पूर, घर लक्ष्मीसुख विस्तारा है। त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूं आस तुम्हारा है ॥ श्री० ॥ १० ॥ यद्यपि तुमरे रागादि नहीं, यह सत्य सर्वथा जाना है। चिन्मू-

रति आप अनन्तगुनी, नित शुद्धदशा शिवथाना है। तदपि भक्तनकी भीड़ हरो, सुखदेत तिन्हें जु सुहाना है। यह शक्ति अचिंत तुम्हारीका, क्या पावै पार सयाना है ॥ श्री० ॥ ११ ॥ दुखखंडन श्रीसुखमंडनका, तुमरा प्रन परम प्रमाना है। वरदान दया जस कीरतका, तिहुंलोकधुजा फहराना है ॥ कमलाधरजी ! कमलाकर जी, करिये कमला अमलाना है। अब मेरि विथा अवलोकि रमापति रंच न बार लगाना है ॥श्री० ॥१२॥ हो दीनानाथ अनाथ हितू, जन दीन अनाथ पुकारी है। उदयागत कर्मविपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है॥ ज्यों आप और भवि जीवनकी, ततकाल विथा निरवारी है। त्यों 'वृन्दावन' यह अर्ज करै, प्रभु आज हमारी बारी १३ ॥

३५—अरहंत स्तुति।

दोह—जासु धर्म परभावसों, संकट कटत अनंत।
मंगलमूरति देव सो, जैवंतो अरहंत ॥ १ ॥
हे करुणानिधि सुजनको, कष्टविषैं लखि लेत।
तजि बिलंब दुख नष्ट किय, अब बिलंब किह हेत ॥२॥

षट्पद—तब बिलंब नहिं कियो, दियो नमिको रजताचल। तबबिलंब नहिं कियो, मेघवाहन लंका थल ॥ तब बिलंब नहिं कियो, सेठसुत दारिद्र भंजे। तब बिलंब नहिं कियो, नागजुग सुरपद रंजे ॥ इमि चूरि भूरि दुख

भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन। प्रभु मोर दुःखनाशनविषै, अब विलंब कारन कवन ॥३॥ तव विलंब नहिं कियो, सिया पावक जलकीन्हौं। तव विलम्ब नहिं कियो, चंदना शृंखल छीन्हौं ॥ तव विलंब नहिं कियो, चीर द्रोपदिको बाढ्यौ। तवँ विलंब नहिं कियो, सुलोचन गंगा काढ्यौ ॥ इमि० ॥४॥ तव विलंब नहिं कियो, सांप कियकुसुम सुमाला। तव विलम्ब नहिं कियो, उर्मिला सुरथ निकाला ॥ तव विलंब नहिं कियो, शीलबल फाटक खुल्ले। तव बिलम्ब नहिं कियो, अंजना वन मन फुल्ले ॥ इमि० ॥ ५ ॥ तब विलम्ब नहिं कियो, सेठ सिंहासन द.६ तब विलम्ब नहिं कियो, सिन्धु श्रीपाल कढीन्हों ॥ तव बिलंब नहिं कियो, प्रतिज्ञा वज्रकर्ण पल। तव विलंब नहिं कियो, सुधन्ना काढ़ि वापि थल ॥ इमि० ॥ ६ ॥ तब बिलम्ब नहिं कियो, कंस भय त्रिजग उबारे। तव विलम्ब नहिं कियो, कृष्णसुत शिला उतारे ॥ तब विलम्ब नहिं कियो, खड्ग मुनिराज बचायो। तव विलम्ब नहिं कियो, नीर मातङ्ग उचायो ॥ इमि० ॥ ७ ॥ तब विलम्ब नहिं कियो, सेठ सुत निरविष कीन्हौं। तव बिलम्ब नहिं कियो, मानतुङ्गबंध हरीन्हौं ॥ तब विलम्ब नहिं कियो, वादिमुनि कोढ़ मिटायो। तव विलम्ब नहिं कियो, कुमुद जिन पास मिटायो ॥ इमि० ॥ ८ ॥ तव विलंब नहिं कियो, अंजना

चोर उबार्यो। तब विलम्ब नहिं कियो, सूरवा भील सुधार्यो॥ तब विलंब नहिं कियो, गृद्धपक्षी सुन्दर तन। तब विलम्ब नहिं कियो, भेक दिय सुर अद्भुतधन ॥ इमि० ॥ ९ ॥ इहविधि दुख निरवार, सारसुख प्रापति कीन्हौं। अपनो दास निहारि; भक्तवत्सल गुन चीन्हौं ॥ अब विलम्ब किहि हेत, कृपाकर इहां लगाई। कहा सुनो अरदास नाहिं, त्रिभुवनके राई ॥ जनवृन्द सुमनवचतन, अबै गही नाथ तुम पद शरन। सुधि ले दयालु मम हालपै, कर मंगलमंगलकरन ॥१०॥

३६—जिनवचन स्तुति

हो करुणासागर देव तुमी, निरदोष तुमारा वाचा है। तुमरे वाचामें हे स्वामी, मेरा मन सांचा राचा है ॥ ॥ टेक ॥ बुधि केवल अप्रतिछेदविषैं, सब लोकालोक समाना है। मनु ज्ञेय गरास विकाश अटंक, झलाझल जोत जगाना है ॥ सर्वज्ञ तुमी सबव्यापक हो, निरदोष दशा अमलाना है। यह लच्छन श्रीअरहंत विना, नहिं और कहीं ठहराना है ॥ हो करु० ॥ १ ॥ धर्मादिक पंच बसै जहंलौं, वह लोकाकाश कहावै है। तिस आगे केवल एक अनंत, अलोकाकाश रहावै है ॥ अवकाश अकाशविषैं गति औ, थिति धर्म अधर्म सुभावै है। परिवर्तन लच्छन काल धरै, गुणद्रव्य जिनागम गावै है। हो करु० ॥ २ ॥ इक जीवो धर्माधर्म दरब ये, सम

असंख्यप्रदेशी है। आकाश अनंतप्रदेशी है, ब्रह्मंड अखंड अलेशी है॥ पुग्गलकी एक प्रमाणू सो, यद्यपि वह एकप्रदेशी है। मिलनेकी सकत स्वभावीसों, होती बहुखंध सुलेशी हैं॥ हो करु० ॥ ३ ॥ कालाणू भिन्न असंख अणू, मिलनेकी शक्ति धारा हैं। तिसतैं कायाकी गिनतीमें नहिं काल दरवको धारा हैं॥ हैं स्वयंसिद्ध षद्द्रव्य यही, इनहीका सर्व पसारा है। निर्बाध जथारथ लच्छन इनका, जिनशासनमें सारा है॥ हो करु० ॥४॥ सब जीव अनंतप्रमान कहे, गुन लक्षणज्ञायकवंता है। तिसतैं जड़ पुग्गलमूरतकी, है वर्गणरास अनन्ता है॥ तिसतैं सब भाविथकाल समयकी, रास अनन्त अनंता है। यह भेद सुभेद विज्ञान विना, क्या औरनको दरसन्ता है? ॥ हो० ॥५॥ इक पुग्गलकी अविभाग अणू, जितने नभमें थिति कीना जी॥ तितनेमहँ पुग्गल जीव अनन्त, वसैं धर्मादि अछीनाजी॥ अवगाहन शक्ति विचित्र यही, नभकी वरनी परवीना जी। इस ही विधिसों सब द्रव्यनिमें, गुन शक्ति वसै अनकीनाजी॥ हो० ॥ ६ ॥ इक काल अणूंपरतें दुतियेपर, जाति जवै गत मन्दी है। इक पुग्गलकी अविभाग अणू, सो समय कही निरद्वन्दी है॥ इसतैं नहिं सूच्छमकाल कोई, निरअंश समय यह छन्दी है। यातैं सब कालप्रमान बंधा वरनी श्रुति जैति जिनंदी है॥ हो० ॥७॥ जब पुग्गलकी

अविभाग अणू, अतिशीघ्र उताल चलानी है। इक समय माहिं सो चौदह राजू; जात चली परमानी है॥ परसै तहं सर्वपदारथकों, क्रमसौं यह भेद विधानी है। नहिं अंश समयका होत तहाँ यह गतिकी शक्ति बखानी है॥ हो०॥ ८॥ गुन द्रव्यनिके आधार रहैं, गुनमें गुन और न राजै है। न किसी गुनसों गुन और मिलैं, यह और विलच्छनता जैहै॥ ध्रुव वै उतपाद सुभाव लिये, तिरकाल अबाधित छाजै है। षट हानिरु वृद्धि सदीव करै, जिनवैन सुनै भ्रम भाजै है॥हो०॥९॥ जिम सागरबीच कलोल उठी, सो सागरमाहि समानी है। परजै करि सर्व पदारथमें, तिमि हानिरुवृद्धि उठानी है॥ जब शुद्ध दरबपर दृष्टि धरै, तब भेदविकल्प नशानी है। नयन्यासनतैं बहु भेद सु तो, परमान लिये बैमानी है॥ हो० ॥१०॥ जितने जिनवैनके मारग हैं, तितने नय-भेद विभाखा है। एकांतकी पक्ष मिथ्यात वही, अने-कान्त गहैं सुखसाखा है॥ परमागम है सर्वंग पदारथ, नय इकदेशी भाषा है। यह नय परमान जिनागमसा-धित, सिद्ध करै अभिलाषा है॥हो०॥११॥ चिन्मूरतिके परदेशप्रति, गुन है सु अनंत अनंताजी। न मिलै गुन आपुसमें कबहूँ, सत्ता जिन भिन्न धरंताजी॥ सत्ता चिन्मूर-तकी सबमें, सब काल सदा वरतंताजी। यह वस्तु स्वभाव जथारथको जिय सम्यकवन्त लखंताजी॥ हो०॥१२॥

अविरोधविरोधविवर्जित धर्म, धरें सब वस्तु विराजै हैं। जहं भाव तहां सु अभाव बसै; इन आदि अनन्त सु छाजै हैं॥ निरपेक्षित सो न सधै कबहूँ; सापेक्षा सिद्ध समाजै हैं। यह अनेकांतसों कथन मथन करि; स्याद्‌वाद धुनि गाजै हैं॥ हो० ॥१४॥ जिस काल कथंचित अस्ति कही, तिस काल कथंचितनाही हैं। उभयात्मरूप कथंचित सो, निरवाच कथंचितनाहीं है॥ पुनि अस्तिअवाच्य कथंचित त्यों, वह नास्तिअवाच्य कथाही है॥ उभयात्मरूप अकथ्य कथंचित, एक ही काल सुमाही है॥ हो० ॥१४॥ यह सात सुभंग सुभावमयी, सब वस्तु अभंग सुसाधा है। परवादि विजय करिवे कहँ श्रीगुरु; स्याद्‌हिवाद अराधा है॥ सरवज्ञप्रतच्छ परोच्छ यही; इतनो इत भेद अबाधा है। 'वृन्दावन' सेवत स्याद्‌हिवाद, कटै जिससैं भवबाधा है॥ हो० ॥ १५॥

३७—संकटमोचन विनती।

हे दीनबन्धु श्रीपति करुणानिधानजी। यह मेरि विथा क्यों न हरो बार क्या लगी॥ टेक॥ मालिक हो दो जहानके जिनराज आपही। ऐवो हुनर हमारो कुछ तुमसे छिपा नहीं॥ वेजानमें गुनाह मुझसे बन गए सही। ककरीके चोरको कटार मारिये नहीं॥ हो० ॥१ दुखदर्द दिलका आपसे जिसने कहा सही। मुश्कि

अंजना सतीको हुआ गर्भ उजारा। तब सासने कलंक
लगा घरसे निकारा ॥ बन वर्गके उपसर्गमें तब तुमको
चितारा। प्रभु भक्तव्यक्ति जानिके भय देव निवारा॥
हो० ॥९॥ सोमासे कहा जो तु सती शील विशाला।
तो कुंभतें निकाल भला नाग जु काला॥ उस वक्त
तुम्हें ध्यायके सती हाथ जब डाला। तत्काल ही वह
नाग हुआ फूलकी माला॥ हो० ॥ १० ॥ जब कुष्ट रोग
था हुआ श्रीपालराजको। मैना सती तब आपको पूजा
इलाजको॥ तत्काल ही सुंदर किया श्रीपाल राजको।
वह राजरोग भाग गया मुक्तराजको॥ हो० ॥ ११ ॥
जब सेठ सुदर्शनको मृषा दोष लगाया। रानीके कहे
भूपने शूलीपै चढाया॥ उस वक्त तुम्हें सेठने निज ध्या-
नमें ध्याया। शूलीसे उतार उसको सिंहासनपै बिठाया
हो०॥१२॥ जब सेठ सुधन्नाजीको वापीमें गिराया। ऊपर
से दुष्ट फिर उसे वह मारने आया॥ उस वक्त तुम्हें
सेठने दिल अपनेमें ध्याया। तत्कालही जंजालसे तब
उसको बचाया॥ हो० ॥ १३ ॥ इक सेठके घरमें किया
दारिद्रने डेरा। भोजनका ठिकाना भी न था सांझ
सवेरा॥ उस वक्त तुम्हें सेठने जब ध्यानमें घेरा। घर
उसकेमें तब कर दिया लक्ष्मीका बसेरा॥ हो० ॥ १४ ॥
बलि वादमें मुनिराजसों जब पार न पाया। तब रातको
... । मुनिराजने निजध्यानमें

मन लीन लगाया। उसवक्त हो प्रत्यक्ष तहां देव बचाया ॥ हो० ॥ १५ ॥ जब रामने हनुमंतको गढलंक पठाया। सीताकी खबर लेनेको सहसैन्य सिधाया ॥ मगबीच दो मुनिराजकी लख आगमें काया। झट वारि मूशल-धारसे उपसर्ग बुझाया ॥ हो० ॥ १६ ॥ जिननाथहीको माथ नवाता था उदारा। घेरेमें पडा था वह कुलिश करण विचारा। उस वक्त तुम्हें प्रेमसे संकटमें चितारा॥ रघुबीरने सब पीर तहां तुरत नवारा ॥ हो० ॥ १७ ॥ रणपाल कुंवरके पडीथी पांव बेडी। उस वक्त तुम्हें ध्यानमें ध्याया था सबेरी॥ तत्काल ही सुकुमालकी सब झड पडी बेरी। तुम राजकुंवरकी सभी दुखद्वन्दनिवेरी॥ हो० ॥ १८ ॥ जब सेठके नंदनको डसा नाग जु कारा। उस वक्त तुम्हें पीरमें धर धीर पुकारा ॥ ततकालही उस बालका विष भूरि उतारा ॥ वह जाग उठा सोके मानों सेज सकारा ॥ हो० ॥ १९ ॥ मुनि मानतुंगको दई जब भूपने पीरा। तालेमें किया बंद भरी लोहजंजीरा। मुनी-ईशने आदीशकी थुति की है गंभीरा। चक्रेश्वरी तब आनिके सब दूर की पीरा ॥ हो०॥२०॥ शिवकोटिने हट था किया सामंतभद्रसों ॥ शिवपिंडकी वंदन करौं शंकों अभद्रसों ॥ उस वक्त स्वयंभू रचा गुरु भावभद्रसों। जिनचन्द्रकी प्रतिमा तहां प्रगटी सुभद्रसों ॥हो० ॥२१॥ सूवेने तुम्हें आनिके फल आम चढाया। मेंढक ले चला

फूल भरा भक्तिका भाया ॥ तुम दोनोंको अभिराम स्वर्गधाम वसाया। हम आपसे दातारको लख आज वैल ही पाया ॥हो० २२॥ कपि स्वान सिंह नेवला अज वैल विचारे। निर्दय जिन्हें रंच न था बोध चितारे। इत्यादिको सुरधाम दे शिवधाममें धारे। हम आपसे दातारको प्रभु आज निहारे ॥ हो० ॥ २३ ॥ तुमही अनंत जंतुका भयभीर निवारा। वेदोपुरानमें गुरु गणधरने उचारा ॥ हम आपकी सरनागतीमें आके पुकारा। तुम हो प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष इच्छिताकारा ॥ हो० ॥ २४ ॥ प्रभु भक्त व्यक्त भक्त जक्त मुक्तके दानी। आनंद कंद वृन्दको हो मुक्तके दानी ॥ मोहि दीन जान दीनवंधु पातक भानी। संसार विषम खार तार अंतरज्ञानी ॥ हो० ॥ २५ ॥ करुणानिधान बानको अब क्यों न निहारो। दानी अनन्त दानके दाता हो सँभारो ॥ वृष-चन्द नंद वृन्दका उपसर्ग निवारो। संसार विषम खारसे प्रभु पार उतारो ॥ हो० ॥ २६ ॥

२८—जिनेन्द्र स्तुति।

गीता छंद—मंगलसरूपी देव उत्तम तुमशरण जिनेसजी तुम अधमतारण अधम मम लखि मेट ज... कलेश जी ॥ टेक ॥ तुम मोह जीत अजीत इच्छाती... शर्मामृत भरे। रजनाश तुम वर भासदृग नभ ... सब इक उडुचरे ॥ रटरास क्षति अति अ...

सुभाव अटल सरूप हो। सब रहित दूषण त्रिजगभू-
षण अज अमल चिद्रूप हो ॥ १ ॥ इच्छा विना भवि-
भाग्यतैं तुम, ध्वनि सुहोय निरक्षरी। षटद्रव्यगुणपर्यय
अखिलयुत, एकछिन मैं उच्चरी ॥ एकांतवादी कुमत
पक्षविलिप्त इम ध्वनि मद हरी। संशय तिमिरहर रवि-
कला भविशस्यकों अमरित झरी ॥२॥ वस्त्राभरण विन
शांतिमुद्रा, सकल सुरनरमन हरै। नाशाग्रदृष्टि विकार-
वर्जित निरखि छवि संकट टरै ॥ तुम चरणपंकज नख-
प्रभा नभ कोटिसूर्य प्रभा धरै। देवेंद्र नाग नरेंद्र नमत
सु, मुकुटमणिद्युति विस्तरै ॥३॥ अंतर बाहिर इत्यादि
लक्ष्मी, तुम असाधारण लसै। तुम जाप पापकलापना-
सै, ध्यावते शिवथल बसै ॥ मैं सेय कुदृग कुबोध अ-
व्रत, चिर भ्रम्यो भववन सबै। दुख सहे सर्व प्रकार
गिरिसम, सुख न सर्षपसम कबै ॥ ४ ॥ परचाहदाह-
दह्यो सदा कबहूँ न साम्यसुधा चख्यो। अनुभव अपू-
रव स्वादु विन नित, विषय रसचारो भख्यो ॥ अब बसो
मो उरमें सदा प्रभु, तुम चरण सेवक रहौं। वर भक्ति
अति दृढ़ होहु मेरे, अन्य विभव नहीं चहौं ॥ ५ ॥
एकेंद्रियादिक अंतग्रीवक, तक तथा अंतरघनी। पर्याय
पाय अनन्तवार अपूर्व, सो नहिं शिवधनी॥ संसृतिभ्रम-
णतैं थकित लखि निज, दासकी सुन लीजिये। सम्यक-
दरश वरज्ञानचारितपथ 'विहारी' कीजिये ॥

]

२६—जिनवाणी माताकी स्तुति ।

अकेला ही हूँ मैं करम सब आये सिमिटके, लिया है मैं तेरा शरण अब माता सटकिके। भ्रमावत है मोकूं करम दुख देता जनमका, करूं भक्ति तेरी हरो दुख माता भ्रमणका ॥ १ ॥ दुखी हूआ भारी भ्रमत फिरता हूँ जगतमें, सहाजाता नाहीं अकल घबराई भ्रमणमें । करूं क्या मां मोरी चलत बस नाहीं मिटनका, करूं भक्ती तेरी हरो दुख माता भ्रमणका ॥ २ ॥ सुनो माता मोरी अरज करता हूँ दरदमें, दुखी जानो मोकूं डरप कर आयो शरणमें । कृपा ऐसी कीजै दरद मिटजावे मरणका, करूं भक्ति तेरी हरो दुख माता भ्रमणका ॥ ३ ॥ पिलावे जो मोकूं सुविधि कर प्याला अमृतका, मिटावे जो मेरा सरब दुख सारा फिरनका । परूं पांवां तेरे, सरब दुख सारा फिकरका, करूं भक्ती तेरी हरो दुख माता भ्रमणका ॥ ४ ॥

सवैया—मिथ्या-तम नाशवेको ज्ञानके प्रकाशवेको, आपा-परभासवेको भानुसी बखानी है। छहों द्रव्य जानवेको बंधविधि भानवेको स्वपर पिछानवेको परम प्रमानी है ॥ अनुभौ बतायवेको जीवके जतायवेको, काहू न सतायवेको भव्य उर आनी है। जहां तहां तारवेको पारके उतारवेको, सुख विसतारवेको यही

दोहा—जिनवाणीकी यह स्तुति अल्प बुद्धि परमान। पन्नालाल बिनती करें, देऊ मात मुझ ज्ञान ॥ ६ ॥ हे जिनवाणी भारती, तोहि जपों दिनरैन। जो तेरा शरना गहै, सो पावै सुखचैन ॥७॥ जा वाणीके ज्ञानते सूझै लोका लोक। सो वाणी मस्तक चढ़ो, सदा देतहूं धोक ॥ ८ ॥

४०—शारदाष्टक

छंद भुजंग प्रयात-जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता विशुद्धप्रबुद्धा नमों लोकमाता ॥ दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी। नमों देवि वागीश्वरी जैनवानी ॥१॥ सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला। क्षुधातापनिर्नाशिनी मेघमाला ॥ महामोहविध्वंसनी मोक्षदानी। नमो देवि० ॥२॥ अखै वृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा। कथा संस्कृताप्राकृता देशभाषा ॥ चिदानन्दभूपालकी राजधानी। नमो देवि० ॥३॥ समाधानरूपा अनूपा अछुद्रा, अनेकान्तधा स्यादवादांक मुद्रा। त्रिधा सप्तधा द्वादशांगी बखानी ॥ नमो० ॥४॥ अकोपा अमाना अदंभा अलोभा, श्रुतज्ञानरूपी मति ज्ञानशोभा। महापावनी भावना भव्यमानी ॥ नमो० ॥ ५ ॥ अनीला अजीता सदा निर्विकारा। विषै वाटिका खंडिनी खड्गधारा ॥ पुरापापविक्षेपकर्त्री कृपाणी। नमो देवि० ॥६॥ अगाधा अबाधा निरंध्रा निराशा। अनन्ता अनादीश्वरी कर्मनाशा ॥ निशंका निरंका चिदंका भवानी। नमो

देवि० ॥ ७ ॥ अशोका मुदेका विवेका विधानी । जगज्जंतु मित्रा विचित्रावसानी ॥ समस्ता विलोका निरस्ता निदानी ॥ नमो देवि० ॥ ८ ॥

दोहा—जे हितहेतु बनारसी; देहिं धर्म उपदेश ।
ते सब पावहिं परमसुख, तज संसार कलेश ॥ ९ ॥

४१—बिनती नाथूरामजी कृत ।

दोहा—चौबीसों जिनपद कमल; बन्दन करो त्रिकाल ।
करो भवोदधि पार अब, काटो बहु विधि जाल ॥१॥

ऋषभनाथ ऋषि ईश तुम ऋषि धर्म चलायो । अजित अजित अरि जीत वसु विधि शिवपद पायो ॥ संभव संभ्रमनाशि बहु भवि बोधित कीने । अभिनंदन भगवान अभिरुचि कर व्रत दीने ॥ ३ ॥ सुमति सुमति वरदान दीजै तुम गुण गाऊं ! पद्म-प्रभु पद पद्म उर धर शीश नवाऊं ॥ ४ ॥ नाथ सुपारस पास राखो शरण गहों जी । चन्द्रप्रभु मुखचन्द्र देखत बोध लहो जी ॥५॥ पुष्पदन्त महाराज विकसत दन्त तुम्हारे । शीतल-शीतल बैन जग दुःखहरण उचारे ॥ ६ ॥ श्रेयान्सनाथ भगवान श्रेय जगतको कर्ता । वासपूज्य पद वास दीजै त्रिभुवन भर्त्ता ॥ ७ ॥ बिमल बिमल पद पाय बिमल कीये बहु प्राणी । श्रीअनन्त जिनराज गुण अनन्तके दानी ॥ ८ ॥ धर्मनाथ तुम धर्म तारण तरण जिनेश । शान्तिनाथ अघ ताप शान्ति करो परमेश ॥ कुन्थुनाथ

जिनराज कुन्थु आदि जिय पाले। अरह प्रभु अरि नाश बहु भवके अघ टाले॥ १० ॥ मल्लिनाथ क्षण मांहि मोह मल्ल क्षय कीना। मुनिसुव्रत वृतसार मुनिगणको प्रभु-दीना ॥ ११ ॥ नमि प्रभुके पद पद्म नवत नशौं अघ भारी। नेमि प्रभू तज राज जाय वरी शिव नारी ॥१२॥ पारसवर्ण स्वरूप बहु भविक्षणमें कीने। वीर वीर विधि नाश ज्ञानादिक गुण लीने॥ १३ ॥ चार वीस जिनदेव गुण अनन्तके धारी। करों त्रिविध पद सेव मेटो व्यथा हमारी ॥१४॥ तुम सम जगमें कोन ताकी शरण गहीजे। यासे मांगो नाथ निज पद सेवा दीजे ॥ १५ ॥

दोहा—नाथूराम जिन भक्तका, दूर करो भव बास।
जबतक शिव अवसर नहीं, करो चरणका दास॥

४२—सरस्वती स्तुति।

जगन्माता ख्याता जिनवरमुखां भोजउदिता। भवानी कल्याणी मुनिमनुजमानी प्रमुदिता॥ महादेवी दुर्गा दमनि दुखदाई दुरगती। अनेकाएकाकी द्वययुत-दशांगी जिनमती ॥ १ ॥ कहैं माता! तोको यदपि सबही नादिनिधना। कथंचित् तो भी तू उपजि विनशै यों विवरना॥ धरे नाना जन्म प्रथमजिनके बाद अब लों। भयो त्यों विच्छेद-मधुर तुव लाखों बरसलों ॥ २ ॥ महावीर स्वामी जब सकलज्ञानी मुनि भये। विड़ोजाके लाये समवसृतमैं गौतम गये॥ नवै नौका-

रूपा भवजलधि माहीं अवतरी। अरूपा निर्वर्णा विग-
तभ्रम सांची सुखकरी ॥ ३ ॥ करैं जैसैं मेघ ध्वनि
मधुर त्यों ही निरखरी। खिरी प्यारी वाणी ग्रहण
निजभाषामंह करी ॥ गणेशोंने झेली बहुत दिनपाली
मुनिवर ! रही थी पै तोलों तिन हृदयमें ही घरकरा
॥ ४ ॥ अवस्था कायाकी दिन दिन घटी दीखन लगी।
तथा धीरे धीरे सुबुधि विनशी अंगश्रुतकी। तवै दो
शिष्योंको सुगुरु धरसेनार्य मुनिने। पढ़ाया कर्म प्राभृत
सुखद जाना जगतने ॥ ५ ॥ उन्होंने हे माता ! लिखि
लिपि करी अक्षरवती ॥ संवारी ग्रन्थोंमें श्रुततिथि
मनाई सुखवती ॥ सहारा देते जो नहिं तुमहिं वे यों
तिहिं समै। सदाको सो जाती जग-जलधि-गंभीर
तलमैं ॥ ६ ॥ भये पीछे नामी मुनि तिन बचाई विघ-
नतें। हजारों ग्रन्थोंमें रचि रचि रची चारु रुचितैं।
प्रसारी देशोंमें वर विविध भाषामय करी। लुभाये
मिथ्याली लखि विशद जुक्तीजुत खरी ॥ ७ ॥ नहीं
ऐसा कोई विषय जगमें बुद्धिगत है। तिहारो जो
प्यारो नहिं विमल आभूषण अहै ॥ लजै अन्यावाणी
रुचिर तव ये रूप लखिकै। धुनैं माथा हा ! हा ! करि
चुप होवै विलखिकैं ॥८॥ धरै है जो प्रानी नित जननी !
तोको हृदय मैं। करैं हैं पूजा वा मन वचन कायाकरि
नमैं ॥ पढ़ावैं देवैं जो लिखि [illegible] तथा ग्रन्थ लिखवा।

लहैं ते निश्चैसों अमरपदवी मोक्ष अथवा ॥ ६ ॥ थके देवेंद्रादी स्तवन नहिं तेरो कर सके। करे तो मा! कैसे हम निल अविद्याकर सके ॥ तथापि त्वद्भक्ती करत अति उत्साहित हमें। किये तातें 'प्रेमी' पदवरन एकत्र तुकमें ॥ १० ॥

४३—गुर्वावलि।

दौर—जैवंत दयावंत सुगुरु देव हमारे। संसार विषमखारसों जिनभक्त उधारे ॥टेक॥ जिनवीरके पीछै यहां निर्वानके थानी। वासठ वरषमें तीन भये केवलज्ञानी ॥ फिर सौ वरषमें पांच श्रुतकेवली भये। सर्वाङ्ग द्वादशांगके उमंग रस लये ॥ जै० ॥ १ ॥ तिसवाद वर्ष एक शतक और तिरासी। इसमें हुये दशपूर्व ग्यारै अंगके भाषी ॥ ग्यारे महामुनीश ज्ञानदानके दाता। गुरुदेव सोइ देहिंगे भविवृन्दको साता ॥ जै० ॥ २ ॥ तिसवाद वर्ष दोय शतक वीसके माहीं। मुनि पांच ग्यारै अंगके पाठी हुये यांहीं ॥ तिसवाद वरष एकसौ अठारमें जानी। मुनि चार हुये एक आचारांगके ज्ञानी ॥ जै० ॥ ३ ॥ तिसवाद हुये हैं जु सुगुरु पूर्वके धारक। करुणानिधान भक्तको भवसिन्धु उधारक ॥ करकंजतैं गुरु मेरे उपर छांह कीजिये। दुखद्वन्दको निकंदके आनन्द दीजिये ॥ जै० ॥ ४ ॥ जिनवीरके पीछेसों वरष छसौ तिरासि। तब तक रहे इक अंगके गुरु देव

अभ्यासी ॥ तिसबाद कोइ फिर न हुये अंगके धारी। पर होते भये महा सुविद्वान उदारी ॥जै०॥५॥ जिनसों रहा इस कालमें जिनधर्मका शाका। रोपा है सात भंगका अभंग पताका ॥ गुरुदेव नयंधरको आदि दे बड़े नामी। निरग्रन्थ जैनपंथके गुरुदेवं जो स्वामी ॥ जै० ॥ ६ ॥ भाषों कहां लो नाम बड़ी बार लगैगा। परनाम करों जिस्से वेड़ा पार लगैगा ॥ जिसमेंसे कछुइक नाम सूत्रकारके कहों। जिन नामके प्रभावसे परभावको दहों ॥ जै० ॥ ७ ॥ तत्वार्थसूत्र नामि उमास्वामि किया है। गुरुदेवने संक्षेपसे क्या काम किया है ॥ जिसमें अपार अर्थने विश्राम किया है। बुध वृन्द जिसे ओरसे परनाम किया है ॥ जै० ॥ ८ ॥ वह सूत्र है इस कालमें जिनपंथकी पूंजी। सम्यक्त्व ज्ञान भाव है जिस सूत्रकी कूंजी ॥ लड़ते हैं उसी सूत्रसों परवादके सूंजी। फिर हारके हट जाते हैं इक पक्षके लूंज जै० ॥९॥ स्वामी समंतभद्र महाभाष्य रचा है। सर्वाङ्ग सात भंगका ंग मचा है ॥ परवादियोंका सर्व गर्व जिस्से पचा है। निर्वान सदनका सोई सोपान जचा है ॥ जै० ॥ १० ॥ अकलंक देव राजवारतीक वनाया। परमान नय निक्षेपसों सब वस्तु बताया ॥ श्लोक वार-तीक वियानन्दजी मंडा। गुरुदेवने जड़मूलसों पाखंडको खंडा ॥ जै० ॥ ११ ॥ गुरु पूज्यपादजी हुये पर-

जादके धोरी । सर्वार्थसिद्धि सूत्रकी टीका जिन्हों जोरी जिसके लखेसों फिर न रहे चित्तमें भरम । भविजीवको भाषै है सुपरभावका मरम ॥ जै० ॥१२॥ धरसेन गुरुजी हरो भवि वृन्दकी व्यथा । अग्रायणीय पूर्वमें कछु ज्ञान जिन्हें था ॥ तिनके हुये दो शिष्य पुष्पदंत भुजबली । धवलादिकोंका सूत्र किया जिससे मग चली ॥ जै०॥१३॥ गुरु औरने उस सूत्रका सब अर्थ लहा है । तिन धवल महाधवल जयसुधवल कहा है ॥ गुरु नेमिचन्द्रजी हुये धवलादिके पाठी । सिद्धांतके चक्रीशकी पदवी जिन्हों गांठी ॥ जै० ॥१४॥ तिन तीनोंही सिद्धांतके अनुसारसों प्यारे । गोमटसार आदि सुसिद्धांत उचारे ॥ यह पहिले सुसिद्धांतका विरतंत कहा है । अब और सुनो भावसों जो भेद महा है ॥ जै० ॥१५॥ गुणधर मुनीशने पढ़ाथा तीजा पराभृत । ज्ञान प्रवाद पूर्वमें जो भेद है आश्रित ॥ गुरु हस्तिनागजीने सोई जिनसो लहा है । फिर तिनसों यतीनायकनें सूल गहा है ॥ जै०॥ १६ ॥ तिन चूर्णिका स्वरूप तिस्से सूत्र बनाया । परमान छै हजार यों सिद्धांतमें गाया ॥ तिसका किया उद्धरण समुद्धरण जु टीका । बारह हजारके प्रमान ज्ञानकी टीका ॥ जै० ॥ १७ ॥ तिसहीसे रचा कुन्दकुंदजीने सुशासन जो । आत्मीक परम धर्मका है प्रकाशन ॥ पंचास्तिकाय समयसार सारप्रवचन । इत्यादि सुसिद्धांत स्याद्वादका रचन ॥जै०॥ १८ ॥

सम्यक्त ज्ञान दर्श सुचारित्र अनूपा। गुरुदेवने अध्यात्मीक धर्म निरूपा। गुरुदेव अमीइंदुने तिनकी करी टीका। झरता है निजानंद अमीवृन्द सरीका॥ जैवंत० ॥ १९॥ रचनानुवेदभेदके निवेदके करता। गुरुदेव जे भये हैं पापतापके हरता॥ श्रीवट्टकेरदेवजी वसुनंदजी चक्री। निरग्रन्थग्रन्थपंथके निरग्रन्थके शक्री॥ जै० ॥ २०॥ योगींद्रदेवने रचा परमात्मप्रकाश। शुभचंद्रने किया है ज्ञान आरणवविकाश॥ की पद्मनंदजीने पद्मनंदिपच्चीसी। शिवकोटिने आराधना सुसार रचीसी॥ जै० ॥ २१॥ दोसंघ तीनसंघ चारसंघ पांचसंघ। षट्संघ सात संघलों गुरु रचा है प्रबंध॥ गुरु देवनंदिने किया जैनेन्द्रव्याकरन। जिस्से हुआ परवादियोंके मानका हरन॥ जै० ॥ २२॥ गुरुदेवने रची है रुचिर जैनसंहिता। वरनाश्रमादिकी क्रिया कहैं हैं जु संहिता॥ वसुनंदि वीरनंदि यशोनंदि संहिता। इत्यादि बनी हैं दशोंप्रकार संहिता॥ जै० ॥ २३॥ परमेयकमलमारतंडके हुये कर्ता। प्रभेन्दु माणिक्यनंदि नयप्रमाणके भर्ता। जैवंत सिद्धसेन सुगुरु देव दिवाकर। जै वादिसिंह देवसिंह जैति यशोधर॥ जै० ॥ २४॥ श्रीदत्त काण भिक्षु और पात्रकेशरी। श्रीवज्रसूर महासेन श्रीप्रभाकरी॥ शिरीजटाचार गुरु वीरसेन हैं। जैसेन शिरीपाल मुझे कामधेन हैं॥ जै० ॥ २५॥ इन एक एक गुरुने जो ग्रंथ

बनाया। कहि कौन सकै नाम कोइ पार ना पाया॥ जिनसेन गुरूने महापुराण रचा है। मरजाद क्रियाकांडका सब भेद खचा है॥ जै० ॥ २६ ॥ गुणभद्र गुरूने रचा उत्तरपुरानको। सो देवसु गुरुदेवजी कल्यानथानको॥ रविषेण गुरूजीने रचा रामका पुरान। जो मोहतिमिर भाननेको भानुकेसमान॥ जै० ॥ २७॥ पुन्नाटगणविषै हुये जिनसेन दूसरे। हरिवंशको बनाके दास आसको भरे॥ इत्यादि जे वसुवीस सुगुण मूलके धारी। निर्ग्रंथ हुये हैं गुरू जिनग्रंथके कारी ॥ जै० ॥ २८ ॥ बंदौं तिन्हैं मुनि जे हुये कवि काव्य करैया। बंदामि गमक साधु जो टीकाके धरैया॥ बादी नमों मुनिवादमें परवाद हरैया। गुरु वागमीकको नमो उपदेश करैया ॥ जै० ॥२६ ॥ ये नाम सुगुरु देवका कल्याण करै है। भविवृन्दका ततकाल ही दुखद्वन्द हरै है॥ धनधान्य ऋद्धिसिद्धि नवों निद्धि भरैं हैं। आनन्द कन्द देहि सबी विघ्न टरै हैं॥ जै० ॥ ३० ॥ इह कंठमें धारै जो सुगुरु नामकी माला। परतीतसों उर प्रीतसों ध्यावै जु त्रिकाला। इहलोकका सुख भोग सो सुरलोकमें जावै। नरलोकमें फिर आयके निरवानको पावै ॥ जै० ॥ ३१ ॥

४४—प्रातःकालकी स्तुति।

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर भविजनकी अब पूरो आस॥ ज्ञानभानुका उदय करो मम मिथ्यातमका होय वि-

नाश ॥ १ ॥ जीवोंकी हम करुणा पालें झूठ वचन नहिं कहैं कदा ॥ परधन कबहुं न हरिहैं स्वामी ब्रह्मचर्य व्रत रहै सदा ॥ २ ॥ तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा तोष सुधा नित पिया करें । श्री जिनधर्म हमारा प्यारा तिसकी सेवा किया करें ॥ ३ ॥ दूर भगावें बुरी रीतियां सुखद रीतिका करैं प्रचार । मेल मिलाप बढ़ावैं हम सब धर्मोंन्नतिका करैं प्रचार ॥ ४ ॥ सुखदुखमें हम समता धारैं रहें अचल जिमि सदा अटल । न्याय मार्गको लेश न त्यागैं वृद्धि करैं निज आतमबल ॥ ५ ॥ अष्ट कर्म जो दुःख हेतु हैं तिनके क्षयका करैं उपाय । नाम आपका जपें निरन्तर विघ्न शोक सब ही टल जाय ॥ ६ ॥ आतम शुद्ध हमारा होवे पाप मैल नहिं चढ़ै कदा । विद्याकी हो उन्नति हममें धर्म ज्ञानहू बढ़े सदा ॥ ७ ॥ हाथ जोड़ कर शीष नवावें तुमको भविजन खड़े खड़े । यह सब पूरो आस हमारी चरण शरणमें आन पड़े ॥ ८ ॥

४५—सायंकालकी स्तुति ।

हे सर्वज्ञ ! ज्योतिमय गुणमणि बालक जनपर करहु दया । कुमति निशा अंधियारीकारी सत्य ज्ञान रवि छिपा दिया ॥ १ ॥ क्रोध मान अरु माया तृष्णा यह बटमार फिरै चहुं ओर । लूट रहे जग जीवनको यह देख अविद्या तमका जोर ॥ २ ॥ मारग हमको सूझै नांहि ज्ञान बिना सब अन्ध भये । घटमें आय विराजो स्वामी बालक-

भगवान नेमनाथका वैराग्य ।
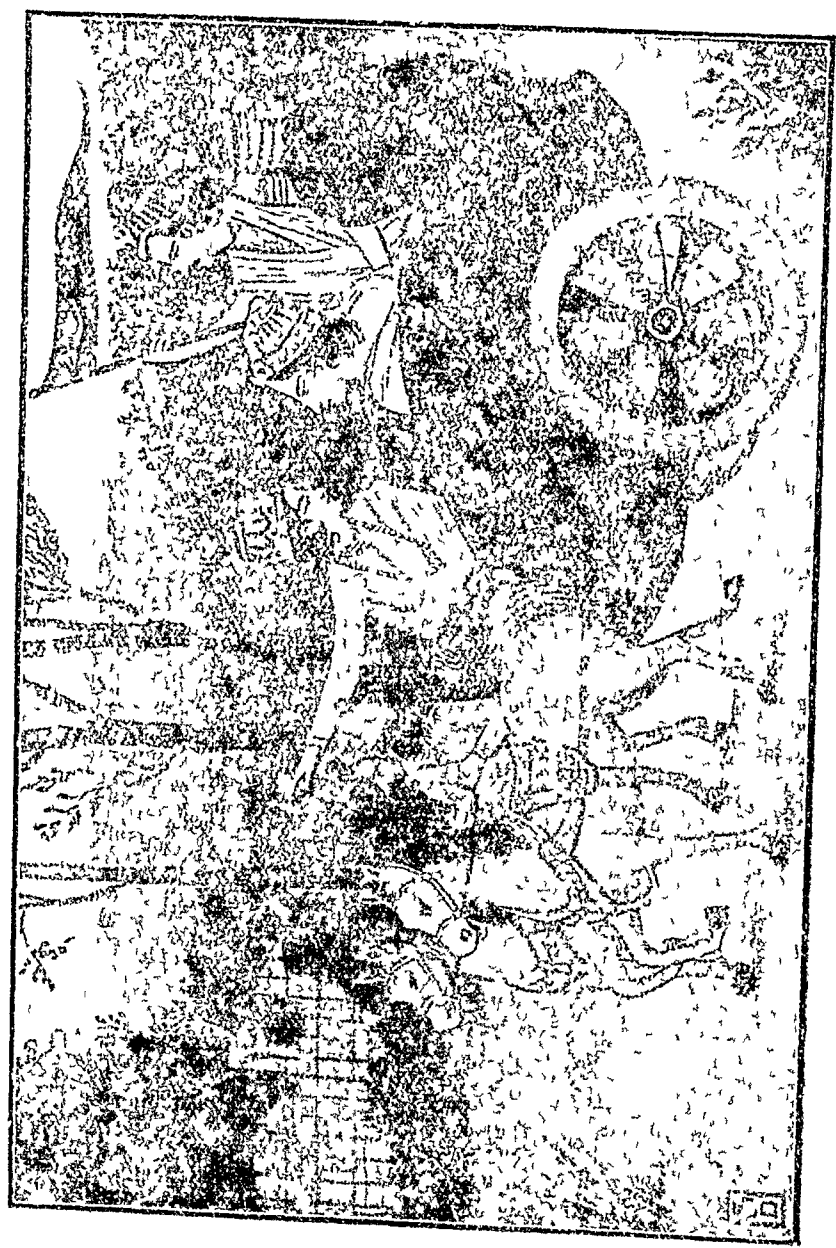
जन सब खड़े भये ॥ ३ ॥ सतपथ दर्शक जनमन हर्षक घटघट अन्तरयामी हो ॥ श्री जिनधर्म हमारा प्यारा तिसके तुमही स्वामी हो ॥४॥ घोर विपतमें आन पड़ा हूँ मेरा बेरा पार करो ॥ शिक्षाका हो घर घर आदर शिल्प-कला संचार करो ॥५॥ मेल मिलाप बढ़ावें हम सब हूँ प भावकी घटाघटी ॥ नहीं सतावें किसी जीवको अली क्षीरकी गटागटी ॥ ६ ॥ मात पिता अरु गुरुजनकी हम सेवा निशदिन किया करें ॥ स्वारथ तजकर सुखदें परको आशिष सबकी लिया करें ॥७॥ आतम शुद्ध हमारा होवे पाप मैल नहिं चढ़े कदा ॥ विद्याकी हो उन्नति हममें धर्म ज्ञान हूं बढ़े सदा ॥ ८ ॥ दोऊकर जोरैं बालक ठाड़े करैं प्रार्थना सुनिये तात ॥ सुखसे बीते रैन हमरी जिन-मतका हो शीघ्र प्रभात ॥६॥ मातपिताकी आज्ञा पालैं गुरुकी भक्ति धरैं उरमें ॥ रहें सदा हम करतब तत्पर उन्नति कर निज निजपुरमें ॥ १० ॥

तृतीय अध्याय ।

४६—जिनेन्द्र पंचकल्याणक ।

पणविधि पंच परमगुरु, गुरुजिनशासनो । सकल-सिद्धिदातार सु, विघनविनासनो ॥ शारद अरु गुरु गौतम, सुमति प्रकाशनो ॥ मंगलकर चउ-संघहिं, पाप-पणासनो ॥ पापहि पणासन गुणहिं गरुआ, दोष अष्ट-

दश रहिउ । धरिध्यान करमविनाशकेवल-ज्ञान अविचल जिन लहिउ ॥ प्रभु पंचकल्याणक विराजित, सकल सुरनर ध्यावहीं । त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ १ ॥

१ । गर्भकल्याणक ।

जाके गरभकल्याणक. धनपति आइयो । अवधि-ज्ञानपरवान सु, इन्द्र उठाइयो ॥ रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी । कनकरयणमड़िमण्डित, मन्दिर अति बनी ॥ अति बनी पौरि पगार परिखा, सुवन उपवन सोहये । नर नारि सुन्दर चतुरभेख सु, देख जनमन मोहये ॥ तहं जनकगृह छहमास प्रथमहिं, रतनधारा बरसियों । पुनि रुचिकवासिनि जननि-सेवा, करहिं सब विधि हरसियो ॥ सुरकुंजरसम कुंजर, धवल धुरंधरो । केहरि केशरशोभित, नख शिखसुंदरो ॥ कमलाकलश-न्हवन, दुइदाम सुहावनी । रविशशिमंडल मधुर, मीन-जुग पावनी ॥ पावनिकनक घट जुगम पूरन, कमलकलित सरोवरो । कल्लोलमालाकुलितसागर, सिंहपीठ मनोहरो ॥ रमणीक अमरविमान फणिपति-भुवन रवि छवि छाजई । रुचि रतनराशि दिपंत, दहन सु तेजपुंज विराजई ॥ ३ ॥ ये सखि सोरह सुपने सूती शयनमें । देखे माया मनोहर, पच्छिम रयनमें ॥ उठि प्रभात पिय

फल तिहँ भासियो ॥ भासियो फल तिहिं चित्त दंपति परम आनंदित भये। छहमासपरि नवमास पुनि तहँ, रैन दिन सुखसों गये ॥ गर्भावतार महन्त महिमा, सुनत सब सुख पावहीं। भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥ ४ ॥

२। जन्मकल्याणक।

मतिश्रुत अवधिविराजित, जिन जब जनमियो। तिहुंलोक भयो छोभित, सुरगन भरमियो ॥ कलपवासि घर घंट, अनाहद बज्जियो। जोतिषघर हरिनाद, सहज गल गज्जियो ॥ गज्जियो सहजहिं शंख भावन, भुवन शब्द सुहावने। विंतरनिलय पटु पटह बज्जिय, कहत महिमा क्यों बने ॥ कंपित सुरासन अवधिबल जिन जनम निह्चै जानियो। धनराज तब गजराज माया-मयी निरमय आनियो ॥५॥ जोजन लाख गयंद, बदन सो निरमये। बदन बदन वसुदंत, दंत सर संठये ॥ सरसर-सौ पनवीस, कमलिनी छाजहीं। कमलिनी कमलिनी कमल पचीस विराजहीं ॥ राजहीं कमलिनी कमलऽठोत्तर सो मनोहर दल बने। दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हाव भाव सुहावने ॥ मणि कनककिंकणि वर विचित्र, सु अमरमंडप सोहये। घन घंट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये ॥ ६ ॥ तिहिं

देत सु, जिन जयकारियो ॥ गुप्तजाय जिनजननिहि, सुखनिद्रा रची। मायामयि शिशु राखि तौ, जिन आन्यो सची ॥ आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपित न हूजिये। तब परम हरषित हृदय हरिने सहस लोचन पूजिये। पुनि करि प्रणाम सु प्रथम इन्द्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ। ईशान इंद्र सु चन्द्र छवि सिर, छत्र प्रभुके दीनऊ ॥ ७ ॥ सनतकुमार माहेंद्र, चमर दुइ ढारहीं। शेश शक्र जयकार, शब्द उच्चारहीं ॥ उच्छवसहित चतुरविधि, सुर हर्षित भये। जोजन सहस निन्यानवे, गगन उलंघि गये ॥ लंघिगये सुरगिरि जहां पांडुक-वन विचित्र विराजहीं। पांडुकशिला तहाँ अर्द्ध चन्द्र समान, मणि छवि छाजहीं ॥ योजन पचास विशाल दुगुणायाम वसु ऊंची गनो। वर अष्ट-मंगल-कनक कलशनि सिंह-पीठ सुहावनी ॥ ८ ॥ रचिमणिमंडप शोभित, मध्यसिंहासनो। थाप्यो पूरब मुख तहाँ, प्रभु कमलासनो ॥ बाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने। दुंदुभि प्रमुख मधुर धुनि, और जु बाजने ॥ बाजने बाजहिं सची सब मिलि, धवलमंगल गावहीं। पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥ भरि छीरसागर जल जु हाथहि, हाथ सुरगिरि ल्यावहीं। सौधर्म अरु ईशान इंद्रसु कलश ले प्रभु न्हावहीं ॥ ९ ॥ बदन उदर अवगाह, कलशगत जानिये। एक चार वसु जोजन, मान प्रमा-

नियै ॥ सहस-अठोतर कलशा, प्रभुके सिर ढरै । पुनि शृङ्गार प्रमुख आचार सबै करै ॥ करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छव, आनि पुनि मातहिं दियो । धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गयो ॥ जनमाभिषेक महन्त महिमा, सुनत सब सुख पावहीं । भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥

३ । तप कल्याणक ।

श्रमजल रहित शरीर, सदा सब मलरहिउ । छीर बरन वर रुधिर, प्रथम आकृत लहिउ ॥ प्रथम सार संहनन, सरूप विराजहीं । सहज सुगंध सुलच्छन, मंडित छाजहीं ॥ छाजहिं अतुलबल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने । दस सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने ॥ आबाल काल त्रिलोकपति मन, रुचिर उचित जु नित नये । अमरोपनीत पुनीत अनुपम, सकल भोग विभोगये ॥ ११ ॥ भवतन-भोग विरत्त, कदाचित चिंतए । धन जोबन पिय पुत्त, कलत्त अनित्त ए ॥ कोउ न सरन मरनदिन, दुख चहुँगति भरयो । सुखदुख एकहि भोगत जिय विधिवसि परयो ॥ परयो विधिवशि आन चेतन, आन जड़ जु कलेवरो । तन असुचिपरतैं होय आस्रव, परिहरेतैं संवरो ॥ निरजरा तपबल होय, समकित, बिन सदा त्रिभुवन भम्यो । दुर्लभ विवेक बिना न कबहूँ परम

रम्यो ॥१२॥ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया। लौकांतिक वरदेव नियोगी आइया ॥ कुसुमांजलि दे चरन, कमल शिर नाइया। स्वयंबुद्धि प्रभु थुतिकरि, तिन समझाइया ॥ सबुझाय प्रभुको गये निजपुर पुनि महोच्छव हरि कियो। रुचिरुचिरचित्र विचित्र शिविका, कर सुनन्दन-वन लियो तहं पंचमुष्टी लोंच कीनो, प्रथम सिद्धान थुति करी। मंडिय महाव्रत पंच दुद्धर, सकल परिग्रह परिहरी ॥१३॥ मणिमय भाजन केश, परिट्ठिय सुरपती। छीर समुद्र-जल खिपकरि गयो, अमरावती ॥ तप संयमबल प्रभुको, मनपर जय भयो। मौनसहित तप करत, काल कछु तहं गयो ॥ गयो कछु तहं काल तपबल, रिद्धि वसु विधि सिद्धिया। जसु धर्मध्यानबलेन खयगय, सप्त प्रकृति प्रसिद्धिया। खिपि सातवें गुण जतन बिन तहं, तीन प्रकृति जु बुधि बढिउ। करि करण तीन प्रथम सुकल-बल, खिपकसेनी प्रभु चढिउ ॥१४॥ प्रकृति छतीस नवें-गुण, थान विनासिया। दसवें सूच्छम लोभ, प्रकृति तहं नासिया ॥ सुकल ध्यानपद दूजो पुनि प्रभु पूरियौ। बारहवें-गुण सोरह, प्रकृति जु चूरियौ ॥ चूरियो त्रैसठ प्रकृति इहविधि, घातिया करमनि तणी। तप कियो ध्यान प्रयंत बारह, विध त्रिलोकशिरोमणी ॥ निःक्रमण कल्याणक सु महिमा, सुनत सब सुख पावहीं। भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥१५॥

तेरहवें गुण—थान, संयोगि जिनेसुरो । अनन्तचतुष्टय-मंडिय, भयो परमेसुरो ॥ समवशरन तव धनपति, बहु-विधि निरमयो । आगमजुगतिप्रमान, गगनतल परिठयो ॥ परिठयो चित्र विचित्र मणिमय, सभामंडप सोहए । तिहं मध्य बारह बने कोठै, बैठ सुरनर मोहए ॥ मुनि कल्पवासिनि अरजिका पुनि, ज्योति-भौमि-भवनतिया । पुनि भवन व्यंतर नभग सुरनर, पशुनि कोठे बैठिया ॥१६॥ मध्यप्रदेश तीन, मणिपीठ तहां बने । गन्धकुटी सिंहासन, कमलसुहावने ॥ तीन छत्र सिर सोहित त्रिभु-वन मोहए । अन्तरीछ कमलासन प्रभुतन सोहए ॥ सोहए चौसठि चमर ढरत, अशोकतरु तल छाजये । पुनि दिव्य-धुनि प्रतिसबदजुत तहं, देवदुन्दुभि बाजए ॥ सुरपुहु-पवृष्टि सुप्रभामंडल, कोटि रवि छवि छाजए। इमि अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजये ॥१७॥ दुइसै जोजनमान सुभिच्छ चहूँ दिसी । गगन गमन अरु प्राणी वध नहिं अहनिसी । निरुपसर्ग निरहार, सदा जगदी-सए । आनन चार चहूँदिशि शोभित दीसए ॥ दीसए असेस विशेषविद्या, विभव वर ईसुरपना । कायाविवर्जित शुद्ध फटिक समान तन प्रभुका बना ॥ नहिं नयन पलक पतन कदाचित, केस नख सम छाजहीं । ये घाति याछयजनित अतिशय, दस विचित्र विराज हीं ॥१८

सकल अरथमय मागधि—भाषा जानिये। सकल जीव-जन मैत्री—भाव बखानिये॥ सकल रितुज फलफूल वनस्पति मर हरै। दरपन सम मनि अवनि, पवनगति अनुसरै॥ अनुसरै परमानंद सबको, नारि नर जे सेवता जोजन प्रमाण धरा सुमार्जहिं, जहां मारुतदेवता॥ पुनि करहिं मेघकुमार गंधोदक, सुवृष्टि सुहावनी। पदकमलतर सुर खिपहिं कमलसु, धरणि शशिशोभा बनी॥ १९॥ अमल गगन तल अरु दिसि, तहं अनुहारहीं। चतुरनिकाय देवगण, जय जयकारहीं॥ धर्म चक्र चले आगैं, रवि जहाँ लाजहीं। पुनि भृङ्गार-प्रमुख वसु मङ्गल राजहीं॥ राजहीं चौदह चारु अतिशय, देव रचित सुहावने। जिनराज केवलज्ञान महिमा, और कहत कहा बनै॥ तब इन्द्र आय कियो महोच्छव, सभा शोभा अति बनी। धर्मोपदेश दियो तहां, उचरिय बानी जिनतनी॥ २०॥ छुधातृषा अरु राग, रोष असुहावने। जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने॥ रोग सोग भय विस्मय, अरु निद्रा घनी। खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गनी॥ गनियो अठारह दोष तिनकरि रहित देव निरंजनो। नव परम केवललब्धिमंडिय, शिवरमनि-मनरंजनो॥ श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं। भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगतमंगल गावहीं॥ २१॥

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो। भव्यनिप्रति उप-देस्यो जिनवर तारिसो॥ भवभयभीत भविकजन, शरणै आइया। रत्नत्रयलच्छन शिवपंथ लगाइया॥ लगाइया पंथ जु भव्य पुनि प्रभु, तृतिय-सुकल जु पूरियो। तजि तेरवें गुणथान जोग, अजोगपथपग धारियो॥ पुनि चौदहें चौथे सुकलबल, बहत्तर तेरह हती। इमि घाति वसुविध कर्म पहुंच्यो, समयमें पंच-मगती॥ २२॥ लोकशिखर तनुवात,-वलयमहँ संठियो। धर्मद्रव्यविन गमन न जिहि आगैं कियो॥ मयनरहित मूषोदर, अंबर जारिसो। किमपि हीन निजतनुतैं, भयो प्रभु तारिसो॥ तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थप र्जय छनछयी। निश्चयनयेन अनंतगुण, विवहार न वसुगुणमयी॥ वस्तुस्वभाव विभावविरहित, शुद्ध प णति परिणयो। चिद्रूपपरमानंदमंदिर, शुद्ध परमात भयो॥ २३॥ तनुपरमाणू दामिनिपर, सब खिर ग रहे शेश नखकेश-रूप, जे परिणए॥ तब हरिप्र चतुरविधि, सुरगण शुभसच्यो। मायामयि नख के हित, जिनतनुरच्यो॥ रचि अगर चंदन प्रमुख मल, द्रव्य जिन जयकारियो। पदपतित अगनिकु मुकुटानल, सुविध सँस्कारियो॥ निर्वाणकल्याण महिमा, सुनत सब सुख पावहीं। भणि 'रूपचंद' :

...र, जगत मंगल गावहीं ॥ २४ ॥ मैं मतिहीन भगतिवस भावन भाइया। मंगलगीत प्रबंध, सु जिन-गुण गाइया ॥ जो नर सुनहिं, बखानहिं सुर धरि गावहीं। मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं ॥ पावहीं आठो सिद्धि नवनिधि मनप्रतीत जो लावहीं। भ्रम भाव छूटैं सकल मनके, निजस्वरूप लखावहीं ॥ पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन, सु होंहिं मंगल नित-नये। भणि 'रूपचंद' त्रिलोकपति, जिनदेव चउसंघ-हेजये ॥ २५ ॥

४७—लघु अभिषेक पाठ।

श्रीमज्जिनेंद्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं स्यद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हम्। श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुर्जैनेंद्रयज्ञविधिरेष मयाभ्यधायि ॥ १ ॥

(इस श्लोकको पढकर जिन चरणोंमें पुष्पाजलि छोडनी चाहिये)

श्रीमन्मंदरसुंदरे शुचिजलैर्धौतैः सदर्भाक्षतैः,
पीठे मुक्तिकरं निधायरचितं त्वत्पादपद्मस्रजः।
इन्द्रोऽहं निजभूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतं दधे,
मुद्राकंकणशेखराण्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे ॥ २ ॥

(इस श्लोकको पढकर अभिषेक करनेवालोंको यज्ञोपवीत तथा अनेक ...वे वा चंदनके) आभूषण धारण करना चाहिये।)

सौगंध्यसंगतमधुव्रतझंकृतेन, संवर्ण्यमानमिव गंधमनिंद्यमादौ। आरोपयामि विबुधेश्वरवृन्दवंद्यपादारविंदमभिवंद्य जिनोत्तमानां ॥ ३ ॥

इसे पढ़कर अभिषेक करनेवालोंको अङ्गमें चंदनके नव जगह तिलक करना चाहिये।

ये संति केचिदिह दिव्यकुलप्रसूता नागाः प्रभूत बलदर्पयुता विबोधाः। संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिं ॥ ४ ॥

(इसको पढकर अभिषेकके लिये भूमि या चौकीका प्रक्षालन करैं)

क्षीरार्णवस्य पयसांशुचिभिः प्रवाहैः प्रक्षालितं सुर-वरैर्यदनेकवारम्। अत्युद्धमुद्यतमहं जिनपादपीठं प्रक्षा-लयामि भवसंभवतापहारि ॥ ५ ॥

(जिसपर विराजमान करैं उस सिंहासनका प्रक्षालन करैं)

श्रीशारदासुमुखनिर्गतबीजवर्ण श्रीमंगलीकवरसर्व-जनस्य नित्यं। श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाशविघ्नं श्रीकारवर्णलिखितं जिनभद्रपीठे ॥ ६ ॥

(इस श्लोकको पढ़कर सिहासनपर श्रीकार लिखना चाहिये)

इन्द्राग्निदंडधरनैऋतपाशपाणि वायूत्तरेशशशिमौ-लिफणींद्रचंद्राः। अगत्ययूयमिह सानुचराः सचिह्नाः स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके ॥ ७

(नीचे लिखे मंत्रोंको पढ़कर क्रमसे दश दिकपालोंके लिये अर्घ चढावें)

१ ओं आ क्रौं ह्री इन्द्र आगच्छ आगच्छ इन्द्राय स्वाहा।

२ ओं आं क्रौं ह्रीं अग्ने आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा।

३ ओं आं क्रौं ह्रीं यम आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा।

४ ओ आ क्रौं ह्रीं नैऋत आगच्छ आगच्छ नैऋताय स्वाहा।

५ ओं आं क्रौं ह्रीं वरुण आगच्छ आगच्छ वरुणाय स्वाहा।

६ ओं आं क्रौं ह्रीं पवन आगच्छ आगच्छ पवनाय स्वाहा ।

७ ओं आं क्रौं ह्रीं कुबेर आगच्छ आगच्छ कुबेराय स्वाहा ।

८ ओं आं क्रौं ह्रीं ऐशान आगच्छ आगच्छ ऐशानाय स्वाहा ।

९ ओं आं क्रौं ह्रीं धरणीन्द्र आगच्छ आगच्छ धरणीन्द्राय स्वाहा ।

१० ओं आं क्रौं ह्रीं सोम आगच्छ आगच्छ सोमाय स्वाहा ।

इति दिक्पालमन्त्राः ।

दध्युज्ज्वलाक्षतमनोहरपुष्पदीपैः पौत्रार्पितं प्रतिदिनं महतादरेण । त्रैलोक्यमंगलसुखानलकामदाहमारार्तिकं तवविभोरवतारयामि ॥

दधि अक्षत पुष्प और दीप रकाबीमे लेकर मङ्गल पाठ तथा अनेक वादित्रोंके साथत्रैलोक्यनाथकी आरती उतारनी चाहिये ।

यं पांडुकामलशिलागतमादिदेवमस्नापयन्सुरवराः सुरशैलमूर्ध्नि । कल्याणमीप्सुरहमक्षततोयपुष्पैः संभावयामि पुरएव तदीय बिंबं ॥ ९ ॥

जल अक्षत पुष्पक्षेपकर श्रीकार लिखित पीठपर श्रीजिनबिंबकी स्थापना करना चाहिये ।

सत्पल्लवार्चितमुखान्कल धौतरूप्यताम्रारकूटघटितान् पयसा सुपूर्णान् । संवाह्यतामिव गतांश्चतुरःसमुद्रान् संस्थापयामि कलशान् जिनवेदिकांते ॥ १० ॥

जलपूरित सुन्दर पत्तोंसे ढके हुए सुवर्णादि धातुके चार कलश चौकी या वेदीके चारों कोनोंमे स्थापन करना चाहिये ।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुनाचंदनेन, श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदलचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः ।

हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपैः धूपैः प्रायोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं श्री परमदेवाय श्रीअर्हत्परमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दूरावनम्रसुरनाथकिरीटकोटीसंलग्नरत्नकिरणच्छविधूसरांघ्रिं। प्रस्वेदतापमलमुक्तमपि प्रकृष्टैर्भक्त्याजलैर्जिनपतिं बहुधाभिषिंचे ॥ १२ ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्तं भगवंतं कृपालसंतं वृषभादिमहावीरपर्यंतचतुर्विंशतीर्थंकरपरमदेवं आद्यानां आद्ये जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे...नाम्नि नगरेमासानामुत्तमे मासे...मासे पक्षे...शुभदिने मुनिआर्यिका-श्रावकश्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषिंचे, नमः ॥१३॥

(इसे पढ़कर श्रीजिनप्रतिमापर जलके कलशसे धारा छोडनी चाहिये)

यहां प्रत्येक धाराके बाद 'उदक' आदि श्लोक बोलकर अर्घ चढाना चाहिये

उत्कृष्टवर्णनवहेमरसाभिरामदेहप्रभावलयसंगतलुप्तदीप्तिं। धारां घृतस्य शुभगंधगुणानुमेयां वंदेर्हतां सुरभिसंस्नपनोपयुक्तां ॥ १४ ॥

(ऊपर लिखा पूरा मन्त्र पढ़कर मन्त्रमे "जलेनाभिषिंचे" को जगह 'घृतेनाभिषिंचे' पढ़कर घृतके कलशसे स्नपन करना चाहिये।)

संपूर्णशारदशशांकमरीचिजालस्यंदैरिवात्मयशसामिव सुप्रवाहैः क्षीरैर्जिनाः शुचितरैरभिषिच्यमानाः संपादयंतु मम चित्तसमीहितानि ॥

(ऊपरके मंत्रमें जलेनाभिषिंचेकी जगह 'क्षीरेणाभिषिंचे' पढ़कर कलशसे अभिषेक करना चाहिये।)

दुग्धाब्धिवीचिपयसांचितफेनराशिपांडुत्वकांतिमव-
धीरयतामतीव । दध्नां गतां जिनपतेः प्रतिमां सुधारा
संपद्यतां सपदि वांछितसिद्धये नः ॥ १५ ॥

ऊपर लिखे मन्त्रमें 'जलेन' की जगह 'दध्ना' पढ़कर दधिके कलशसे अभिषेक करना चाहिये ।

भक्त्या ललाटतटदेशनिवेशितोच्चैः हस्तैश्च्युताः
सुरवराऽसुरमर्त्यनाथैः । तत्कालपीलितमहेक्षुरसस्य धारा
सद्यः पुनातु जिनबिंबगतैव युष्मान् ॥ १६ ॥

ऊपरके मन्त्रमें 'जलेन' की जगह 'इक्षुरसेन' पढ़कर इक्षुरसके कलशसे अभिषेक करना चाहिये ।

संस्नापितस्य घृतदुग्धदधीक्षुवाहैः सर्वाभिरौषधि-
भिरर्हतउज्ज्वलाभिः । उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमे-
लाकालेयकुंकुमरसोत्कटवारिपूरैः ॥ १७ ॥

(ऊपरके मन्त्रमे 'जलेन' की जगह 'सर्वौषधेन' पढकर सर्वौषधीके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

द्रव्यैरनल्पघनसारचतुःसमाद्यै रामोदवासितसमस्त-
दिगंतरालैः । मिश्रीकृतेन पयसा जिनपुंगवानां त्रैलो-
क्यपावनमहं स्नपनं करोमि ॥ १८ ॥

(ऊपरके मन्त्रमे 'जलेन' की जगह 'सुगन्धजलेन' पढ़कर केशर क... राति सुगन्धित पदार्थों से बनाये हुए जलसे स्नपन करना चाहिये ।

...भव्यपंमां पर्णैः सवर्णकल...
...

निखिलैर्वसानैः। संसारसागरविलंघनहेतुसेतुमाप्ला-वये त्रिभुवनैकपतिं जिनेंद्रं ॥ १९ ॥

(ऊपर लिखे मन्त्रसे बचे हुये समस्त कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये)

मुक्तिश्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्यांकुरोत्पादकं। नागेंद्रत्रिदशेंद्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकं ॥ सम्यग्ज्ञा-नचरित्रदर्शनलतासंवृद्धिसंपादकं। कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन! स्नानस्य गंधोदकं ॥ २० ॥

(इस श्लोकको पढ़कर गन्धोदक अपने अंगमें लगाना चाहिए)

इति श्रीलघुअभिषेक विधिः समाप्तः।

४८—लघुपंचामृताभिषेक भाषा।

श्रीजिनवर चौवीसवर, कुनयध्वांतहर भान।
अमितवीर्यदृगबोधसुख, युत तिष्ठौ इहि थान ॥

नाराचछंद—गिरीश शीस पांडुपै, सचीश ईश थापियो। महोत्सवो अनंदकंदको, सबै तहां कियो ॥ हमैं सो शक्ति नाहिं; व्यक्त देखि हेतु आपना। यहां करैं जिनेंद चंद्रकी सुबिंब थापना ॥ २ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके श्रीवर्ण पर जिनबिंबकी स्थापना करना)

सुन्दरीछंद—कनकमणिमय कुंभ सुहावने। हरि सुछीर भरे अति पावने। हम सुवासित नीर यहां भरैं। जगतपावन-पांय तरैं धरैं ॥ ३ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके वेदीके कोनोंमें चार कलशोंकी स्थापना)

सौरभ पावनो। आकृष्टभृंगसमूह गंग समुद्भवो अति भावनो॥ मणिकनककुंभ निकुंभकिल्विष, विमल शीतल भरि धरौं। श्रम स्वेद मल निरवार जिनत्रय धारदे पांयनि परौं॥ ४॥

(मन्त्रसे शुद्धजलकी तीन धारा जिनबिंब पर छोडना)

अति मधुर जिनधुनि सम सुप्राणित प्राणिवर्ग सुभावसों बुधचित्तसम हरिचित्त नित्त, सुमिष्ट इष्ट उछावसों। तत्काल इक्षुसमुत्थप्रासुक रतनकुंभविषै भरौं। यमत्रासतापनिवार जिन त्रयधार दे पांयनि परौं॥ ५॥

(ऊपरका मन्त्र पढ़ इक्षुरसकी धारा देना)

निष्टसक्षिप्तसुवर्णमदद्मनीय ज्योंविधि जैनकी। आयुप्रदा बलबुद्धिदा रक्षा, सु यौं जियसैनकी॥ तत्कालमंथित, क्षीर उत्थित, प्राज्य मणिझारी भरौं। दीजै अतुलबल मोहि जिन, त्रयधार दे पांयनि परौं॥ ६॥

(घृतकी धारा देना)

शरदभ्र शुभ्र सुहाटकद्युति, सुरभि पावन सोहनो। क्लीवत्वहर बल धरन पूरन, पयसकल मनमोहनो॥ कृतउष्ण गोथनतैं समाहृत घटजटितमणिमें भरौं। दुर्बल दशा मो मेट जिन त्रयधार दे पांयनि परौं॥७॥

(दुग्धकी धारा)

वर विशदजैनाचार्य ज्यों मधुराम्लकर्कशताधरैं।

धनपतिसौं चयो। अब वेगि जाय रचौं समवसृति सफल सुरपदको करौं। साक्षात् श्रीअरहंतके दर्शन करौं कल्मष हरौं ॥ २ ॥ ऐसे वचन सुने सुरपतिके धनपती। चल आयो ततकाल मोद धारै अती। वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयौ। दै परदच्छिना बार बार वंदत भयो ॥ अति भक्ति भीनो नम्रचित ह्वै समवशरण रच्यौ सही। ताकी अनूपम शुभगतीको, कहन समरथ कोउ नहीं ॥ प्राकार तोरण सभामंडप कनकमणिमय छाजही। नगजडित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं ॥ ३ ॥ सिंहासन तामध्य बन्यौ अदभुत दिपै। तापर बारिज रच्यौ प्रभा दिनकर छिपै ॥ तीनछत्र सिरशोभित चौसठ चमरजी। महाभक्तियुत ढोरत हैं तहां अमरजी ॥ प्रभु तरन तारन कमल ऊपर अन्तरीक्ष विराजिया। यह वीतरागदशा प्रतच्छ विलोकि भविजन सुख लिया ॥ मुनि आदि द्वादश सभाके भवि जीव मस्तक नायकैं। बहुभांति बारंबार पूजैं, नमैं गुणगण गायकैं ॥ ४ ॥ परमौदारिक दिव्य देह पावन सही। क्षुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नहीं। जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसे। राग रोष निद्रा मद मोह सबै खसे ॥ श्रमविना श्रमजलरहित पावन अमल ज्योतिस्वरूपजी। शरणागतनिको अशुचिता हरि करन विमल अनूपजी ॥ ऐसे प्रभूकी शांतिमुद्रा

न्हवन जलतैं करैं। 'जस' भक्तिवश मन उक्तितैं हम, भानु ढिग दीपक धरैं ॥ ५ ॥ तुमतौ सहज पवित्र यही निश्चय भयो। तुम पवित्रताहेत नहीं मंजन ठयो ॥ मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यो। महामलिन तनमें वसु-विधिवश दुख सह्यो ॥ वीत्यो अनन्तौ काल यह, मेरी अशुचिता ना गई। तिस अशुचिताहर एक तुम ही भरहु बांछा चित ठई ॥ अब अष्टकर्म विनाश सब मल रोषरागादिक हरौ। तनरूप कारागेहतैं उद्धार शिववासा करौ ॥ ६ ॥ मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये। आवागमन विमुक्त रागवर्जित भये ॥ पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही। नयप्रमानतै जानि महा साता लही ॥ पापाचरण तजि न्हवन करता चित्तमें ऐसे धरूं। साक्षात् श्रीअरहंतका मानो न्हवन परसन करूं ॥ ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नसि शुभबन्धतैं। विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं ह्वै शर्म सब विधि तासतैं ॥७॥ पावन मेरे नयन, भये तुम दरसतैं। पावन पान भये तुम चरननि परसतैं ॥ पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्या-नतैं। पावन रसना मानी, तुम गुण गानतैं ॥ पावन भई परजाय मेरी, भयौ मैं पूरणधनी। मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्णभक्ति नहीं बनी ॥ धन्य धन्य ते बड़भागि भवि तिन नीव शिवघरकी धरी। वर क्षीर-सागर आदि जलमणि कुम्भभरि भक्ती करी ॥ ८ ॥

]

विघनसघन वनदाहन-दहन प्रचंड हो। मोहमहातम दलन प्रबल मारतंड हो॥ ब्रह्मा विष्णु महेष, आदि संज्ञा धरो। जगविजयी यमराज नाश ताको करो॥ आनन्दकारण दुखनिवारण, परममंगलमय सही। मोसो पतित नहिं और तुमसो, पतित तार सुन्यौ नहीं॥ चिंतामणी पारस कलपतरु, एकभव सुखकार ही। तुम भक्तिनवका जे चढैं ते, भये भवदधि पार ती॥ ६॥

दोहा—तुम भविदधितैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्तिको, हमैं उतारो पार॥१॥

५०—विनयपाठ दोहावली।

इहिविधि ठाडो होयके, प्रथम पढै जो पाठ। धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ॥ १॥ अनँत चतुष्टयके धनी, तुमही हो सिरताज॥ मुक्ति बधूके कंथ तुम, तीन भुवनके राज॥ २॥ तिहुंजगकी पीड़ाहरन, भवदधि शोषणहार। ज्ञायक हो तुम विश्वके, शिवसुखके करतार॥ ३॥ हरता अघअंधियारके, करता धर्मप्रकाश। थिरतापददातार हो, धरता निजगुण रास॥ ॥ ४॥ धर्मामृत उर जलधिसौं, ज्ञानभानु तुम रूप। तुमरे चरणसरोजको, नावत तिहुं जग भूप॥ ५॥ मैं बंदौं जिनदेवको, कर अति निरमल भाव॥ कर्मबंधके छेदने, और न कछू उपाव॥ ६॥ भविजनको भवकूपतैं, तुमही काढन हार॥ दीनदयाल अनाथपति, आतम

गुणभंडार ॥ ७ ॥ चिदानंद निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल ॥ सरल करी या जगतमैं भविजन को शिवगैल ॥ ८ ॥ तुमपदपंकज पूजतैंविघ्न रोग टर जाय ॥ शत्रु मित्रताकों धरैं, विष निरविषता थाय ॥ ९ ॥ चक्रीखग-धरणेन्द्रपद, मिलै आपतैं आप ॥ अनुक्रम कर शिवपद लहै, नेम सकल हनि पाप ॥ १० ॥ तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसें जलविन मीन । जन्मजरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन ॥ ११ ॥ पतित बहुत पावन कियो, गिनती कौन करेव । अंजनसे तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव ॥ १२ ॥ थकी नाव भवदधिविषै, तुम प्रभु पार करेय । खेवटिया तुम हो प्रभू, जय जय जय जिनदेव ॥ १३ ॥ रागसहित जगमैं रुल्यो, मिले सरागी देव । वीतराग भेट्यो अबैं, मेटो राग कुटेव ॥ १४ ॥ कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अज्ञान, आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान ॥ १५ ॥ तुमको पूजैं सुरपती, अहिपति नरपति देव । धन्य भाग्य मेरो भयो, करनलग्यो तुम सेव ॥ १६ ॥ अशरणके तुम शरण हो; निराधार आधार ॥ मैं डूबत भवसिंधुमैं खेयो लगाओ पार ॥ १७ ॥ इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भग-वान । अपनो विरद निहारिकैं, कीजे आप समान ॥१८॥ तुमरी नेक सुदृष्टितैं, जग उतरत है पार । हाहा डूब्यो जात हों, नेक निहार निकार ॥ १९ ॥ जो मैं कह हूं

औरसौं, तो न मिटैं उरझार। मेरी तो तोसौं बनी, तातैं करौं पुकार ॥ २० ॥ वंदौं पाचौं परमगुरु, सुर गुरु वंदत जास। विघनहरन मंगल करन, पूरन परम प्रकाश ॥ २१ ॥

५१—नित्य नियमपूजा।

देव शास्त्रगुरुपूजा संस्कृत।

ओं जय जय जय। नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरीयाणं णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥ ओं ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः। (पुष्पांजलि क्षेपण करना) चत्तारि मंगालं, अरहंतमंगालं। सिद्धमंगलं, साहुमंगलं। केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वज्जामि ॥ ओं णमोऽर्हते स्वाहा।

अपवित्रः पवित्रो वासु स्थितो दुःस्थितोऽपि वा। ध्यायेत्पंचनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत्परमात्मनं स वाह्याभ्यंतरे शुचिः। अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः। मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥ ३ ॥

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥ ४ ॥ अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः। सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहं ॥ ५ ॥ कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनं। सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहं ॥६॥ विघ्नौघाः प्रलयं यांति शाकिनीभूतपन्नगाः। विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥ ७ ॥ [पुष्पांजलि]

(यदि अवकाश हो, तो यहींपर सहस्रनाम पढ़कर दश अर्घ देना चाहिये। नहीं तो नीचे लिखा श्लोक पढ़कर एक अर्घ चढाना चाहिये।

उदकचन्दनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥७॥

ओं ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हं। श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुर्जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥ ८ ॥ स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय, स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय, स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृङ्मयाय, स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥ ९ ॥ स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय, स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय, स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय, स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥ १० ॥ द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं, भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः। आलम्बनानि विविधान्य-

- । ... भूतार्थयज्ञपुरुषस्यक राम यश ...
वलंव्य वल्गन्, भूतार्थयज्ञपुरुषस्यक ... वस्तून्यनूनमखिलान्यय-
अर्हन्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि, वस्तून्यनूनमखिलान्यय-
मेक एव। अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ, पुण्यं सम-
ग्रमहमेकमना जुहोमि ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः। श्रीसं-
भवः स्वति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः। श्रीसुमतिः स्वस्ति
स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः। श्रीसुपार्श्वः स्वति, स्वस्ति श्रीचंद्र-
प्रभः श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति स्वस्ति श्रीशीतलः। श्रीश्रेयांस
स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति
श्रीअनन्तः । श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशांति
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः। श्रीमल्लिः स्व...
स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः। श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीने...
नाथः। श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वति श्रीवर्द्धमानः।

(पुष्पांजलि क्षेपण)

नित्याप्रकंपाद्भुतकेवलौघाः स्फुरन्मनःपर्ययशुद्धबो...
दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षय...

(पुष्पांजलि क्षेपण। आगे भी प्रत्येक श्लोकके अन्तमे पुष्पांज...
करना चाहिये)

कोष्टस्थधान्योपममेकबीजं संभिन्नसंश्रोतृपदानु...
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परम...
॥ २ ॥ संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादनाघ्राण...

नानि । दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥३॥ प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।४। जंघावलिश्रेणिफलांबुतंतु प्रसूनबीजांकुरचारणाह्वाः । नभोऽगणस्वैरविहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुःपरमर्षयो नः।५। अणिम्नि दक्षाः कुशलाः महिम्नि लघिम्नि शक्ता कृतिनो गरिम्णि । मनोवपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ६ ॥ सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं प्राकाम्यमंतर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः । तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयोः नः ॥७॥ दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थः। ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ८ ॥ आमर्षसर्वौषधयस्तथाशीर्विषंविषादृष्टिविषंविषाश्च । सखिल्लविड्जल्लमलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ९ ॥ क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतो मधुस्रवंतोऽप्यमृतं स्रवन्तः । अक्षीणसंवासमहानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ १० ॥

इति परमर्षिस्वस्तिमंगलविधानं ।

सार्वः सर्वज्ञनाथः सकलतनुभृतां पापसंतापहर्ता,
त्रैलोक्याक्रांतकीर्तिः क्षतमदनरिपुर्घातिकर्मप्रणाशः ।
श्रीमान्निर्वाणसंपद्वरयुवतिकरालीढकंठः सुकंठैर्देवेंद्रै-
र्वंद्यपादो जयति जिनपतिः प्राप्तकल्याणपूजः ॥ १ ॥

जय जय जय श्रीसत्कांतिप्रभो जगतां पते ! जय जय भवानेव स्वामी भवांभसि मज्जतां । जय जय महामोहध्वांतप्रभातकृतेऽर्चनं । जय जय जिनेश त्वं नाथ प्रसीद करोम्यहम् ॥ २ ॥

ओं ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र । अत्र अवतर अवतर । संवौषट् (इत्याह्वानम्)

ओं ह्रीं भगवज्जिनेंद्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ओं ह्रीं भगवज्जिनेंद्र । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति ! त्वत्पादपंकेरुह, द्वंद्वे यामि शिलीमुखित्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते । मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भूते सदा त्राहि मां दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं संपूजयामोऽधुना ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट्

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ. ठः । ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

संपूजयामि पूज्यस्य पादपद्मयुगं गुरोः ।
तपःप्राप्त प्रतिष्ठस्य गरिष्ठस्य महात्मनः ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह । अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

देवेंद्रनागेंद्रनरेंद्रवंद्यान् शुंभत्पदान् शोभितसारवर्णान् । दुग्धाब्धिसंस्पर्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेहम् ॥ १ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ताम्यत्त्रिलोकोदरमध्यवर्तिसमस्तसत्त्वाहितहारिवाक्यान्। श्रीचंदनैर्गंधविलुब्धभृंगैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥ २ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चदनं निर्वपामीति० ॥

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन् सुभक्त्य। दीर्घाक्षतांगैर्धवलाक्षतौघैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम्॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान्वर्यान् सुचर्याकथनैकधुर्यान्। कुंदारविंदप्रमुखैः प्रसूनैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥

कुदर्पकंदर्पविसर्पसर्प्पप्रसह्यनिर्णाशनवैनतेयान्। प्राज्याज्यसारैश्चरुभीरसाढ्यैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

ध्वस्तोद्यमांधीकृतविश्वविश्वमोहांधकारप्रतिघातदीपान्। दीपैः कनत्कांचनभाजनस्थैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति० ॥

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टज्वालसंधूपने भासुरधूमकेतून्। धूपैर्विधूतान्यसुगंधगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेहं ॥७॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामति स्वाहा ॥

क्षुध्यादिलुब्ध्यन्मनसाप्यगम्यान् कुवादि
लितप्रभावान् । फलैरलं मोक्षफलाभिसारैर्जि
तयतीन् यजेऽहं ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति ॥

सद्वारिगंधाक्षतपुष्पजातैर्नैवेद्यदीपामलधूप
फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोगान् जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन्

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति ॥

ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां भक्त्या सदा
त्रैसंध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चारयंतो नराः । पुण्य
मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणांस्ते भव्याः
लावबोधरुचिरां सिद्धिं लभन्ते पराम् ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षेपण करना)

वृषभोऽजितनामा च संभवश्चाभिनंदनः । सुमति
पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ १ ॥ चंद्राभ
पुष्पदंतश्च शीतलो भगवान्मुनिः । श्रेयांश्च वासुपू
ज्यश्च विमलो विमलद्युतिः ॥ २ ॥ अनंतो धर्मनामा
च शांतिः कुंथुर्जिनोत्तमः । अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो
नमितीर्थकृत् ॥ ३ ॥ हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिने-
श्वरः । ध्वस्तोपसर्गदैत्यारिः पार्श्वो नागेन्द्रपूजितः ॥४॥
कर्मान्तकृन्महावीरः सिद्धार्थकुलसंभवः । एते सुरासुरौ-
घेण पूजिता विमलत्विषः ॥ ५ ॥

शाश्वतीं ॥ ६ ॥ जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदाऽस्तु मे । सम्यक्त्वमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥७॥

पुष्पांजलि क्षेपण करना ।

श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः सदाऽस्तु मे । सज्ज्ञानमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ ८ ॥

(पुष्पांजलिम्)

गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदाऽस्तु मे । चारित्रमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ ९ ॥

(पुष्पांजलिम्)

देव जयमाला प्राकृत ।

वत्ताणुट्ठाणे जणधणुदाणे पइपोसिउ तुहु खत्तधरु । तुहु चरण विहाणे केवलणाणे तुहु परमप्पउ परमपरु ।१।
जय रिसहरिसीसर णमियपाय । जय अजिय जियंगमरोसराय ॥ जय संभव संभवकयविओय । जय अहिणंदणणंदिय पओय ॥ जय सुमइ सुमइसम्मयपयास, जय पउमप्पह पउमाणिवास जय जयहि सुपास सुपासगत्त जय चंदप्पह चंदाहवत्त ॥ ३ ॥ जय पुप्फयंत दंतंतरंग । जय सीयल सीयलवयणभङ्ग ॥ जय सेय सेयकिरणोहसुज्ज । जय वासुपुज्ज पुज्जाणपुज्ज ॥ ४ ॥ जय विमल विमलगुणसेढिठाण । जय जयहि अणंताणंतणाण ॥ जय धम्म धम्मतित्थयर संत । जय सांति सांति विहियायवत्त ॥ ५ ॥ जय कुंथ कुंथुपहुअंगिसदय

जय अर अर माहर विहियसमय ॥ जय मल्लि आदामगंध । जय मुणिसुव्वय सुव्वयणिबन्ध ॥ णमिणमियामरणियरसामि। जय णेमि धम्मरहचक्क जय पास पासछिंदणकिवाण । जय वड्ढमाण जस माण ॥ ७ ॥

धत्ता—

इह जाणिय णामहिं दुरियविरामहिं परहिंवि ण सुरावलिहिं । अणहणहिं अणाइहिं समिय कुवा पणविव अरहंता वलिहिं ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनेभ्यो अर्घं निर्व० ॥

शास्त्र जयमाला ।

संपइसुहकारण कम्मवियारण भवसमुद्दतारणतरण जिणवाणि णमस्समि सत्तिपयासमि सग्गमोक्खसंगम करणं ॥१॥ जिणंदमुहाओ विणिग्गयतार । गणिंदविगु फिय गंथपयार ॥ तिलोयहिमंडण धम्मह खाणि । सया- पणमामि जिणिंदहवाणि ॥२॥ अवग्गह ईह अवाय जु एहिं । सुधारण भेयहिं तिण्णि सएहिं ॥ मई छत्तीस बहुप्पमुहाणि । सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥ ३ ॥ सुदं पुण दोण्णि अणेयपयार । सुबारहभेय जगत्तयसार॥ सुरिंदणरिंदसमुच्चिओ जाणि । सयापणमामि जिणिंद- हवाणि ॥ ४ ॥ जिणिंदगणिंणरिंदह रिद्धि । पयासइ पुण्ण पुराकिउलिद्ध ॥ णिउग्गुपहिल्लउ एहु वियाणि । सया पण० ॥ ५ ॥ जु लोय अलोयह जुत्ति जु

तिण्णिविकाल सरूव भणेइ ॥ चउग्गइ लक्खण दुज्जउ जाणि । सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥६॥ जिणिंदच-रित्तविचित्त मुणेइ । सुसावहिधम्मह जुत्ति जणेइ ॥ णिउग्गु वि तिज्जउ इत्थु वियाणि । सया पणमामि जि-णिंदहवाणि ॥ ७ ॥ सुजीव अजीवह तच्चह चक्खु । सुपुण्ण विपाव विबंध विमुक्खु ॥ चउत्थुणिउग्गुविभा-सिय जाणि । सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥ ८ ॥ तिभेयहिं ओहिविणाणविचित्तु । चउत्थरिजोविउल मइउत्तु ॥ सुखाइय केवलणाण वियाणि । सया पण-मामि जिणिंदहवाणि ॥ ९ ॥ जिणिंदह णाणु जगत्तय भाणु । महातमणासिय सुक्खणिहाणु ॥ पय-चउ भत्ति-भरेण वियाणि । सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥१०॥ पयाणि सुबारहकोडि सयेण । सुलक्ख तिरासिय जुत्ति-भरेण ॥ सहस अट्ठावण पंच वियाणि ॥ सया पण-मामि जिणिंदहवाणि ॥ ११ ॥ इक्कावण कोडिउ लक्ख अठेव । सहसचुलसीदिसया छक्केव ॥ सढाइगवीसह गंथ पयाणि । सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥ १२ ॥

घत्ता—इह जिणवरवाणि विसुद्ध मई । जो भवि-यण णियमण धरई । सो सुरणरिंद संपइ लहई । केव-लणाणविउत्तरई ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानायार्घं नि०

गुरु जयमाला प्राकृत ।

भवियह भवतारण, सोलहकारण, अज्जवि तित्थ-यरत्तणहं। तव कम्म असंगइ दयधम्मगइ पालवि पंच-महव्वयहं ॥ १ ॥ वंदामि महारिसि सीलवन्त। पंचें-दियसंजम जोगजुत्त ॥ जे ग्यारह अंगह अणुसरंति। जे चउदह पुव्वह मुणि थुणंति ॥ २ ॥ पादाणु सारवर कुट्ठवुद्धि ॥ उप्पण्णु जाह आयासरिद्धि ॥ जे पाणाहारी तोरणीय। जे रुक्खमूल आतावणीय ॥ ३ ॥ जे मोणि-धाय चंदाहणीय। जे जत्थत्थवणि णिवासणीय ॥ जे पंचमहव्वय धरणधीर। जे समिदिगुत्ति पालणहि वीर ॥ ४ ॥ जे वड्ढहिं देहविरत्तचित्त। जे रायरोसभयमोह-चत्त ॥ जे कुगइहि संवरु विगयलोह। जे दुरियविणा-सणकामकोह ॥ ५ ॥ जे जल्लमल्लतणलित्तगत्त। आरं-भपरिग्गह जे विरत्त ॥ जे तिण्णकाल बाहर गमंति। छट्ठट्ठम दसमउ तउ चरंति ॥ ६ ॥ जे इक्कगास दुइगास लिंति। जे णीरसभोयण रइ करंति ॥ ते मुणिवर वंदउं ठियमसाण। जे कम्मडहइ वर सुक्कझाण ॥ ७ ॥ बार-हविहसंजम जे धरंति। जे चारिउ विकहा परिहरंति ॥ बावीस परीषह जे सहंति। संसारमहण्णउ ते तरंति ॥ ८ ॥ जे धम्मबुद्धि महियलि थुणंति। जे काउस्सग्गो णिसि गमंति ॥ जे सिद्धविलासणि अहिलसंति। जे पक्खमास आहार लिंति ॥९॥ गोदूहण जे वीरासणीय जे धणुहसेज वज्जासणीय। जे तवबलेण आयास सया पण० ॥ १० ॥ ...

अकलङ्क और निकलङ्क का वलिदान।

जंति। जे गिरि गुहकंदरविवरथंति ॥ १० ॥ जे सत्तु मित्त समभाव चित्त। ते मुनिवर वंदउं दिढचरित्त ॥ चउवीसह गंथह जे विरत्त। ते मुनिवर वंदउं जगपवित्त ॥११॥ जे सुज्झाणिज्झा एकचित्त। वंदामि महारिसि मोखपत्त ॥ रणयत्तयरंजिय सुद्धभाव। ते मुणिवर वंदउं ठिदिसहाव ॥ १२ ॥

घत्ता—जे तपसूरा, संजम धीरा, सिद्धवधू अणुराईया।
रयणत्तयरंजिय, कम्महगंजिय, ते ऋषिवरमय झाईया ॥

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

५२—देवशास्त्रगुरु पूजा।

अडिल्ल—प्रथमदेव अरहंत सुश्रुत सिद्धांतजू। गुरु निरग्रन्थ महन्त मुकतिपुर पंथजू। तीनरतन जगमांहि सो ये भवि ध्याइये। तिनकी भक्ति प्रसाद परमपद पाइये ॥ १ ॥

दोहा—पूजौं पद अरहंतके, पूजौं गुरुपदसार।
पूजौं देवी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्रावतरावतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, वंदनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्वल, देखि छवि मोहित सभा।

वर नीर क्षीरसमुद्रघटभरि, अग्र तसु बहु विधि नचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निरग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥ १ ॥
दोहा-मलिन वस्तु हरलेत सब, जल स्वभाव मलछीन।
जासों पूजों परमपद देवशास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० ॥ १ ॥

जे त्रिजग उदर मझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे। तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥ तसु भ्रमर लोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घसि सचूं ॥ अरहंत० ॥ २ ॥
दोहा—चन्दन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद देवशास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्व० ॥ २ ॥

यह भव समुद्र अपारतारन,-के निमित्त सु विधि ठई। अति दृढ़ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही ॥ उज्वल अखंडित सालि तंदुल पुंज धरि त्रयगुण जचूं। अरहंत० ॥ ३ ॥
दोहा-तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखण्डित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जे विनयवन्त सुभव्य उर अंबुज प्रकाशन भान हैं। जे एकमुख चारित्र भाषत त्रिजगमाहिं प्रधान हैं। लहि कुंदकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं ॥अ०॥

दोहा-विविधभांति परिमलसुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजौं परमपद देवशास्त्र गुरुतीन ॥ ४ ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व०॥४॥

अतिसबल मदकंदर्प जाको क्षुधाउरग अमान है।
दुस्सह भयानक तास नाशनको सुगरुड समान है॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्यकरि घृतमें पचूं। अर०

दोहा—नानाविध संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजौं परमपद देव शास्त्रगुरु तीन ॥ ५ ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० ॥ ५ ॥

जे त्रिजगउद्यम नाश कीने, मोहतिमिर महाबली।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली। इह-
भांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं। अर० ॥

दोहा-स्वपर प्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजौं परमपद देवशास्त्र गुरु तीन ॥ ६ ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्व० ॥ ६ ॥

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगंधताकरि, सकल परिमलता हंसै॥
इहभांति धूप चढाय नित भवज्वलनमांहि नहीं पचूं॥
अरहंत० ॥ ७ ॥

दोहा—अग्निमांहि परिमलदहन, चन्दनादि गुणलीन।
जासों पूजौं परमपद देवशास्त्र गुरु तीन ॥ ७ ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्व० ॥ ७ ॥

लोचन सु रसना घ्रान उर उत्साहके करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफल गुण सार हैं।
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूं। अर०॥
दोहा—जो प्रधान फल फलविषै, पंचकरण रस लीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्रगुरु तीन॥ ८॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्व०॥ ८॥
जल परम उज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं॥
इह भांति अर्घ चढ़ाय नित भवि करत शिवपंकति मचूं।
अरहंत०॥ ६॥
दोहा—वसुविधि अर्घ संजोयके, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन॥ ६॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला।

दोहा—देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुणविस्तार॥१
पद्धरि छन्द—चउ कर्मकी त्रेसठ प्रकृति नाशि। जी
अष्टादश दोषराशि। जे परम सुगुण हैं अनन्त धी
कहवतके छचालिस गुण गंभीर॥ २॥ शुभ सम
शरण शोभा अपार। शतइन्द्र नमत करशीस ध
देवाधिदेव अरहंत देव, बन्दों मन बचतन करि सु
॥ ३॥ जिनकी धुनि है ओंकाररूप, निर अक्ष

महिमा अनूप। दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात सतक सुचेत ॥ ४ ॥ सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सु अङ्ग ॥ रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहुप्रीति ल्याय ॥५॥ गुरु आचारज उवझाय साध, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध। संसार देह वैराग धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥ ६ ॥ गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस, भवतारन तरन जिहाज ईस। गुरुकी महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपूं मनवचनकाय ॥ ७ ॥

सोरठा—कीजै शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
द्यानत सरधावान, अजर अमरपद भोगवै ॥

ओं ह्री देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

५३—विद्यमानविंशति पूजा।

पूर्वापरविदेहेषु, विद्यमानजिनेश्वरान्।
स्थापयाम्यहमत्र, शुद्धसम्यक्त्वहेतवे ॥ १ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा! अत्र मम सन्निहिता भव २ वषट्।

कर्पूरवासितजलैर्भृतहेमभृंगैः धारात्रयं ददतुजन्मजराय हानि। तीर्थंकरायजिनविंशतिविद्यमानैः संचर्चयामि पदपंकजशांतिहेतोः ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्व०।

(इस पूजा में यदि बीस पुञ्ज करना हो, तो इस प्रकार मंत्र बोलना चाहिये)

ओं ह्री सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनंतवीर्य-सूरप्रभ--विशालकीर्ति--वज्रधर-चन्द्रानन--चन्द्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरषेण-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्येतिविंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

काश्मीरचंदनविलेपनमग्रभूमि, संसारतापहरचूरिकरोमि नित्यं । तीर्थंकरायजिनविंशतिविद्यमानैः, संचर्चयामि पद० ॥

ओं ह्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्व० ॥

अखंडअक्षतसुगंधसुनम्रपुंजै–रक्षयपदस्य सुखसंपतिप्राप्तहेतोः । तीर्थङ्करायजिनविंशतिविद्यमानैः, संचर्चयामि पद० ॥

ओं ह्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान निर्व० ॥ ३ ॥

अंभोजचंपकसुगंधसुपारजातैः, कामैर्विध्वंसनकरोम्यहंजिनाय । तीर्थंकराय जिनविंशतिविद्यमानैः, संचर्चयामि पद० ॥

ओं ह्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० ॥४॥

नैवेद्यकैः शुचितरैर्घृतपक्वखंडैः, क्षुधादिरोगहरिदोषविनाशनाय । तीर्थंकरायजिनविंशतिविद्यमानैः, संचर्चयामि पद० ॥

ओं ह्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० ॥

दीपैर्प्रदीपितजगत्त्रयरश्मिपुञ्जै,-र्दूरीकरोतिमरमो-

हविनाशनाय। तीर्थंकराय जिनविंशतिविद्यमानैः, संचर्चयामि पद० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि० ॥६॥

कर्पूरकृष्णागुरुचूर्णरूपै,-र्धूपैः सुगंधकृतसारमनोहराणि। तीर्थंकराय जिनविंशतिविद्यमानैः, संचर्चयामि पदपंकज० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपा० ॥७॥

नारिंगदाडिममनोहरश्रीफलाद्यैः, फलंअभीष्टफलदायकप्राप्तमेव। तीर्थंकराय जिनविंशतिविद्यमानैः, संचर्चयामि पद० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व० ॥ ८ ॥

जलस्यगंधाक्षतपुष्पचारुभिः, दीपस्यधूपफलमिश्रितमर्घपात्रैः। अर्घ करोमि जिनपूजनशांतिहेतोः संसारपूर्णाकुरुसेविकानां ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामी० ॥९॥

अथ जयमाला।

दोहा—दीप अढाई मेरु पुनि, तीर्थंकर हैं वीस।
तिनको नित प्रति पूजिये, नमो जोरिकर शीस ॥ १ ॥

प्रथम सिमंदिरस्वामि, युगमंदिर त्रिभुवनधनिये। बाहु सुबाहु जिनंद, सेवहिं सुखसंपतिधनिये ॥ २ ॥ संजात स्वयंप्रभुदेव, ऋषभाननगुण गाइये। अनंतवीर्यजीकी सेव, मनवांछितफल पाइये ॥ ३ ॥ सूरप्रभु

सुविशाल, वज्रधर जिनवंदिये । चंद्रानन भद्रबाहु, देखत मन आनंदिये ॥ वीरसेन जयवंत, ईश्वर नेमीश्वर कहिये । भुजंगबाहु भगवंत, तारण भव जलते कहिये ॥ ५ ॥ देव यशोधरराय, महाभद्र जिन वंदिये । अजितवीर्यजीको तेज, कोटि दिवाकर जों दिपिये ॥

घत्ता—ये बीस जिनवर संग प्रभुके; सेव तुमरी कीजिये । ये बीसो बंदन करै सेवक, मनवांछित फल लीजिये ॥

५४—विद्यमान बीसतीर्थंकरपूजा भाषा ।

दीप अढाई मेरु पन, अरु तीर्थंकर बीस ।
तिन सबकी पूजा करूं, मनवचतन धरि सीस ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा ! अत्र अवतरत अवतरत । संवौषट् ।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत । ठः ठः स्थापनं ।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः ! अत्र मम सन्निहिताः भवत भवत वषट् ।

इंद्र फणींद्र नरेंद्र वंद्य, पद निर्मल धारी । शोभनीक संसार, सारगुण हैं अविकारी ॥ क्षीरोदधि सम नीरसों (हो), पूजों तृषा निवार । सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेह मझार ॥ श्री जिनराज हो भव, तारण-तरण जिहाज ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्व० ।
(इस पूजामें बीस पूजा करना हो, तो इस प्रकार मन्त्र बोलना चाहिये
ओं ह्रीं सीमंधर-जुगमंधर-बाहु-सुबाहु-सजातक-स्वयंप्रभ-वृषभान-...-भुजंगम-ईश्वर-
...अनंतवीर्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर...

नेमिप्रभ—वीरसेन—महाभद्र—देवयशोऽजितवीर्येतिविंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

तीनलोकके जीव, पाप आताप सताये। तिनकों साता दाता, शीतल वचन सुहाये ॥ बावन चंदनसों जजूं (हो) भ्रमन-तपन निरवार। सीमंधर० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दन नि० ॥२॥

(इसके स्थानमें यदि इच्छा हो तो बड़ा मन्त्र पढ़ैं)

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी। तातैं तारे बड़ी, भक्ति—नौका जगनामी ॥ तंदुल अमल सुगंधसों (हो) पूजों तुम गुण सार। सीमंधर० ॥३॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व० ॥ ३ ॥

भविक-सरोज-विकाश, निंद्यतमहर रविसे हो। जति श्रावक आचार, कथनको, तुमही बड़े हो ॥ फूल-सुवास अनेकसों (हो) पूजों मदन प्रहार। सीमंधर० ॥४॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य. क्षुधारोगविनाशनाय पुष्पं निर्व० ॥४॥

काम नाग विषधाम, नाशको गरुड कहे हो। क्षुधा महादवज्वाल, तासको मेघ लहे हो ॥ नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो) पूजों भूखविडार। सीमंधर० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० ॥

उद्यम होन न देत, सर्व जगमांहि भर्यो है। मोह महातमघोर नाश परकाश कर्यो है ॥ पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योति करतार। सीमंधर० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि० ॥६॥

कर्म आठ सब काठ,–भार विस्तार निहारा। ध्यान अगनि कर प्रगट, सरब कीनों निरवारा॥ धूप अनूपम खेवतैं (हो), दुःख जलैं निरधार। सीमंधर०

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि० ॥ ७ ॥

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं। सबको छिनमें जीत जैनके मेर खरे हैं॥ फल अति उत्तमसों जजों (हो) वांछितफलदातार। सीमंधर० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व० ॥८॥

जल फल आठों दर्व अरघकर प्रीति धरी है। गणधर इंद्रनहूतैं थुति पूरी न करी है। द्यानत सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार। सीमं० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व०॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

सोरठा—ज्ञान सुधाकर चंद, भविकखेतहित मेघ हो।
भ्रमतमभान अमंद, तीर्थंकर बीसों नमों॥

चौपाई—सीमंधर सीमंधर स्वामी। जुगमंधर जुगमंधर नामी। बाहु बाहु जिन जगजन तारे। करम सुबाहु बाहुबल दारे॥ १ ॥ जात सुजात केवलज्ञानं। स्वयंप्रभू प्रभू स्वयं प्रधानं। ऋषभानन ऋषि भानन दोषं। अनंतवीरज वीरजकोषं॥ २ ॥ सौरीप्रभ सौरीगुणमालं। सुगुण विशाल विशाल दयालं। वज्रधार

भव गिरिवज्जर हैं। चंद्रानन चंद्रानन वर हैं ॥ ३ ॥
भद्रबाहु भद्रनिके करता। श्री भुजंग भुजंगम हरता ॥
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं। नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं
॥४॥ वीरसेन वीरं जग जानै। महाभद्र महाभद्र बखानै
नमों जसोधर जसधरकारी। नमों अजितवीरज बलधारी
॥५॥ धनुष पांचसै काय विराजै। आव कोडिपूरव सब
छाजै ॥ समवशरण शोभित जिनराजा। भवजलतारनत-
रन जिहाजा ॥६॥ सम्यक रत्नत्रयनिधि दानी। लोका-
लोक प्रकाशक ज्ञानी ॥ शतइन्द्रनिकरि बंदित सोहैं।
सुरनर पशु सबके मन मोहैं ॥ ७ ॥

दोहा—तुमको पूजैं बंदना, करै धन्य नर सोय।
'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

५५—विद्यमानवीस तीर्थंकरोंका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूप फलार्घकैः।
... ... जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥

ओं ह्रीं श्री सीमंधरयुगमंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभऋषिभाननअनन्त-
... विशालकीर्तिवज्रधरचन्द्राननभद्रबाहुभुजंगमईश्वरनेमिप्रभवीरसेन-
-देवयश—अजितवीर्येतिविंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्योऽर्घं निर्वपामीति
॥

५६—अकृत्रिम चैत्यालयोंके अर्घ।

... चैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकींगतान्।

वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान्सर्वगान्॥ सद्-गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलै र्नीराद्यैश्चयजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शांतये ॥ १ ॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिंबेभ्योऽर्घ्यं नि० ॥

वर्षेषुवर्षांतरपर्वतेषु नंदीश्वरे यानि च मंदरेषु । यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानां ॥२॥ अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां । वनभवन-गतानां दिव्य वैमानिकानां ॥ इह मनुज कृतानां देवरा-जर्चितानां । जिन वरनिलयानां भावतोऽहंस्मरामि ॥३॥ जंबूधातकिपुष्करार्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवांश्चन्द्रांभोज-शिखंडिकंठकनकप्रावृड्घनाभाजिनः॥ सम्यग्ज्ञानचरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धनाः । भूता नागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥४॥ श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौरजतगिरि-वरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचिके कुंडले मानुषांके। इष्वाकारेंजनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके, ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥५॥ द्वौ कुंदेंदुतुषारहार धवलौ द्वाविंद्रनी-लप्रभौ । द्वौ बंधूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ शेषाः षोडशजन्ममृत्यु रहिताः संतप्तहेमप्रभा स्ते संज्ञा-नदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु नः ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं त्रिलोकसंबंधि कृत्याकृत्रिमचैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामिती स्वाहा

इच्छामि भंते चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालो

चेओ अहलोय तिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकि-टिट्टमाणि जाणि जिण चेइयाणि ताणि सव्वाणि, तीसुवि लोयेसु भवणवासिय वाणविंतरजोयसियकप्पवासियत्ति-चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुफ्फेण दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ह्वाणेण णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति। अहमविइहसंतो तत्थसंताइ णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

(इत्याशीर्वादः। पुष्पाजलिं क्षिपेत्)

अथ पौर्वाह्लिक-माध्याह्निक-अपराह्लिकदेवबंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तव-समेतं श्रीपंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

णमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोय सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

५७—सिद्धपूजा द्रव्याष्टक।

ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं।
वर्गापूरितदिग्गतांबुजदलं तत्संधितत्त्वान्वितं ॥
अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं।
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः॥

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये। सिद्धपरमेष्ठिन्। अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये। सिद्धपरमेष्ठिन्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये। सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो। भव भव वषट्।

निरस्तकर्मसंबंधं, सूक्ष्मं नित्यं निरामयम्।
वंदेऽहं परमात्मानममूर्तमनुपद्रवम् ॥ १ ॥

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्मगम्यं हीनादिभावरहितं भववीतकायं। रेवापगावरसरोयमुनोद्भवानां नीरैर्यजे कलशगैर्वरसिद्धचक्रं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं नि०

आनंदकंदजनकं घनकर्ममुक्तं सम्यक्त्वशर्मगरिमं जननार्ति वीतं। सौरभ्यवासितभुवं हरिचंदनानां, गंधैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रं ॥ २ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं नि०

सर्वावगाहनगुणं सुसमाधिनिष्ठं, सिद्धं स्वरूपनिपुणं कमलं विशालं। सौगन्धशालिवनशालिवराक्षतानां, पुंजैर्यजे शशिनिभैर्वरसिद्धचक्रं ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि०

नित्यं स्वदेहपरिमाणमनादिसंज्ञं, द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतम्। मंदारकुन्दकमलादिवनस्पतीनां, पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि०

ऊर्ध्वस्वभावगमनं सुमनोव्यपेतं, ब्रह्मादिबीजसहितं गगनावभासम्। क्षीरान्नसाज्यवटकै रसपूर्णगर्भै-र्नित्यं यजे चरुवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने क्षुद्रोगविध्वंसनाय नैवेद्यं नि०

आतङ्कशोकभयरोगमदप्रशांतं, निर्द्वन्द्वभावधरणं महिमानिवेशं। कर्पूरवर्तिबहुभिः कनकावदातै-र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि०

पश्यन्समस्तभुवनं युगपन्नितांतं, त्रैकाल्यवस्तुविषये निविडप्रदीपम्। सद्द्रव्यगन्धघनसारविमिश्रितानां, धूपैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं नि०

सिद्धासुरादिपतियक्षनरेन्द्रचक्रै-र्ध्येयं शिवं सकलभव्यजनैः सुवन्द्यं। नारिंगपूगकदलीफलनारिकेलैः सोऽहंयजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः संगं वरं चन्दनं। पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकं॥ धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये। सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितं ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं, सूक्ष्मस्वभाव-

परमं यदनंतवीर्यं । कर्मौघकक्षदहनं सुखसस्यबीजं वंदे सदा निरुपमम् वरसिद्धचक्रम् ॥ १० ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

त्रैलोक्येश्वरवंदनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं । यानाराध्य निरुद्धचंडमनसः संतोऽपितीर्थंकराः ॥ सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्यविशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणै, र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान् ॥पुष्पां०।

अथ जयमाल ।

विराग सनातन शांति निरंश । निरामय निर्भय निर्मल हंस ॥ सुधाम विबोधनिधान विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ १ ॥ विदूरितसंसृतभाव निरंग। समामृतपूरित देव विसंग ॥ अबंधकषाय विहीन विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ २ ॥ निवारितदुष्कृतकर्मविपास । सदामल केवलकेलिनिवास ॥ भवोदधिपारग शान्त विमोह । प्रसीद विशुद्धसुसिद्धसमूह ॥३॥ अनंतसुखामृतसागर धीर । कलंकरजोमलभूरिसमीर ॥ विखंडितकाम विराम विमोह । प्रसीद विशुद्धसुसिद्धसमूह ॥ ४ ॥ विकारविवर्जित तर्जितशोक विबोधसुनेत्रविलोकितलोक ॥ विहार विराव विरंग विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ५ ॥ रजोमलखेदविमुक्त विगात्र । निरंतर नित्य सुखामृतपात्र ॥ सुदर्शनराजित नाथ विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह

॥६॥ नरामरवंदित निर्मल भाव। अनंत मुनीश्वरपूज्य विहाव॥ सदोदय विश्वमहेश विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ७ ॥ विदंभ वितृष्ण विदोष विनिद्र। परापरशंकरसार वितन्द्र॥ विकोप विरूप विशंक विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ८ ॥ जरामरणोज्झित वीतविहार। विचिंतित निर्मल निरहंकार॥ अचिंत्यचरित्र विदर्प विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ९ ॥ विवर्ण विगंध विमान विलोभ। विमाय विकाय विशब्द विशोभ। अनाकुल केवल सर्व विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ १० ॥

घत्ता—असमसमयसारं चारुचैतन्यचिह्नं, परपरणतिमुक्तं पद्मनंदींद्रवंद्यं। निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं, स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिं ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथाशीर्वाद। अडिल्लछन्द।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो। समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो। शुद्धबोध अविरुद्ध अनादि अनंत हो। जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो ॥ १ ॥ ध्यान अगनिकर कर्म कलंक सबै दहे। नित्य निरंजनदेव सरूपी ह्वै रहे। ज्ञायकके आकार ममत्व निवारिकैं, सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकैं ॥ २ ॥

दोहा—अविचलज्ञानप्रकाशतैं, गुण अनंतकी खान।
ध्यान धरैं सो पाइये, परम सिद्ध भगवान ॥ ३ ॥

५८—सिद्धपूजाका भावाष्टक।

निजमनोमणिभाजनभारया, समरसैकसुधारसधारया। सकलबोधकलारमणीयकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ जलं ॥ सहजकर्मकलंकविनाशनैरमलभावसुवासितचंदनैः। अनुपमानगुणावलिनायकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ चंदनम् ॥ सहजभावसुनिर्मलतंदुलैः सकलदोषविशालविशोधनैः। अनुपरोधसुबोधनिधानकम्, सहज सिद्धमहं परिपूजये ॥अक्षतम्॥ समयसारसुपुष्पसुमालया, सहजकर्मकरेण विशोधया। परमयोगबलेन वशीकृतम्, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ पुष्पं ॥ अकृतबोधसुदिव्यनिवेद्यकैर्विहितजातजरामरणांतकैः। निरवधिप्रचुरात्मगुणालयं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ नैवेद्यं ॥ सहजरत्नरुचिप्रतिदीपकैः रुचिविभूतितमः प्रविनाशनैः। निरवधिस्वविकाशप्रकाशनैः, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥दीपम्॥ निजगुणाक्षयरूपसुधूपनैः, स्वगुणघातिमलप्रविनाशनैः। विशदबोधसुदीर्घसुखात्मकम्, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ धूपं ॥ परमभावफलावलिसम्पदा, सहजभावकुभावविशोधया। निजगुणास्फुरणात्मनिरंजनम्, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ फलं ॥ नेत्रोन्मीलिविकाशभावनिवहैरत्यन्तबोधाय वै। वार्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः

फलैः ॥ यश्चिंतामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत् ।
सिद्धं स्वादुमगाधबोधमचलं संचर्चयामो वयम् ॥ ६ ॥

५६—सोलहकारणका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनहेतुमहं यजे ॥१॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

६०—दशलक्षणधर्मका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनधर्ममहं यजे ॥

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्भूतोत्तमक्षमामार्दवार्जवसौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यदशलाक्षणिक धर्मेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

६१—रत्नत्रयका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुलेजिनगृहेजिनरत्नमहं यजे ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशप्रकारसम्यक्चारित्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

६२—जिनवाणी माताका अर्घ।

जल चंदन अच्छत, फूल चरु चत, दीप धूप अति फल लावैं। पूजाको ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत, सुख पावैं ॥ तीर्थंकरकी० ॥ अर्घ्य ॥ १० ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

६३—समुच्चयचौवीसी पूजा ।

वृषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पद्म सुपास जिनराय । चंद पुहुप शीतल श्रेयांस नमि, वासुपूज पूजितसुरराय ॥ विमल अनन्त धर्मजसउज्जल, शांति कुन्थु अर मल्लि मनाय । मुनिसुव्रत नमिनेमि पार्श्वप्रभु, वर्द्धमानपद पुष्प चढ़ाय ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरातचतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरातचतुर्विंशतिजिन समूह ! अत्र तिष्ठ । तिष्ठ । ठः ठः । ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरातचतुर्विंशतिजिन समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

मुनिमनसम उज्वल नीर, प्रासुक गंध भरा । भरि कनककटोरी धीर, दीनी धार धरा ॥ चौबीसों श्रीजिनचन्द, आनन्दकन्द, सही । पद जजत हरत भवफन्द, पावत मोक्षमही ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरातेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं० ॥

गोशीर कपूर मिलाय केशर रङ्ग भरी ।
जिनचरनन देत चढ़ाय, भव आताप हरी ॥चौ०॥ चंदनं॥
तंदुलसित सोमसमान, सुन्दर अनियारे ।
मुकताफलकी उनमान, पुञ्ज धरों प्यारे ॥चौ०॥अक्षतं॥
बरकंज कदंब कुरंड, सुमन सुगंध भरे ।
जिन अग्र धरों गुनमंड कामकलंक हरे ॥ चौवी० पुष्पं ॥
मनमोदनमोदक आदि, सुंदर सद्य बने ।

रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत छुधादि हने ॥चौ०॥नैवे०॥
तमखंडन दीप जगाय, धारों तुम आगै ।
सब तिमिरमोह क्षय जाय, ज्ञानकला जागै ॥चौ०॥दीपं॥
दशगंध हुताशनमाहिं, हे प्रभु खेवत हों ।
मिस धूम करम जरि जाहिं, तुम पद सेवत हों ॥चौ०धूपं॥
शुचि पक्क सुरस फल सार, सबऋतुके ल्यायो ।
देखत दृगमनकों प्यार, पूजत सुख पायो॥चौबी०॥फलं॥
जल फल आठों शुचिसार, ताकों अर्घ करों । तुमकों
अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ॥ चौवी०॥ अर्घ्यं ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—श्रीमत तीरथनाथपद, माथ नाय हित हेत ।
गाऊं गुणमाला अबै, अजर अमरपद देत ॥ १ ॥
छंद घत्तानन्द—जय भवतम भंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छकरा । शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौबीसौं जिनराज वरा ॥ २ ॥

छन्द पद्धरी—जय ऋषभदेव रिषिगन नमंत । जय अजित जीत वसुअरि तुरंत ॥ जय संभव भवभय करत चूर । जय अभिनंदन आनंदपूर ॥३॥ जय सुमति सुमतिदायक दयाल । जय पद्म पद्मदुति तनरसाल ॥ जत जय सुपास भवपासनाश । जय चंद चंदतनदुतिप्रकाश ॥ ४ ॥ जय पुष्पदंत दुतिदंत सेत । जय शीतल शीतलगुननिकेत । जय श्रेयनाथ नुतसहसभुज्ज । जय

वासवपूजित वासुपुज्ज ॥ ५ ॥ जय विमल विमलपददेन-हार । जय जय अनंत गुनगन अपार । जय धर्म धर्म शिवशर्म देत । जय शांति शांति पुष्टी करेत ॥६॥ जय कुंथु कुंथुवादिक रखेय । जय अर जिन वसुअरि छय करेय ॥ जय मल्लि मल्ल हतमोहमल्ल । जय मुनिसुव्रत व्रतशल्लदल्ल ॥ ७ ॥ जय नमि नित वासवनुत सपेम । जय नेमिनाथ वृषचक्रनेम । जय पारसनाथ अनाथनाथ । जय वर्द्धमान शिवनगर साथ ॥ ८ ॥

घत्ता-चौवीस जिनंदा आनँदकंदा पापनिकंदा सुखकारी । तिनपदजुगचंदा उदय अमंदा, वासव वंदा हितकारी ॥९॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतिजिनेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा-भुक्ति मुक्ति दातार, चौवीसों जिनराजवर । तनपद मनवचधार, जो पूजै सो शिव लहै ॥ इत्याशीर्वादः

६४—निर्वाणक्षेत्र पूजा।

सोरठा—परम पूज्य चौवीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये।
सिद्धभूमि निशदीस, मनवचतन पूजा करौं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि । अत्र तिष्ठत तिष्ठत । ठः ठः ।
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम सन्निहितो भव २ वषट्

गीता छंद-शुचि क्षीरदधिसम नीर निरमल, कनझारीमें भरौं । संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं ॥ सम्मेदगिरि गिरनार चंपा, पावापुरि

कैलाशकों। पूजौं सदा चौवीसजिन, निर्वाणभूमि निवासकों ॥ १ ॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

केशर कपूर सुगंध चंदन, सलिल शीतल विस्तरौं। भवपापको संताप मेटो, जोरकर विनती करौं ॥सम्मे०॥ ॥चंदनं॥ मोती समान अखंड तंदुल, अमल आनँदधरि तरौं। औगुन हरौ गुन करो हमको, जोरकर विनती करौं। सम्मे० ॥ अक्षतं ॥ शुभफूलरास सुवासवासित, खेद सब मनकी हरौं। दुखधाम काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं। सम्मे० ॥ पुष्पं ॥ नेवज अनेक प्रकार जोग, मनोग धरि भय परिहरौं। यह भूख दूषन टार प्रभुजी, जोरकर विनती करौं। सम्मे० ॥ नैवेद्यं ॥ दीपक प्रकाश उजास उज्वल, तिमिरसेती नहिं डरौं। संशयविमोहविभर्म-तमहर, जोर कर विनती करौं। सम्मे० ॥दीपं॥ शुभ धूप परम अनूप पावन, भाव पावन आचरौं। सब करमपुंज जलाय दीज्यो, जोर कर विनती करौं। सम्मे० ॥धूपं॥ बहु फल मंगाय चढाय उत्तम, चारगतिसों निरवरौं। निहचै मुकतिफल देहु मोकों, जोरकर विनती करौं। सम्मे० ॥फलं॥ जल गंध अक्षत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं। 'द्यानत' करो निरभय जगततैं, जोरकर विनती करौं। सम्मे० ॥ अर्घं ॥ ९ ॥

सोरठा—श्रीचौबीस जिनेश, गिरिकैलाशादिक नमों
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवानतैं ॥ १ ॥

चौपाई—नमों रिषभ कैलास पहारं। नेमिनाथ गिरनार निहारं ॥ वासुपूज्य चंपापुर वंदौं। सन्मति पावापुर अभिनंदौं ॥ २ ॥ वंदौं अजित अजितपददाना। वंदौं संभव भवदुखघाना ॥ वंदौं अभिनंदन गणनायक। वंदौं सुमति सुमतिके दायक ॥ ३ ॥ वंदौं पदममुकतिपदमाधर। वंदौं सुपार्स आशपासाहर ॥ वंदौं चंद्रप्रभ प्रभुचंदा। वंदौं सुविधि सुविधिनिधिकंदा ॥४॥ वंदौं शीतल अघतपशीतल। वंदौं श्रियांस श्रियांस महीतल ॥ वंदौं विमल विमल उपयोगी। वंदौंअनंत अनंतसुखभोगी ॥ ५ ॥ वंदौं धर्म धर्मविसतारा। वंदौं शांति शांतिमनधारा ॥ वंदौं कुंथु कुंथुरखवालं। वंदौं अर अरिहर गुणमालं ॥ ६ ॥ वंदौं मल्लि काममलचूरन। वंदौं मुनिसुव्रत व्रतपूरन ॥ वंदौं नमि जिन नमितसुरासुर। वंदौं पास पासभ्रमजरहर ॥ ७ ॥ बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर। शिखरसमेदमहागिरि भूपर ॥ एक बार वंदै जो कोई। ताहि नरकपशुगति नहिं होई ॥ ८ ॥ नरपतिनृप सुरशक्र कहावै। तिहुंजग भोग भोगि शिव

घत्ता—जो तीरथ जावै, पाप मिटावै, ध्यावै
भगति करै। ताको जस कहिये, संपति लहिये, गि
गुणको बुध उच्चरै ॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

६५—शान्तिपाठ।

दोधकवृत्तं—शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रम्, श
गुणव्रत संयमपात्रम्। अष्टशतार्चितलक्षणगात्रम्,
जिनोत्तममम्बुजनेत्रम् ॥ १ ॥ पंचममीप्सितचक्र
पूजितमिंद्रनरेन्द्रगणैश्च। शांतिकरं गणशांतिम
षोडशतीर्थंकरं प्रणमामि ॥२॥ दिव्यतरुःसुरपुष्पसु
दुंदुभिरासनयोजनघोषौ। आतपवारणचामरयुग्मे
विभाति च मंडलतेजः ॥३॥ तं जगदर्चितशांतिजि
शांतिकरं शिरसा प्रणमामि। सर्वगणाय तु य
शांतिं मह्यमरं पठते परमां च ॥ ४ ॥

बसन्ततिलका छन्द—येऽभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहा
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः। ते मे जिनाः
रवंशजगत्प्रदीपास्तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु

इन्द्रवज्रा—संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र
न्यतपोधनानां। देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु
भगवान् जिनेन्द्रः ॥ ६ ॥

स्रग्धरावृत्तं—क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् ध
भूमिपालः। काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्य

यांतु नाशं। दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्म-भूज्जीवलोके, जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौ-ख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

अनुष्टुप्—प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वंतु जगतः शांतिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥ ८ ॥
प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

अथेष्ट प्रार्थना।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः। सद्वृत्तानां गुणगणकथादोषवादे च मौनं। सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे। संपद्यंतां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥

आर्यावृत्तं—तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं। तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥१०॥ अक्खरपयत्थहीणं मत्ता हीणं च जं मए भणियं। तं खमउणाणदेव य मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥ ११ ॥ दुःक्खक्खओ कम्मक्खओ, समाहिमरणं च बोहिलाहो य। मम होउ जगद्बंधव तव, जिणवर चरणसरणेण ॥१२॥

६६—संस्कृत प्रार्थना।

त्रिभुवनगुरो! जिनेश्वर! परमानंदैककारणं कुरु-ष्व। मयिकिंकरेत्र करुणा यथा तथा जायते मुक्तिः ॥ १ ॥ निर्विण्णोहं नितरामर्हन् बहुदुक्खया भवस्थित्या। अपु-नर्भवाय भवहर! कुरु करुणामत्र मयि दीने ॥ २ ॥

उद्धर मां पतितमतो विषमाद् भवकूपतः कृपां कृत्वा। अर्हन्नलमुद्धरणे त्वमसीति पुनः पुनर्वच्मि ॥ ३ ॥ त्वं कारुणिकः स्वामी त्वमेव शरणं जिनेश ! तेनाहं। मोह-रिपुदलितमानं फूत्करणं तव पुरः कुर्वे ॥ ४ ॥ ग्राम-पतेरपि करुणा परेण केनाप्युपद्रुते पुंसि। जगतां प्रभो ! न किं तव, जिन ! मयि खलु कर्मभिः प्रहते ॥ ५ ॥ अपहर मम जन्म दयां, कृत्वेत्येकवचसि वक्तव्यं। तेनातिदग्ध इति मे देव ! बभूव प्रलापित्वम् ॥ ६ ॥ तव जिनवर चरणाब्जयुगं करुणामृतशीतलं यावत्। संसारतापतसः करोमि हृदि तावदेव सुखी ॥ ७ ॥ जगदेकशरण भगवन् ! नौमि श्रीपद्मनंदितगु-णौघ ! किं बहुना कुरु करुणामत्र जने शरणमापन्ने ॥ ८ ॥ (परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

६७—विसर्जनपाठ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया। तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥ १ ॥ आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनं। विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥ मंत्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च। तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ३॥ आहूता ये पुरा देवालब्धभागा यथाक्रमं। ते मयाऽ-भ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यांतु यथास्थितिं ॥ ४ ॥

६८—शांतिपाठ भाषा।

चौपाई १६ मात्रा।

शांतिनाथ मुख शशि उनहारी। शीलगुणव्रत-संयमधारी॥ लखन एक सौ आठ विराजैं। निरखत नयन कमलदल लाजैं॥ १॥ पंचम चक्रवर्तिपदधारी। सोलम तीर्थंकर सुखकारी॥ इन्द्रनरेंद्र पूज्य जिननायक नमों शांतिहित शांति विधायक॥ २॥ दिव्य विटप पहुपनकी वरषा। दुंदुभि आसन वाणी सरसा॥ छत्र चमर भामण्डल भारी। ये तुव प्रातिहार्य मनहारी॥३॥ शांति जिनेश शांति सुखदाई। जगतपूज्य पूजों शिर-नाई। परमशांति दीजै हम सबको। पढ़ैं तिन्हैं, पुनि चार संघको॥ ४॥

वसन्ततिलका।

पूजैं जिन्हैं मुकुट हार किरीट लाके। इन्द्रादिदेव अरु पूज्य पदाब्ज जाके॥ सो शांतिनाथ वरवंशजगत्प्रदीप। मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप॥ ५॥

इन्द्रवज्रा।

संपूजकोंको प्रतिपालकोंको। यतीनको औ यति-नायकोंको॥ राजा प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले। कीजे सुखी हे जिन शांतिको दे॥ ६॥

स्रग्धरा।

होवै सारी प्रजाको सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।

होवै वर्षा समैपै तिल भर न रहै व्याधियोंका अन्देशा॥
होवै चोरी न जारी सुसमय वरतै हो न दुष्काल मारी।
सारेही देश धारैं जिनवर वृषको जो सदा सौख्यकारी॥
दोहा—घातिकर्म जिन नाशकरि पायो केवलराज।
शांति करौ सब जगतमें वृषभादिक जिनराज॥

मंदाक्रांता।

शास्त्रोंका हो पठन सुखदा लाभ सत्संगतीका। सद्वृत्तोंका सुजस कहके, दोष ढांकूं सभीका॥ बोलूं प्यारे वचन हितके, आपका रूप ध्याऊं। तौलौं सेऊं चरन जिनके मोक्षजौंलौं न पाऊं॥ ९॥

आर्या।

तवपद मेरे हियमें ममहिय तेरे पुनीत चरणोंमें। तबलों लीन रहों प्रभु, जबलों पाया न मुक्तिपद मैंने॥ १०॥ अक्षरपद मात्रासे, दूषित जो कछु कहा गया मुझसे। क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणा करि पुनि छुड़ाउं भवदुखसे॥ ११॥ हे जगबन्धु जिनेश्वर, पाऊं तव चरण शरण बलिहारी। मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मोंका क्षय सुबोध सुखकारी॥ १२॥

परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।

६९—विसर्जनपाठ भाषा।

दोहा—बिन जाने वा जानके, रही टूट जो कोय। तुव प्रसाद तैं परमगुरु, सो सब पूरन होय॥ १॥ पूजन-

विधि जानों नहीं, नहिं जानों आह्वान। और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करो भगवान ॥ २ ॥ मंत्रहीन धनहीन हूं, क्रियाहीन, जिनदेव। क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरणकी सेव ॥ ३ ॥ आये जो जो देवगन, पूजे भक्ति-प्रमान। सो अब जावहु कृपाकर, अपने अपने थान ॥४॥

७०—भाषास्तुतिपाठ।

तुम तरणतारण भवनिवारण, भविकमन आनंदनो।
श्रीनाभिनंदन जगतबंदन, आदिनाथ निरंजनो ॥ १ ॥
तुमआदिनाथ अनादि सेऊं सेय पदपूजा करूँ। कैलाश गिरिपर रिषभजिनवर, पदकमल हिरदै धरूँ ॥ २ ॥
तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली। यह विरुद सुनकर शरन आयो, कृपा कीज्यो नाथ जी ॥३॥
तुम चन्द्रवदन सु चन्द्रलच्छन चन्द्रपुरि परमेश्वरो।
महासेननन्दन जगतवन्दन चन्द्रनाथ जिनेश्वरो ॥ ४ ॥
तुम शांति पांचकल्याण पूजों, शुद्धमनवचकाय जू।
दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन विघन जाय पलाय जू ॥ ५ ॥
तुम बालब्रह्म विवेकसागर, भव्यकमल विकाशनो।
श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो ॥६॥
जिन तजी राजुल राजकन्या, कामसैन्या वश करी।
चारित्ररथ चढ़ि भये दूलह, जाय शिवरमणी वरी ॥७॥
कन्दर्प दर्प सुसर्पलच्छन, कमठ शठ निर्मद कियो।
अश्वसेननन्दन जगतवंदन सकलसँघ मंगल कियो

॥८॥ जिन धरी बालकपणे दीक्षा, कमठमानविदारकैं। श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्रके पद, मैं नमों शिरधारके॥ ९॥ तुम कर्मघाता मोक्षदाता, दीन जानि दया करो। सिद्धार्थनंदन जगत बंदन, महावीर जिनेश्वरो॥ १०॥ छत्र तीन सोहैं सुरनर मोहैं, वीनती अवधारिये। करजोड़ि सेवक वीनवै प्रभु आवागमन निवारिये॥ ११॥ अब होउ भवभव स्वामी मेरे, मैं सदासेवक रहों। करजोड़ यो वरदान मांगूं, मोक्षफल जावत लहों॥१२॥ जो एक माहीं एक राजत एकमाहिं अनेकनो। इक अनेककी नहीं संख्या नमूँ सिद्ध निरंजनो॥ १३॥

चौ०—मैं तुम चरण कमलगुण गाय। बहुविधि भक्ति करी मनलाय॥ जनम जनम प्रभु पाऊँ तोहि। यह सेवाफल दीजे मोहि॥ १॥ कृपा तिहारी ऐसी होय। जामन मरन मिटावो मोय॥ बार बार मैं विनती करूँ। तुम सेयां भवसागर तरूँ॥ २॥ नास होत सब दुख मिटजाय। तुमदर्शन प्रभु देख्यो आय॥ तुम हो प्रभु देवनके देव। मै तो करूँ चरण तव सेव॥ ३॥ मैं आयो पूजनके काज। मेरो जन्म सफल भयो आज। पूजाकरके नवाऊं सीस। मुझ अपराध छमहु जगदीस॥

दोहा—सुखदेना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान। मो गरीबकी वीनती, सुन लीज्यो भगवान॥ ५॥ पूजन करते देवकी, आदिमध्य अवसान। सुरगनके सुख

भोगकर, पावै मोक्ष निदान ॥ ६ ॥ जैसी महिमा विषै, और धरै नहिं कोय। जो सूरजमें जोति है, तारा गण नहिं सोय ॥ ७ ॥ नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिन माहिं पलाय। ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार शाय ॥ ८ ॥ बहुत प्रशंसा क्या करूं मैं प्रभु बहुत अजान। पूजाविधि जानों नहीं, सरन राखि भगवान ॥ ९ ॥ इति ॥

चतुर्थ अध्याय।

पर्वपूजा-संग्रह।

७१—सोलहकारण पूजा।

अडिल्ल—सोलहकारण भाय तीर्थंकर जे भये, हरषे इंद्र अपार मेरुपै ले गये। पूजाकरिनिजधन्यलख्यो बहुचावसौं, हमहू षोडशकारन भावैं भावसौं ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि। अत्र अवतरअवतर संवौषट्

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चौपाई-कंचनझारी निरमल नीर, पूजौं जिनवर गुनगंभीर।

परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो

दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकरपदपाय।

परमगुरु होय, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ १ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं नि०
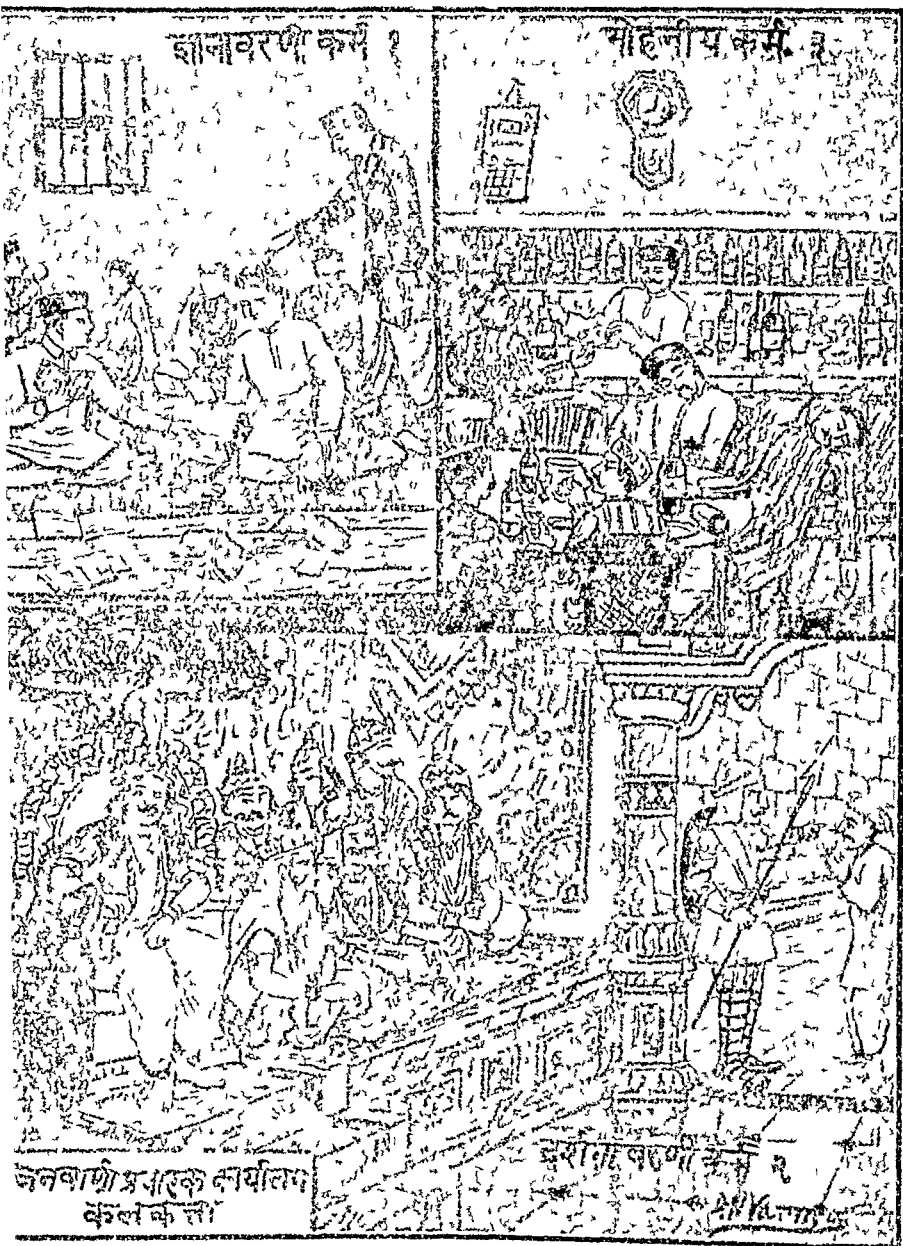
कर्म चित्रावली ।

पालै । सो औरनकी आपद टालै ॥ ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं । ताके मोहमहातम नाहीं ॥ ३॥ जो संवेगभाव विसतारै । सुरगमुकति पद आप निहारै ॥ दान देय मन हरप विशेखै । इह भव जस परभव सुख देखै ॥ ४ ॥ जो तप तपे खपै अभिलासा । चूरै करमशिखर गुरु भाषा । साधुसमाधि सदा मन लावै । तिहुंजगभोग भोगि शिव जावै ॥ ५ ॥ निशदिन वैयावृत्य करैया । सो निहचै भवनीर तरैया ॥ जो अरहंतभगति मन आनै । सो जन विषय कषाय न जानै ॥ ६ ॥ जो आचारज भगति करै है । सो निर्मल आचार धरै है ॥ बहुश्रुतवंत भगति जो करई । सो नर संपूरन श्रुत धरई ॥७॥ प्रवचनभगति करै जो ज्ञाता । लहै ज्ञान परमानँददाता ॥ षट्आवश्य काल जो साधै । सो ही रत्नत्रय आराधै ॥८॥ धरमप्रभाव करैं जे ज्ञानी । तिन शिवमारग रीति पिछानी ॥ वात्सल अंग सदा जो ध्यावै । सो तीर्थंकर पदवी पावै ॥ ९ ॥

दोहा—एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय ।
देव इंद्र नरवंद्यपद, 'द्यानत' शिवपद होय ॥१०॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्व० । (इत्याशीर्वादः)

७२—पंचमेरु पूजा ।

गीताछंद—तीर्थंकरोंके न्हवनजलतैं, भये तीरथ शर्मदा । तातैं प्रदच्छन देत सुरगन, पंचमेरुनकी सदा ॥

दो जलधि ढाईदीपमें सब, गनत मूल विराजहीं। पूजौं असी जिनधाम प्रतिमा, होहि सुख, दुख भाजहीं ॥१॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमा समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमा समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चौपाई—शीतलमिष्टसुवास मिलाय जलसौं पूजौं श्रीजिनराय। महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥ पांचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाको करों प्रणाम। महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ १ ॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जलं निर्व० ॥ १ ॥

जलकेशरकरपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय। महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पांचों०॥ चंदनं॥ अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं श्रीजिनराय महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पांचों०॥अ०॥ वरन अनेक रहे महकाय, फूलनसौं पूजौं श्रीजिनराय। महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पांचों०॥पुष्पं॥ मनवांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजौं श्रीजिनराय। महासुख होय, देखेनाथ परम सुख होय ॥पांचों०॥नैवेद्यं॥ तमहरउज्वल ज्योति जगाय, दीपसों पूजौं श्रीजिनराय। महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पांचों०॥दीपं॥ खेऊं अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजौं श्रीजिनराय।

महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पाचों०॥धूपं॥
सुरस सुवर्ण सुगंध सुहाय, फलसों पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पांचों०॥फलं॥
आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पांचों०॥अर्घं॥

अथ जयमाला।

सोरठा—प्रथम सुदर्शन स्वामि, विजय अचल मंदर कहा। विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जगमैं प्रगट॥१॥

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजै। चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन कर वंदना हमारी ॥ २ ॥ ऊपर पांचशतकपर सोहै, नंदनवन देखत मन मोहै ॥ चैत्यालय० ॥ ३ ॥ साढ़े बासठ सहस उंचाई, वन सुमनस सोभै अधिकाई ॥ चै० ॥ ४ ॥ ऊंचा योजन सहस छत्तीसं, पांडुकवन सोहै गिरिसीसं ॥ चै० ॥ ५ ॥ चारों मेरु समान बखानै, भूपर भद्रसाल चहुं जानै। चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥ ६ ॥ ऊंचे पांच शतकपर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे। चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥ ७ ॥ साढे पचपन सहस उतंगा, वन सौंमनस चार बहुरंगा ॥ चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥ ८ ॥ उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये। चैत्यालय

सोलह सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी ॥ ६ ॥
सुरनर चारन वंदन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावैं। चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥ १० ॥

दोहा—पंचमेरुकी आरती, पढै सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभू, तुरत महासुख होय ॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्व०

७३—श्रीनंदीश्वर पूजा।

अडिल्ल—सरब परबमें बड़ो अठाई परब है, नंदीश्वर सुर जाहिं लेय वसु दरब है। हमें सकति सो नाहिं इहां करि थापना, पूजैं जिनग्रह प्रतिमा है हित आपना ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिन प्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् । ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमा समूह । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपेद्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

कंचनमणिमय भृंगार, तीरथनीर भरा, तिहुं धार दयी, निरवार जामन मरन जरा। नंदीश्वरश्रीजिनधाम बावन पुंज करों। वसुदिन प्रतिमा अभिराम आनँद भावधरों ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवतपहर शीतल वास, सो चन्दन नाहीं,
प्रभु यह गुन कीजे सांच, आयो तुम ठांहीं ॥नंदी०॥चंदनं॥

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहैं,
सब जीतै अक्षसमाज, तुम सम अरु को है॥नंदी॥अक्षतान्॥
तुम कामविनाशकदेव, ध्याऊं फूलनसौं।
लहि शील लच्छमी एव, छूटूं सूलनसौं॥ नंदी०॥पुष्पं॥
नेवज इंद्रियबलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा॥ नंदी०॥नैवेद्यं॥
दीपककी ज्योति प्रकाश, तुम तनमाहिं लसै।
टूटै करमनकी राशि, ज्ञानकणी दरसै॥ नंदी० ॥दीपं॥
कृष्णागरुधूपसुवास, दशदिशिनार वरै।
अति हरषभाव परकाश, मानों नृत्य करै॥ नंदी० ॥धूपं॥
बहुविधफल ले तिहुंकाल, आनँद राचत हैं।
तुम शिवफल देहु दयाल, तो हम जाचत हैं॥नंदी०॥फलं
यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीनों शिवखेत,-भूपि समरपत हों॥नंदी०॥अर्घ्यं

अथ जयमाला।

दोहा—कार्तिक फागुन साढके अंत आठ दिन माहिं।
नंदीसुर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठाहिं॥ १ ॥

एकसौ त्रेसठ कोडि जोजन महा। लाख चौरासिया एक दिशमें लहा॥ आठमें द्वीप नंदीश्वरं भास्वरं। भौन बावन्न प्रतिमा नमौं सुखकरं॥ २॥ चारदिशि चार अंजनगिरी राजहीं। सहस चौरासिया एकदिश छाजहीं।
[illegible] ॥ भौन० ॥ ३ ॥ एक

इक चार दिशि चार शुभ बावरी। एक इक लाख जोजन अमल जलभरी। चहुंदिशा चार वन लाख जोजन वरं। भौन० ॥ ४ ॥ सोलवापीनमधि सोल गिरि दधिसुखं। सहस दश मह। जोजन लखत ही सुखं। बावरी कोन दोमांहिं दो रतिकरं। भौन० ॥ ५ ॥ शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे। चार सोलै मिले सर्व बावन लहे॥ एक इक शीसपर एकजिनमंदिरं। भौन० ॥ ६ ॥ बिंब वसु एकसौ रतनमइ सोहही, देवदेवी सरव नयनमन मोहही। पांचसै धनुष तन पद्म आसन परं। भौन० ॥ ७ ॥ लाल नख मुख नयन श्याम अरु स्वेत हैं, श्यामरंग भौंह सिरकेश छवि देत हैं॥ बचन बोलत मनो हँसत कालुषहरं। भौन० ॥ ८ ॥ कोटि शशि भानदुति तेज छिप जात है, महावैराग परिणाम ठहरात हैं। बयन नहिं कहैं लखि होत सम्यकधरं। भौन बावन प्रतिमा नमौं सुखकरं ॥ ९ ॥

सोरठा—नंदीश्वर जिनधाम, प्रतिमामहिमाको कहै,
'द्यानत' लीनों नाम, यहै भगति सब सुख करै॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशजिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

७४—दशलक्षणधर्म पूजा।

अडिल्ल—उत्तम छिमा मारदव आरजवभाव है। सत्य शौच संजम तप त्याग उपाव हैं॥ आकिंचन

ब्रह्मचरज धरम दश सार हैं। चहुंगति दुखतैं काढि मुकतिकरतार हैं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म । अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म । अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठ ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मे ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

सोरठा—हेमाचलकी धार, मुनिचित सम शीतल सुरभि।
भवआताप निवार, दसलच्छन पूजौं सदा ॥१॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवआर्जव सत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचनब्रह्मचर्यादिदशलक्षणधर्मेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

चंदन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा ।भव०।चंदनं।
अमल अखंडितसार, तंदुल चंद्रसमान शुभ ।भव०।अ०।
फूल अनेकप्रकार, महकैं ऊरधलोक लों ॥भव०॥ पुष्पं ॥
नेवज विविध निहार, उत्तम षटरससंजुतं । भव० ।नै०।
वाति कपूर सुधार, दीपकजोति सुहावनी ।भव० दीपं ॥
अगर धूप विस्तार, फैलै सर्व सुगंधता । भवआ० ॥धूपं॥
फलकी जाति अपार, घ्रान नयन मनमोहने ।भव०॥फलं॥
आठों दरव संवार, द्यानत अधिक उछाहसों ।भव०॥अर्घ्यं

अङ्ग पूजा ।

सोरठा—पीडैं दुष्ट अनेक, बांध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीता छन्द ।

उत्तमछिमा गहोरे भाई इहभव जस परभव सुखदाई ॥

गाली सुनि मन खेद न आनो गुनको औगुन कहै अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविधि करै।
घरतैं निकारै तन विदारै, बैर जो न तहां धरै ॥
तैं करम पूरव किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अतिक्रोधअगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा ॥

ओं ह्री उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

मान महाविषरूप, करहिं नीचगति जगतमें।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥ २ ॥
उत्तम मार्दवगुन मनमाना, मान करनकौ कौन ठिकाना।
वस्यो निगोदमाहितैं आया, दमरी रूँकन भाग विकाया ॥
रूकन विकाया भागवशतैं, देव इकइन्द्री भया।
उत्तम मुआ चांडाल हूवा, भूप कीडोंमें गया ॥
जीतव्य-जोवन-धनगुमान कहा करै जलबुदबुदा।
करि विनय बहुगुन बड़े जनकी ज्ञानका पावै उदा ॥

ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कपट न कीजै कोय, चोरनके पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा ॥
उत्तमआर्जवरीति बखानी, रञ्चक दगा बहुत दुखदानी।
मनमें हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तनसौं करिये।
करिये सरल तिहुँ जोग अपने, देखि निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपटप्रिति अंगारसी ॥

नहिं लहै लछमी अधिक छलकरि, करमबंध विशेषता
भय त्यागि दूध विलाव पीवै, आपदा नहिं देखता ॥
ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
कठिन वचन मति बोल, परनिंदा अरु झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जगमें सुखी ॥
उत्तम सत्यवरत पालीजै, परविश्वासघात नहिं कीजै ॥
सांचे झूठे मानुष देखो, आपनपूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचेको, दरब सब दीजिये।
मुनिराज श्रावककी प्रतिष्ठा, सांचगुण लख लिजिये ॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसुनृप, धरमका भूपति भया।
वसु झूठसेती नरक पहुंचा, सुरगमें नारद गया ॥
ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥
धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देहसौं।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसारमें ॥
उत्तम सौच सर्व जग जाना, लोभ पापको बाप बखाना ॥
आशापास महादुखदानी। सुख पावै संतोषी प्रानी ॥
प्रानी सदा शुचि शीलजपतप, ज्ञानध्यानप्रभावतैं।
नित गंगजमुन समुद्र न्हाये, अशुचिदोष सुभावतैं ॥
ऊपर अमल, मल भर्यो भीतर, कौन विध घट शुचि कहै ॥
बहु देह मैली सुगुनथैली, शौच गुन साधू लहै ॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
काय छहों प्रतिपाल, पंचेंद्री मन वश करी।

संजमरतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं ॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव भवके भाजैं अघ तेरे ॥
सुरग नरकपशुगतिमें नाहीं, आलसहरन करन सुख ठाहीं॥
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो ।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो ।
जिस विनानहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जगकीचमें ।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जममुख वीचमें ॥

ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय निर्वपामीति स्वाहा ।

तप चाहैं सुरराय, करमसिखरको वज्र है ।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम ॥
उत्तम तप सबमाहिं बखाना, करमशैलको वज्र समाना ॥
बस्यो अनादिनिगोद मंझारा, भूविकलत्रय पशुतन धारा ॥
धारा मनुषतन महादुर्लभ, सुकुल आव निरोगता ।
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषयपयोगता ॥
अति महादुरलभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं ।
नरभवअनूपमकनकघरपर, मणिमयी कलसा धरैं ॥

ओं ह्रीं उत्तमतपधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दान चार परकार, चारसंघको दीजिये ।
धन विजुली उनहार, नरभवलाहो लीजिये ॥ ८ ॥
उत्तमत्याग कह्यो जगसारा, औषध शास्त्र अभय आहारा ।
निहचै रागद्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान संभारै ॥
दोनों संभारै कूपजलसम, दरब घरमें परिनया ।

निजहाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया वह गया ॥
धनि साध शास्त्र अभयदिवैया, त्याग राग विरोधको ॥
विन दान श्रावक साध दोनों, लहैं नाहीं बोधको ॥८॥

ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिग्रह चौविस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसना भव उछेद, घटती जान घटाइए ॥ ६ ॥

उत्तम आकिंचन गुण जानै, परिग्रहचिंता दुख ही मानौ ॥
फांस तनकसी तनमें सालै, चाह लंगोटीकी दुख भालै॥
भालै न समता सुख कभी नर, विना मुनि मुद्रा धरैं।
धनि नगनपर तन-नगन ठाडे, सुर असुर पायनि परैं ॥
घरमाहिं तिसना जो घटावै, रुचि नहीं संसारसों।
बहुधन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगारसौं ॥६॥

ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

शीलबाड़ नौ राख, ब्रह्मभाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सुफल नरभव सदा ॥१०॥

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ ॥
सहैं वानवरषा बहु सूरे। टिकैं न नैन वान लखि कूरे ॥
कूरे तियाके अशुचितनमें, कामरोगी रति करै।
बहु मृतक सड़हिं मसानमाहीं, काक ज्यों चौंचैं भरै।
संसारमें विषबेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरमदशपैडि चढ़िकैं, शिवमहलमें पग धरा ॥

ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ समुच्चय जयमाला।

दोहा—दशलच्छन वंदौं सदा, मनवांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हमपर होहु सहाय॥ १॥

वेसरी छंद—उत्तमछिमा जहां मन होई, अंतरबाहिर शत्रु न कोई। उत्तममार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासै॥ २॥ उत्तमआर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै। उत्तम सत्य वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै॥३॥ उत्तमशौच लोभ परिहारी, संतोषी गुणरतनभंडारी। उत्तमसंयम पालै ज्ञाता, नरभव सफल करै ले साता॥ ४॥ उत्तमतप निरवांछित पालै, सो नर करमशत्रुको टालै। उत्तमत्याग करै जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिव सुख होई॥५॥ उत्तमआकिंचनव्रत धारै, परमसमाधि दशा विसतारै। उत्तमब्रह्मचर्य मन लावै, नरसुरसहित मुक्तिफल पावै॥६॥

दोहा—करै करमकी निरजरा, भवपींजरा, विनाशि।
अजर अमरपदको लहै, 'द्यानत' सुखकी राशि॥७॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचनब्रह्मचर्यदशलक्षणधर्माय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

७५—रत्नत्रय पूजा।

दोहा—चहुंगतिफनिविषहरनमणि, दुखपावक जलधार।
शिवसुखसुधासरोवरी, सम्यकत्रयी निहार॥ १॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठ।

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सोरठा—क्षीरोदधि उनहार, उज्वल जल अति सोहनो।
जनमरोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजूं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय जन्मरोगविनाशाय जलं निर्णपामीति स्वाहा।

चंदन केसर गारि, परिमल महासुरंगमय। जन्म०॥चं०
तंदुल अमल चितार, वासमती सुखदासके।जन्म०॥अ०
महकैं फूल अपार, अलि गुंजैं ज्यों थुति करैं।जन्म०॥पु०
लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत ॥जन्म॥नै०॥
दीपरतनमय सार, जोत प्रकाशैं जगतमें ॥जन्म०॥दीपं॥
धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूरकी ॥जन्म॥ धूपं ॥
फल शोभा अधिकार, लौंग छुहारे जायफल।जन्म०।फलं
आठदरब निरधार, उत्तमसों उत्तम लिये ॥जन्म०॥अर्घ्यं॥
सम्यकदरशनज्ञान, व्रत शिवमग तीनों मयी।
पार उतारन जान, 'द्यानत' पूजों व्रतसहित ॥ १० ॥

७६—दर्शन पूजा।

दोहा—सिद्ध अष्टगुनमय प्रगट, मुक्तजीवसोपान।
जिहबिन ज्ञानचरित अफल, सम्यकदर्श प्रधान ॥१॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन। अत्रावतर अवतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सोरठा—नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जल केसर घनसार, ताप हरै सीतल करै।सम्य०।चंदनं।
अछत अनूप निहार, दारिद नासै सुख भरै।सम्य०।अ०
पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।सम्य०।।पुष्पं।।
नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै।सम्य०।नै०।।
दीपज्योति तमहार, घटपट परकासै महा।।सम्य०।।दीपं।।
धूप घ्रानसुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।।सम्य०।।धूपं।।
श्रीफलआदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै।स०।फलं।
जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फलफूल चरु।सम्य० अर्घं

अथ जयमाला।

दोहा—आप आप निहचै लखै, तत्त्वप्रीति व्योहार।
रहितदोष पच्चीस है, सहित अष्ट गुन सार ॥१॥

चौपाई मिश्रित गीताछन्द।

सम्यकदरशन रतन गहीजे। जिनवचमें संदेह न कीजे।
इहभव विभवचाह दुखदानी। परभवभोग चहै मत प्रानी॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरमगुरुप्रभु परखिये।
परदोष ढकिये धरम डिगतेको, सुथिर कर हरखिये॥
चहुसंघको वात्सल्य कीजे, धरमकी परभावना।
गुन आठसों गुन आठ लहिकैं, इहां फेर न आवना॥२॥

ओं ह्रीं अष्टांगसहितपञ्चविंशतिदोषरहिताय सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं०

७७—ज्ञान पूजा।

दोहा—पंचभेद जाके प्रगट, ज्ञेयप्रकाशन भान।
मोह-तपन-हर-चन्द्रमा, सोई सम्यकज्ञान ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठः ।
ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

सोरठा—नीरसुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै ।
सम्यकज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जलकेसर घनसार, ताप हरै शीतल करै, सम्य० ।चान्दनं॥
अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै, ।सम्य०॥अ०
पुहुपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै। सम्य०॥पुष्पं॥
नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै, सम्य०॥नै०
दीप ज्योति तमहार, घटपट परकाशै महा, सम्य० ॥दीपं॥
धूप घ्रानसुखकार, रोग विघन जडता हरै, सम्य० ॥धूपं॥
श्रीफल आदिविथार, निहचै सुरशिवफल करै, सम्य० फ०
जल गंधाक्षत चारु दीप धूप फल फूल चारु। सम्य०अर्घ्यं

अथ जयमाला ।

दोहा—आप आप जानै नियत, ग्रंथपठन व्योहार ।
संशय विभ्रम मोह विन, अष्टअंग गुनकार ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीताछन्द ।

सम्यकज्ञान रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया ।
अच्छर शुद्ध अरथ पहिचानो, अच्छर अरथ उभय संग जानौं
जानौं सुकालपठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये ।
तपरीति गहि बहु मान देकैं, विनय [illegible]

ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पन देखना।
इस ज्ञानहीसों भरत सीझा, और सब पटपेखना ॥२॥
ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

७८—चारित्र पूजा।

दोहा–विषयरोग औषध महा, दवकषायजलधार।
तीर्थंकर जाकौं धरैं, सम्यकचारितसार ॥१॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र। अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सोरठा–नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै।
सम्यकचारितसार, तेरहविध पूजौं सदा जलं ॥
जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै। सम्य०॥चं०॥
अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।सम्य०॥अ०॥
पहुपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।सम्य०॥पुष्पं॥
नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै। सम्य०॥नै०॥
दीपजोति तमहार, घटपट परकाशै महा। सम्य०॥दीपं॥
धूप घ्रान सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।सम्य०॥धूपं॥
श्रीफल आदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै।स०॥फलं॥
जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।सम्य०॥अर्घ॥

अथ जयमाला।

दोहा—आप आप थिर नियत नय, तपसंजम व्योहार।
स्वपर दया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार ॥ १ ॥
सम्यकचारित रतन संभालौ, पांच पाप तजिकैं व्रत पालौ

पंचसमिति त्रयगुपति गहीजै, नरभव सफल करहु तनछीजै
छीजै सदा तनको जतन यह, एक संजम पालिये।
बहु रुल्यो नरक निगोदमाहीं, कषायविषयनि टालिये।
शुभकरम जोग सुघाट आया, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरमकी नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३॥

अथ समुच्चय जयमाला।

दोहा—सम्यकदरशन-ज्ञान-व्रत, इन विन मुक्ति न होय।
अंध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दव-लोय ॥१॥

चौपाई—तापै ध्यान सुथिर बन आवै। ताके करम-बंध कट जावै। तासों शिवतिय प्रीति बढ़ावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥ २ ॥ ताको चहुंगतिके दुख नाहीं। सो न परै भवसागरमाहीं ॥ जनमजरामृतु दोष मिटावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥ ३॥ सोई दशलच्छनको साधै। सो सोलह कारण आराधै ॥ सो परमातम-पद उपजावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥ ४ ॥ सोई शक्रचक्रिपद लेई। तीनलोकके सुख विलसेई ॥ सो रागादिक भाव बहावै। जोसम्यकरतनत्रय ध्यावै सोई लोकालोक निहारै परमानंददशा विसतारै ॥ आप तिरै औरन तिरवावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥

दोहा—एकस्वरूपप्रकाश निज, बचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत'को सुखदाय ॥

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

७९–संस्कृत स्वयंभूस्तोत्र।

येन स्वयंबोधमयेन लोका आश्वासिता केचन वित्तकार्ये।
प्रबोधिता केचन मोक्षमार्गे तमादिनाथं प्रणमामि नित्यम्॥
इन्द्रादिभिः क्षीरसमुद्रतोयैः संस्नापितो मेरुगिरौ जिनेंद्रः।
यः कामजेता जनसौख्यकारी तं शुद्धभावादजितं नमामि॥
ध्यानप्रबंधप्रभवेन येन निहत्य कर्मप्रकृतीः समस्ताः।
मुक्तिस्वरूपां पदवीं प्रपेदे तं संभवं नौमि महानुरागात्
स्वप्ने यदीया जननी क्षपायां गजादिवह्न्यं तमिदं ददर्श। यत्तात इत्याह गुरुः परोऽयं नौमि प्रमोदादभिनंदनं तम्॥ कुवादिवादं जयता महांतं नयप्रमाणैर्वचनैर्जगत्सु। जैनं मतं विस्तिरितं च येन तं देवदेवं सुमतिं नमामि॥५॥ यस्यावतारे सति पितृधिष्ण्ये ववर्ष रत्नानि हरेर्निदेशात्। धनाधिपः षण्णवमासपूर्वं पद्मप्रभं तं प्रणमामि साधुं॥६॥ नरेन्द्रसर्पेश्वरनाकनाथैर्वाणी भवती जगृहे स्वचित्ते। यस्यात्मबोधः प्रथितः सभायामहं सुपार्श्वं ननु तं नमामि॥ सत्प्रातिहार्यातिशयप्रपन्नो गुणप्रवीणो हतदोषसंगः। यो लोकमोहांधतमः प्रदीपश्चन्द्रप्रभं तं प्रणमामि भावात्॥८॥ गुप्तित्रयं पंच महाव्रतानि पंचोपदिष्टा समितिश्च येन। बभाण यो द्वादशधा तपांसि तं पुष्पदंतं प्रणमामि देवं॥९॥ वृक्षवृतांतो जिननायकेनोत्तमक्षमादिर्दशधापि धर्मः। येन प्रयुक्तो व्रतबंधबुद्ध्या तं शीतलं तीर्थकर

नमामि ॥ १० ॥ गणे जनानंदकरे धरांते विध्वस्तकोपे प्रशमैकचित्तं । यो द्वादशांगं श्रुतमादिदेश श्रेयांसमानौमि जिनं तमीशं ॥ ११ ॥ मुक्त्यंगनाया रचिता विशाला रत्नत्रयीशेखरता च येन । यत्कंठमासाद्य बभूव श्रेष्ठा तं वासुपूज्यं प्रणमामि वेगात् ॥ ज्ञानी विवेकी परमस्वरूपी ध्यानी व्रती प्राणिहितोपदेशी । मिथ्यात्वघाती शिवसौख्यभोजी बभूव यस्तं विमलं नमामि ॥ आभ्यंतरं बाह्यमनेकधा यः परिग्रहं सर्वमपाचकार । यो मार्गमुद्दिश्य हितं जनानां वन्दे जिनं तं प्रणमाम्यनंतं ॥ सार्द्धं पदार्था नव सप्ततत्त्वैः पंचास्तिकायाश्च न कालकायाः । षड्द्रव्यनिर्णीतिरलोकयुक्तिर्येनोदिता तं प्रणमामि धर्मम् ॥ यश्चक्रवर्ती भुवि पंचमोऽभूच्छ्रीनंदनो द्वादशको गुणानां निधिप्रभुः षोडशको जिनेंद्रस्तं शांतिनाथं प्रणमामि भेदात् ॥ प्रशंसितो यो न बिभर्ति हर्षं विराधितो यो न करोतिरोषं । शीलव्रताद् ब्रह्मपदं गतो यस्तं कुन्थुनाथं प्रणमामि हर्षात् ॥ यः संस्तुतो यः प्रणतः सभायां यः सेवितोन्तर्गणपूरणाय । पदच्युतैः केवलिभिर्जिनस्य देवाधिदेवं प्रणमाम्यरं तम् ॥ रत्नत्रयं पूर्वभवांतरे यो व्रतं पवित्रंकृतवानशेषं । कायेन वाचा मनसा विशुद्ध्या, तं मल्लिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥ ब्रुवन्नमः सिद्धिपदाय [illegible],-[illegible]: स्वयमेव लोचं । लौकांतिकेभ्यः [illegible], वन्दे जिनेशं मुनिसुव्रतं तं ॥ विद्यावतं

तीर्थंङ्कराय तस्मा, याहारदानं ददतो विशेषात् ॥ गृहे नृपस्याजनिरत्नवृष्टिः, स्तौमि प्रणामान्नयतो नमिं तम् ॥ राजीमतीं यः प्रविहाय मोक्षे, स्थितिं चकारापुनरागमाय। सर्वेषु जीवेषु दयां दधान,-स्तं नेमिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥ सर्पाधिराजः कमठारितोयै,-र्ध्यानस्थितस्यैव फणावितानैः। यस्योपसर्गं निरवर्तयत्तं, नमामि पार्श्वं महतादरेण॥ भवार्णवे जंतुसमूहमेन,-माकर्षयामास हि धर्मपोतात्। मज्जंतमुद्वीक्ष्य य एनसापि, श्रीवर्द्धमानं प्रणमाम्यहं तं ॥ यो धर्म दशधा करोति पुरुषः स्त्री वा कृतोपस्कृतं, सर्वज्ञध्वनिसम्भवं त्रिकरणव्यापारशुद्ध्या-निशं। भव्यानां जयमालया विमलया पुष्पांजलिं दापय-न्नित्यं संश्रियमातनोति सकलं स्वर्गापवर्गस्थितिं ॥

८०—स्वयंभूस्तोत्र भाषा।

चौपाई--राजविषै जुगलनि सुख कियो। राज त्याग भवि शिवपद लियो ॥ स्वयंबोध स्वयंभू भगवान। वंदौं आदिनाथ गुणखान ॥ १ ॥ इन्द्र छीरसागरजल लाय। मेरु न्हवाये गाय बजाय ॥ मदनविनाशक सुखकरतार। वन्दौं अजित अजितपदकार ॥ शुकलध्यानकरि करमवि-नाशि। घाति अघाति सकल दुखराशि ॥ लह्यो मुक-तिपदसुख अधिकार। वन्दौं संभव भवदुखटार ॥ २ ॥ माता पच्छिम रयनमँझार। सुपने सोलह देखे सार ॥ भूप पूछि फल सुनि हरषाय। वंदौं अभिनन्दन मनलाय

॥ ४ ॥ सब कुवादवादी सरदार । जीते स्यादवादधुनि-
धार ॥ जैनधरमपरकाशक स्वामि । सुमतिदेवपद करहुं
प्रानमि ॥ ५ ॥ गर्भ अगाऊ धनपति आय । करी नगर
शोभा अधिकाय ॥ बरसे रतन पंचदश मास । नमौं
पदमप्रभु सुखकी रास ॥ ६ ॥ इन्द फनिंद्र नरिंद्र
त्रिकाल । बानी सुनि सुनि होंहिं खुस्याल ॥ द्वादशसभा
ज्ञानदातार । नमौं सुपारसनाथ निहार ॥ ७ ॥ सुगुन
छियालिस हैं तुममाहिं । दोष अठारह कोऊ नाहिं ॥
मोहमहातमनाशक दीप । नमौं चंद्रप्रभ राख समीप
॥ ८ ॥ द्वादशविधि तप करम विनाश । तेरहभेद चरित
परकाश ॥ निज अनिच्छ भवि इच्छकदान । वंदौं पुहुप-
दंत मन आन ॥९॥ भविसुखदाय सुरगतैं आय । दश-
विध धरम कह्यो जिनराय ॥ आप समान सबनि सुख
देह । वंदौं शीतल धर्म सनेह ॥१०॥ समता सुधा कोपवि-
षनाश । द्वादशांगवानी परकाश ॥ चारसंघ आनँददातार
नमौं श्रियांस जिनेश्वर सार ॥ ११ ॥ रतनत्रयचिरमु-
कुटविशाल । सोभै कंठ सुगुन मनिमाल ॥ मुक्तिनार
भरता भगवान । वासुपूज वंदौं धर ध्यान ॥ १२ ॥ परम
समाधिस्वरूप जिनेश । ज्ञानी ध्यानी हित उपदेश ॥
कर्मनाशि शिवसुख विलसंत । वंदौं विमलनाथ भग-
वंत ॥ अन्तर बाहिर परिग्रह डारि । परमदिगम्बरव्र-
[illegible] । नमौं अनंत

वचनमनलाय ॥१४॥ साततत्त्व पंचासतिकाय । अरथ नवौं
छदरब बहु भाय ॥१५॥ लोक अलोक सकल परकास । बन्दौं
धर्मनाथ अविनाश ॥ पंचम चक्रवरति निधिभोग । काम-
देव द्वादशम मनोग ॥ शांतिकरन सोलम जिनराय ।
शांतिनाथ बंदौं हरषाय ॥१६॥ बहुथुति करै हरष नहिं होय
निंदे दोष गहैं नहिं कोय ॥ शीलवान परब्रह्मस्वरूप ।
बन्दौं कुंथुनाथ शिवभूप ॥ १७ ॥ द्वादशगण पूजे सुख-
दाय । थुतिबन्दना करै अधिकाय ॥ जाकी निजथुति
कबहुं न होय । बन्दौं अरजिनवर पद दोय ॥ १८ ॥
परभव रतनत्रय-अनुराग । इहभव व्याहसमय वैराग ॥
बालब्रह्मपूरनब्रतधार । बन्दौं मल्लिनाथ जिनसार ॥१६॥
विन उपदेश स्वयं वैराग । थुति लौकांत करैं पगलाग ॥
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं । बंदौं मुनिसुव्रत व्रत
देहिं ॥ २० ॥ श्रावक विद्यावन्त निहार । भगतिभावसों
दियो अहार ॥ बरसे रतनराशि ततकाल । बन्दौं
नमिप्रभु दीनदयाल ॥२१॥ सब जीवनकी बन्दी छोर ।
रागद्वेष द्वै बन्धन तोर ॥ रजमति तजि शिवतियसों
मिले । नेमिनाथ बन्दौं सुखनिले ॥ २२ ॥ दैत्य कियो
उपसर्ग अपार । ध्यान देखि आयो फनिधार ॥ गयो
कमठ शठ मुखकर श्याम । नमौं मेरुसम पारसस्वाम
॥२३॥ भवसागरतैं जीव अपार । धरमपोतनें धरेनिहार ॥
डूबत काढ़े दया विचार । वर्द्धमान बंदौं बहुबार ॥२४॥

दोहा—चौवीसों पदकमलजुग, वंदौं मनवचकाय।
'द्यानत' पढ़े सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥

८१—देवपूजा भाषा।

दोहा—प्रभु तुम राजा जगतके, हमें देय दुख मोह।
तुम-पद-पूजा करत हूँ, हमपै करुणा होहि ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोपरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं अष्टादशदोपरहितषट्चत्वारिंसद्गुण सहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्। अत्र तिष्ट तिष्ट। ठः ठः। ओं ह्रीं अष्टादशदोप-रहित षट्चत्वारिंसद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

बहु तृषा सतायो, अति दुख पायो, तुमपै आयो जल लायो। उत्तम गंगाजल, शुचि अतिशीतल प्राशुक निर्मल गुनगायो॥ प्रभु अन्तरजामी, त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो। यह अरज सुनीजै, ढील न कीजै, न्याय करीजै दया धरो॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोपरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेभ्यो जलं नि०।

अघ तपत निरन्तर, अगनिपटन्तर, मो उर अन्तर खेद कस्यो। लै बावन चन्दन, दाहनिकन्दन, तुमपद-वन्दन हरष धस्यो॥ प्रभु०॥ चंदनं॥ २॥

औगुन दुखदाता, कह्यो न जाता, मोहि असाता बहुत करै। तन्दुल गुनमंडित, अमल अखंडित, पूजत पंडित, प्रीति धरै॥ प्रभु०॥ अक्षतान्॥ ३॥

सुरनरपशुको दल, काम महाबल, बात कहत छल मोह लिया। ताकेशर लाऊं, फूल चढ़ाऊं, भक्ति बढाऊं, खोल हिया ॥ प्रभु० ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥

सब दोषनमाहीं, जासम नाहीं, भूख सदाही, मो लागै। सद घेवर बाबर, लाडू बहुतर, थार कनक भर, तुम आगै ॥ प्रभु० ॥ नैवेद्यं ॥ ५ ॥

अज्ञान महातम, छाय रह्यो मम, ज्ञान ढक्यो हम दुख पावैं। तम मेटनहारा, तेज अपारा, दीप संवारा, जस गावैं ॥ प्रभु० ॥ दीपं ॥ ६ ॥

इह कर्म महावन, भूल रह्यो जन, शिवमारग नाहिं पावत है। कृष्णागरधूपं, अमलअनूपं, सिद्धस्वरूपं ध्यावत है ॥ प्रभु० ॥ धूपं ॥ ७ ॥

सबसैं जोरावर, अन्तराय अरि, सुफल विघ्नकरि डारत हैं। फलपुंज विविध भर, नयन मनोहर, श्रीजिनवरपद धारत हैं ॥ प्रभु० ॥ फलं ॥ ८ ॥

आठों दुखदानी, आठनिशानी, तुम ढिग आनि निवारन हो। दीननिस्तारन, अधम उधारन, 'द्यानत' तारन, कारन हो ॥ प्रभु० ॥ अर्घं ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा—गुण अनन्तको कहि सकै, छियालीस जिनराय।
प्रगट सुगुन गिनती कहूँ, तुम ही होहु सहाय ॥१॥

चौपाई—एक ज्ञान केवल जिनस्वामी। दो आगम

अध्यातम नामी ॥ तीन काल विधि परगट जानी । चार अनन्त चतुष्टय ज्ञानी ॥ २ ॥ पंच परावर्तन परकासी । छहों दरबगुनपरजयभासी ॥ सातभंगवानी-परकाशक । आठों कर्म महारिपुनाशक ॥ ३ ॥ नवतत्त्वनके भाखन-हारे । दशलक्षनसों भविजनतारे ॥ ग्यारह प्रतिमाके उपदेशी । बारह सभा सुखी अकलेशी ॥ ४ ॥ तेरहविध चारितके दाता । चौदह मारगनाके ज्ञाता । पन्द्रह भेद प्रमाद निवारी । सोलह भावन फल अविकारी ॥ ५ ॥ तारे सत्रह अङ्क भरत भुव । ठारै थान दान दाता तुव ॥ भाव उनीस जु कहे प्रथम गुन । बीस अङ्क गणधरजी की धुन ॥ ६ ॥ इक इस सर्वघातविधि जानै । बाइस वंध नवम गुणथानै ॥ तेइस विधि अरु रतन नरेश्वर । सो पूजै चौबीस जिनेश्वर ॥ ७ ॥ नाश पचीस कषाय करी हैं । देशघाति छव्वीस हरी हैं ॥ तत्त्व दरब सत्ता-इस देखे । मति विज्ञान अठाइस पेखे ॥ ८ ॥ उनतिस अङ्क मनुष सब जाने । तीस कुलाचल सर्व बखाने । इकतिस पटल सुधर्म निहारे । बत्तिस दोष समायिक टारे ॥ ९ ॥ तेतिस सागर सुखकर आये । चौंतिस भेद अलब्धि बताये ॥ पैंतिस अच्छर जप सुखदाई । छत्तिस कारन रीति सिटाई ॥ १० ॥ सैंतिस मग कहि ग्यारह गुनमें । अड़तिस पद लहि नरक अपुनमें ॥ उनतालीस उदीरन तेरम । चालिस भवन इन्द्र पूजैं नम ॥ ११ ॥

इकतालीस भेद आराधन। उदै बियालिस तीर्थंकर भन ॥ तेतालीस बंध ज्ञाता नहिं। द्वार चवालिस नर चौथेमहिं ॥ १२ ॥ पैंतालीस पल्यके अच्छर। छियालीस बिन दोष मुनीश्वर ॥ नरक उदै न छियालिस मुनि धुनि प्रकृति छ्यालिश नाश दशमगुन ॥ १३ ॥ छियालीस घन राजु सात भुव अङ्क छियालीस सरसों कहि ध्रुव। भेद छियालीस अंतर तपवर छियालीसपूरन गुन जिनवर ॥ १४ ॥

अडिल्ल—मिथ्या तपन निवारनचन्द समान हो। मोहतिमिर वारनको कारनभानु हो ॥ कामकपाय मिटावन मेघ मुनीश हो। 'द्यानत' सम्यकरतनत्रय गुनईश हो ॥ १५ ॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्रेभ्यः पूर्णार्घं०।

८२—गुरुपूजा।

दोहा—चहुंगति दुखसागरविषैं, तारनतरन जिहाज।
रतनत्रयनिधि नगन तन, धन्य महा मुनिराज ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह। अत्रावतर अवतर! संवौषट्।
ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह। अत्र मम सन्निहितो भव २ वषट्

शुचि नीर निर्मल छीरदधिसम, सुगुरु चरन चढाइया। तिहुंधार तिहुं गतिटार स्वामी, अति उछाह बढाइया ॥ भवभोगतनवैराग्य धार, निहार शिवतप तपत

हैं। तिहुं जगतनाथ अराध साधु सु, पूज नित गुन जपत हैं॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो जन्ममृत्यु विनाशनाय जलं॥

करपूर चंदन सलिलसौं घसि, सुगुरुपद पूजा करौं। सब पापताप मिटाय स्वामी, धरम शीतल विस्तरौं॥ भवभोग० ॥ २॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं० ॥ २॥

तन्दुल कमोद सुवास उज्जल, सुगुरुपगतर धरत हैं। गुनकार औगुनहार स्वामी, वंदना हम करत हैं॥ भवभोग० ॥ ३॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि०॥

शुभफूलरासप्रकाश परिमल, सुगुरु पायनि परत हों। निरवार मारउपाधि स्वामी, शील दृढ़ उर धरत हों॥ भवभोग० ॥ ४॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्य. कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं॥ ४॥

पकवान मिष्ट सलौन सुन्दर, सुगुरु पयानि प्रीति सौं। धर छुधारोग विनाश स्वामी, सुथिर कीजे रीति सौं॥ भवभोग० ॥ ५॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं० ॥ ५॥

दीपकउदोत सजोत जगमग, सुगुरुपद पूजों सदा। तमनाश ज्ञानउजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं० ॥

बहु अगर आदि सुगंध खेऊँ, सगुण पद पद्महिं खरे। दुख पुंजकाठ जलाय स्वामी, गुण अछय चितमैं धरे ॥ भवभोग० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि० ॥ ७ ॥

भर थार पूग बदाम बहुविध, सुगुरुक्रम आगैं धरों मंगल महाफल करो स्वामी, जोर कर विनती करों ॥ भवभोग० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल नि० ॥ ८ ॥

जल गंध अक्षत फूलनेवज, दीप धूप फलावली। द्यानत सुगुरुपद देहु स्वामी, हमहिं तार उतावली ॥ भवभोग० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा--कनककामिनीविषयवश, दीसै सब संसार।
त्यागी बैरागी महा, साधुसुगुनभंडार ॥ १ ॥
तीन घाटि नवकोड सब, बंदौं सीस नवाय। गुन तिन अट्ठाईस लों कहूं आरती गाय ॥ २ ॥

एक दया पालैं मुनिराजा रागदोष द्वै हरन परं। तीनोंलोक प्रगट सब देखैं, चारौं आराधन निकरं ॥ पंच महाव्रत दुद्धर धारैं, छहों दरब जानै सुहितं। सप्त भंग-वानी मन लावैं, पावै आठ रिद्ध उचितं ॥३॥ नवों पदारथ

विधिसौं भाखैं, बंध दशौं चूरन शरनं। ग्यारह शांकर जानैं मानैं, उत्तम बारह व्रत धरनं॥ तेरह भेद काठिया चूरं, चोदह गुनथानक लखियं। महाप्रमाद पंचदश नाशौं, सोलकषाय सबै नषियं॥ ४॥ बंधादिक सत्रह सब चूरैं, ठारह जन्मन मरन मुनं। एक समय उनईस परीषह, बीस प्ररूपनिमें निपुणं॥ भाव उदीक इकीसों जनैं, बाइस अभखन त्याग करं। अहिमिंदर तेईसों बंदैं, इन्द्र सुरग चोवीस वरं॥ ५॥ पच्चीसों भावन नित भावैं, छब्बिस अंग उपंग पढ़ैं। सात्तईसों विषय विनाशैं, अट्ठाईसों गुण सु बढ़ैं। शीत समय सर चौपटवासी, ग्रीषम गिरिशिर जोग धरैं। वर्षा वृक्ष तरैं थिर ठाढ़ैं, आठ करम हनि सिद्ध वरैं॥ ६॥

दोहा--कहौं कहालों भेद मैं, बुध थोरी गुन भूर।
'हेमराज' सेवक हृदय, भक्ति करो भरपूर॥ ७॥

ओं ह्रीं आचर्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

८३—सरस्वती पूजा।

दोहा—जनमजरामृतु छय करै, हरै कुनय जडरीति।
भवसागरसों ले तिरै, पूजै जिनवचप्रीति॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि। अत्र अवतर अवतर। वौषट्।
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि। अत्र मम सन्निहितो भव २ वषट्

छीरोदधिगंगा, विमल तरंग, सलिल अभंग, सुख-

संगा। भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषानिवारी, हित चंगा॥ तीर्थंकरकी धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञानमई। सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी, पूज्य भई॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वती देव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

करपूर मँगायचंदन आया, केशर लाया, रंग भरी। शारदपद बन्दों, मन अभिनंदों, पाप निकंदों दाह हरी॥ तीर्थ०॥ चंदनं॥ २॥

सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं चंद-समं। बहु भक्ति बढाई, कीरति गाई होहु सहाई, मात ममं। तीर्थ०॥ अक्षतान्॥ ३॥

बहुफूल सुवासं, विमलप्रकाशं, अनँदरासं, लाय धरे। मम काम मिटायो, शील बढायो, सुखउपजायौ दोष हरे॥ तीर्थ०॥ पुष्पं॥ ४॥

पकवान बनाया, बहुघृत लाया सब विधि भाया, मिष्ट महा। पूजूँ थुतिगाऊँ, प्रीति बढाऊँ, क्षुधा नशाऊँ, हर्ष लहा॥ तीर्थ०॥ नैवेद्यं॥ ५॥

करि दीपक-जोतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं, तुमहिं चढै। तुम हो परकाशक, भरमविनाशक हम घट भासक, ज्ञान बढै॥ तीर्थंकर०॥ दीपं०॥ ६॥

शुभगंध दशोंकर, पावकमैं धर, धूप मनोहर खेवत

हैं। सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं, सेवत हैं॥ तिर्थंकरकी० ॥ धूपं० ॥ ७ ॥

बादाम छुहारी, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं। मनवांछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता, ध्यावत हैं॥ तीर्थंकरकी० ॥ फलं ॥ ८ ॥

नयननसुखकारी, मृदुगुनधारी, उज्ज्वलभारी, मोल धरैं। शुभगंधसम्हारा, बसननिहारा, तुमतर धारा ज्ञान करैं॥ तीर्थंकरकी० ॥ वस्त्रम् ॥ ६ ॥

जलचन्दन अच्छत, फूल चरू चत, दीप धूप अति फल लावैं। पूजाको ठानत, जो तुम जानत, सो नर 'द्यानत' सुख पावैं॥ तीर्थंकरकी० ॥ अर्घं ॥ ६ ॥

अथ जयमाला।

सोरठा—ओंकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै॥

पहला आचारांग बखानो। पद अष्टादश सहस प्रमानो। दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं। पद छत्तीस सहस गुरु भाषं॥ तीजा ठाना अंग सुजानं। सहस वियालिस पदसरधानं॥ चौथा समवायांग निहारं। चौसठ सहस लाख इकधारं ॥ २ ॥ पंचम व्याख्याप्रज्ञपति दरसं। दोय लाख अट्ठाइस सहसं॥ छट्ठो ज्ञातृकथा विसतारं। पांच लाख छप्पन हजारं॥ ३ ॥ सप्तम उपासकाध्यानंगं। सत्तर सहस ग्यारलख भंगं। अष्टम अंतकृतं दस ईसं।

कर्म चित्रावली ।

सहस, अठाइस लाखतेईसं ॥ ४ ॥ नवम अनुत्तरदश सुविशालं । लाख बानवै सहस चवालं । दशम प्रश्न-व्याकरण विचारं । लाख तिरानव सोल हजारं ॥ ५ ॥ ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं ॥ चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं । दो हजार सब पद गुरु-शाखं ॥ ६ ॥ द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं । इकसौ आठ कोडि पन वेदं ॥ अड़सट लाख सहस छप्पन हैं । सहित पंचपद मिथ्या हन हैं ॥७॥ इकसौ बारह कोडि बखानो । लाख तिरासी ऊपर जानो ॥ ठावन सहस पंच अधि-काने । द्वादश अंग सर्व पद माने ॥ ८ ॥ कोडि इकावन आठहि लाखं । सहस चुरासी छहसौ भाखं ॥ साढ़े-इकीस सिलोक बताये । एक एक पदके ये गाये ॥ ९ ॥

घत्ता—जा बानीके ज्ञानमैं, सूझै लोक अलोक ।
'द्यानत' जग जयवंत हो, सदा देत हों धोक ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

८४—अकृत्रिम चैत्यालय पूजा ।

आठ किरोड़ रु छप्पन लाख । सहस सत्यावण चतुशत भाख । जोड़ इक्यासी जिनवर थान । तीनलोक आह्वान करान ॥ १ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्र अवतर अवतरत । संवौषट् । ओं ह्रीं त्रैलोक्य-संबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्या-

लमयानि अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिपट्पश्चा-शल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतु:शतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

क्षीरोदधिनीरं उज्ज्वल सीरं, छान सुचीरं, भरि झारी । अति मधुर लखावन, परम सु पावन, तृषा वुझावन, गुण भारी ॥ वसुकोटि सु छप्पन लाख संत्ताणव, सहस चारशत इक्यासी । जिनगेह अकीर्तिम तिहुंजगभीतर, पूजत पद ले अविनाशी ॥ १ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिपट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतु:शतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

मलयागर पावन, चंदन बावन, तापवुझावन घसि लीनो । धरि कनक कटोरी द्वै करजोरी, तुमपद ओरी चित दीनो ॥ वसु० ॥ चंदनं ॥ २ ॥

बहुभांति अनोखे, तंदुल चोखे, लखि निरदोखे, हम लीने । धरि कंचनथाली, तुमगुणमाली, पुञ्जविशाली, कर दीने ॥ वसु० ॥ अक्षतान् ॥ ३ ॥

शुभ पुष्प सुजाती है बहुभांती, अलि लिपटाती लेय वरं । धरि कनकरकेवी, करगह लेवी, तुमपद जुगकी भेट धरं ॥ वसु० ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥

खुरमा जु गिदौड़ा, बरफी पेड़ा, घेवर मोदक भरि थारी । विधिपूर्वक कीने, घृतपयभीने, खँडमैं लीने, सुखकारी ॥ वसु० ॥ नैवेद्यं ॥ ५ ॥

मिथ्यात महातम, छाय रह्यो हम, निजभव परणति नहिं सूझै। इहकारण पाकैं, दीप सजाकैं, थाल धराकैं, हम पूजैं ॥ वसु० ॥ दीपं ॥ ६ ॥

दशगंध कुटाकैं, धूप बनाकैं, निजकर लेकैं, धरि ज्वाला। तसु धूम उड़ाई, दशदिश छाई, बहु महकाई, अति आला ॥ वसु० ॥ धूपं ॥ ७ ॥

बादाम छुहारे, श्रीफल धारे, पिस्ता प्यारे दाख वरं। इन आदि अनोखे, लखि निरदोखे, थाल पजोखे, भेट धरं ॥ वसु० ॥ फलं ॥ ८ ॥

जल चंदन तंदुल कुसुम रु नेवज, दीप धूपफल थाल रचौं ॥ जयघोष कराऊं, बीन बजाऊँ, अर्घ चढ़ाऊँ खूब नचौं ॥ वसु० ॥ अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घ। चौपाई।

अधोलोक जिन आगमसाख। सात कोडि अरु बहत्तर लाख ॥ श्रीजिनभवन महाछवि देइ। ते सब पूजौं वसुविध लेइ ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अधोलोकसंबंधिसप्तकोटिद्विसप्ततिलक्षाकृत्रिमश्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

मध्यलोकजिनमंदिरठाठ। साढ़े चारशतक अरु आठ ॥ ते सब पूजौं अर्घ चढाय। मन वच तन त्रयजोग मिलाय ॥ २ ॥

ओं ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशताष्टपञ्चाशत् श्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घं ॥

अडिल्ल—उर्ध्वलोकके मांहि भवनजिनजानिये। लाख चुरासी सहस सत्याणव मानिये ॥ तापै धरि तेईस जजौं शिर नायकैं। कंचन थालमझार जलादिक लायकैं ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं उर्ध्वलोकसंबंधिचतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रत्रयोविंशतिश्रीजिन-चैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं० ॥ ३ ॥

वसुकोटि छप्पनलाख ऊपर, सहसत्याणव मानिये। सतच्यारपै गिनले इक्यासी, भवन जिनवर जानिये ॥ तिहुंलोकभीतर सासते, सुर असुर नर पूजा करैं। तिन भवनकों हम अर्घ लेकैं, पूजि हैं जगदुख हरैं ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतु:शतैका-शीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

दोहा–अब वरणों जयमालिका सुनो भव्य चितलाय।
जिनमंदिर तिहुंलोकके, देहु सकल दरसाय ॥१॥

पद्धरि छंद–जय अमल अनादि अनंत जान। अनिमित जु अकीर्तम अचल थान ॥ जय अजय अखंड अरूपधार। षटद्रव्य नहीं दीसै लगार ॥ २ ॥ जय निरा-कार अविकार होय। राजत अनंत परदेश सोय ॥ जे शुद्ध सुगुण अवगाह पाय। दशदिशामाहिं इहविध लखाय ॥ ३ ॥ यह भेद अलोकाकाश जान। तामध्य लोक नभ तीन मान ॥ स्वयमेव बन्यो अविचल अनंत। अविनाशि अनादि जु कहत संत ॥ ४ ॥ पुरषा अकार

ठाढ़ो निहार । कटि हाथ धारि द्वै पग पसार ॥ दच्छिन उत्तरदिशि सर्व ठौर । राजू जु सात भाख्यो निचोर ॥ ५ ॥ जय पूर्व अपर दिश घाटबाढ़ि । सुन कथन कहूँ ताको जुसाधि ॥ लखि श्वभ्र तलैं राजू जु सात । मधिलोक एक राजू रहात ॥ ६ ॥ फिर ब्रह्मसुरग राजू जु पांच । भूसिद्ध एक राजू जु सांच ॥ दश चार ऊंच राजू गिनाय । षट्द्रव्य लये चतुकोण पाय ॥ ७ ॥ तसु वातवलय लपटाय तीन । इह निराधार लखियो प्रवीन त्रसनाड़ी तामधि जान खास । चतुकोन एक राजू जु व्यास ॥ राजू उतंग चौदह प्रमान । लखि स्वयंसिद्ध रचना महान ॥ तामध्य जीव त्रस आदि देय । निज थान पाय तिष्ठैं भलेय ॥ ९ ॥ लखि अधो भागमें श्वभ्र थान । गिन सात कहे आगम प्रमान ॥ षट थानमाहि नारकि बसेय । इक श्वभ्रभाग फिर तीन भेय ॥ १० ॥ तसु अधोभाग नारकि रहाय । फुनि ऊर्ध्वभाग द्वय थान पाय ॥ बस रहे भवन व्यंतर जु देव । पुर हर्म्य छजै रचना स्वमेव ॥ ११ ॥ तिंह थान गेह जिनराज भाख । गिन सातकोटि बहत्तरि जु लाख ॥ ते भवन नमों मन वचनकाय । गति श्वभ्रहरनहारे लखाय ॥१२ पुनि मध्यलोक गोला अकार । लखि दीप उदधि रचना विचार ॥ गिन असंख्यात भाखे जु संत लखि संभूल सबके जु अंत ॥ १३ ॥ इक राजुव्यासमैं सर्व जान

मधिलोक तनौं इह कथन मान ॥ सबमध्यदीप 'जंबू
गिनेय। त्रयदशम रुचिकवर नाम लेय ॥ १४ ॥ इन
तेरहमैं जिनधाम जान। शतचार अठावन हैं प्रमान ॥
खग देव असुर नर आय आय। पद पूज जांय शिर
नाय नाय ॥ १५ ॥ जय ऊर्ध्वलोकसुर कल्पवान। तिहँ
थान छँजै जिन भवन खास ॥ जय लाख चुरासीपै
लखेय। जय सहससत्याणव और ठेय ॥ १६ ॥ जय
वीसतीन फुनि जोड़ देय। जिनभवन अकीर्तम जान
लेय ॥ प्रतिभवन एक रचना कहाय। जिनबिंब एक्सत
आठ पाय ॥ १७ ॥ शतपंच धनुष उन्नत लसाय।
पद्मासनजुत वर ध्यान लाय ॥ शिर तीनछत्र शोभित
विशाल। त्रय पादपीठ मणिजडित लाल ॥ १८ ॥
भामंडलकी छवि कौन गाय। फुनि चँवर दुरत चौसठि
लखाय ॥ जय दुंदभिरव अद्भुत सुनाय। जय पुष्पवृष्टि
गंधोदकाय ॥ १९ ॥ जय तरु अशोक शोभा भलेय।
मंगल विभूति राजत अमेह। घट तूप छजै मणिमाल
पाय। घटधूप धूम्रदिग सर्व छाय ॥ २० ॥ जय केतुपं-
क्ति सोहै महान। गंधर्वदेवगन करत गान ॥ सुर जनम-
लेत लखि अवधि पाय। तिहँ थान प्रथम पूजन कराय ॥
जिनगेहतणो वरनन अपार। हमतुच्छबुद्धि किम लहत
पार ॥ जय देव जिनेसुर जगत भूप। नमि 'नेम' मँगै
निज देहरूप।

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिपट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमश्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

तिहुं जगभीतर श्रीजिनमंदिर, बने अकीर्त्तम अति सुखदाय। नर सुर खग करि बंदनीक जे, तिनको भविजन पाठ कराय॥ धनधान्यादिक संपति तिनके, पुत्रपौत्र सुख होत भलाय॥ चक्री सुर खग इन्द्र होयकैं, करम नाश सिवपुर सुख थाय॥ (इत्याशीर्वाद पुष्पांजलिं०)

८५—आदिनाथ जिनपूजा।

नाभिराय मरुदेविके नन्दन, आदिनाथ स्वामी। महाराज। सर्वारथसिद्धितैं आप पधारे, मध्यमलोकमांहिं जिनराज॥ इन्द्रदेव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज आह्वानन सब विधि मिलकरके, अपने कर पूजें प्रभु पांय॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अथ अष्टक।

क्षीरोदधिको उज्वल जल ले, श्रीजिनवर पद पूजन जाय। जन्म जरा दुख मेटन कारन, ल्याय चढ़ाऊं प्रभुजीके पांय॥ श्रीआदिनाथके चरण कमलपर, बलि बलि जाऊं मनवचकाय। हो करुणानिधि भव दुख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पांय॥ जलं॥ २॥

मलियागिर चंदन दाह निकंदन, कंचन झारी मैं भर ल्याय। श्रीजीके चरण चढ़ावो भविजन, भव आताप तुरत मिटिजाय ॥ श्री आदि० ॥ चंदनं ॥

शुभ शालि अखंडित सौरभमंडित,प्राशुक जलसों धोकर ल्याय। श्रीजीके चरण चढ़ावो भविजन, अक्षयपदकों तुरत उपाय ॥ अक्षतं ॥

कमलकेतुकी वेल चमेली, श्रीगुलावके पुष्प मंगाय। श्रीजीके चरण चढ़ावो भविजन, कामवाण तुरत नसिजाय। श्रीआदि० ॥ पुष्पं० ॥

नेवज लीना तुरत रस भीना, श्रीजिनवर आगे धरवाय। थाल भराऊँ क्षुधा नसाऊँ ल्याऊँ प्रभुके मंगल गाय। श्रीआ०। नैवेद्यं ० ॥

जगमग जगमग होत दशोदिस, ज्योति रही मंदिरमें छाय। श्रीजीके सन्मुख करत आरती, मोह तिमिर नासै दुखराय। श्रीआ० दीपं ॥

अगर कपूर सुगंध मनोहर चंदन कूट सुगंध मिलाय। श्रीजीके सन्मुख खेय धुपायन, कर्म जरे चहुंगति मिटि जाय। श्रीआ० धूपं ॥

श्रीफल और बादाम सुपारी, केला आदि छुहारा ल्याय महामोक्षफल पावन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभुजीके पाय। श्रीआ०। फलं ॥

शुचि निरमल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन

हरषाय। दीप धूप फल अर्घ सुलेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय। श्री आदिनाथके चरण कमलपर, बलि बलि जाऊं मनवचकाय। हो करुणानिधि भव दुखमेटो, यातै मैं पूजों प्रभुपाय ॥ अर्घ ॥

पंचकल्याणक।

दोहा—सर्वारथसिद्धितैं चये, मरुदेवी उर आय।
दोज असित आषाढ़की, जजूं तिहारे पाय ॥

ओं ह्रीं श्रीआषाढ़कृष्णद्वितीयाया गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ।

चैतवदी नोमी दिना, जन्म्या श्रीभगवान।
सुरपति उत्सव अति करा, मैं पूजों धरध्यान ॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्या जन्मकल्याणकप्राप्ताय आदिनाथ अर्घ।

तृणवत् ऋधि सब छांड़िके, तप धार्यो वन जाय ॥
नौमी चैत्र असेतकी जजूं तिहारे पाय।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्या तप कल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिजिनाय अर्घ।

फाल्गुन वदि एकादशी, उपज्यो केवलज्ञान।
इन्द्र आय पूजा करी, मैं पूजोंयह थान ॥

ओं ह्रीं फाल्गुणकृष्ण एकादश्या ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिजिनाय अर्घ।

माघ चतुर्दशी कृष्णकी, मोक्ष गये भगवान।
भवि जीवों को बोधि के, पहुंचे शिवपुर थान ॥

ओं ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिजिनाय अर्घ।

अथ जयमाला।

आदीश्वर महराज मैं विनती तुमसे करूं।
चारों गतिके मांहिं मैं दुख पायो सो सुनो।
अष्ट कर्म मै हुं एकलो यह दुष्ट महा दुख देत हो।
कबहूँ इतर निगोदमें मोकूं पटकत करत अचेत हो॥
म्हारी दीनतनी सुनु वीनती॥ १॥
प्रभु कबहूँक पटक्यो नरकमें, जठे जीव महादुख पाय हो
नित उठि निरदई नारकी, जठे करत परस्पर घात हो।
म्हारी दीनतनी सुनु वीनती॥ २॥
प्रभु नरकतणा दुखअब कहूं जठे करत परस्पर घात हो
कोइक बांध्यो खंभस्यों, पापी दे मुद्गरकी मार हो।
कोइक काटे करोतसों, पापी अंगतणी दोय फाड हो।

प्रभु यह विधि दुख भुगत्या घणा, फिर गति पाई तिरयंच हो। हिरण बकरा बाछला पशु दीन गरीब अनाथ हो॥ म्हारी०॥ ४॥ प्रभु मैं ऊंट बलद, भैंसा, भयो, जठे लादियो भार अपार हो। नहीं चालो जब गिरि पड्यो, पापी दे सोटनकी मार हो॥ म्हारी०॥ प्रभु कोइक पुण्यसुं मैं तो पायो स्वर्गनिवास हो। देवांगना संग रम रह्यो जठे भोगनिका परताप हो। म्हारी०॥६॥ प्रभु संग अप्सरा मैं रह्यो जासों कर अति अनुराग हो। कबहूँक नंदन वनविषैं, प्रभु कबहुंक बन गृह मांहिं हो। म्हारी०॥ ७॥ प्रभु यहि काल गमाइके, फिर माला

मुरझाय हो। देव तिथी सब घट गई, फिर सोच अपार हो ॥ म्हारी० ॥ सोच करता तन खिर पड्यो, फिर उपज्यो गरभमें जाय हो। प्रभु गर्भतणा दुख अब कहूँ, जठे सकड़ाई ठौर हो ॥ म्हारी० ॥ हलन चलन नहिं कर सक्यो जठे सघन कीचा घनघोर हो। माता खावे चरपरो फिरलागे तन संताप हो ॥ म्हारी० ॥ प्रभु जो जननी तातो भखे, फेर उपजे संताप हो। औंधे मुख झूलो रह्यो फेर निकसन कौन उपाय हो ॥ म्हारी० ॥ कठिन कठिन कर नीसरो, जैसे निसरै जंतीसैं तार हो। प्रभु फिर निकसही धरत्या पड्यो फिर उपज्यो दुःख अपार हो। रोय रोय बिलख्यो घनो, दुख वेदनका नहिं पार हो ॥ म्हारी० प्रभु दुख मेटन समरथ धनी, यातैं लागूं तिहारे पांय हो। सेवक अरज करै प्रभू! मोकूं भवोदधि पार उतार हो ॥ म्हारी० ॥

दोहा—श्रीजीकी महिमा अगम है, कोई न पावै पार।
मैं मति अल्प अज्ञान हो, होई नहीं विस्तार ॥

इति श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

विनती ऋषभ जिनेशकी, जो पढ़सी मन ल्याय।
सुरगोंमें संशय नहीं निश्चै शिवपुर जाय ॥

८६—श्रीचन्द्रप्रभ जिन पूजा।

चारुचरन आचरन, चरनचितहरनचिहनचर।
चंदचंदतनचरित, चंदथल चहत चतुर नर ॥

चतुक चंड चकचूरि, चारि चिद्चक्र गुनाकर।
चंचल चलितसुरेश, चूलनुत चक्रधनुरहर॥
चर अचरहितू तारनतरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि।
जिनचंदचरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रचि रुचि॥

दोहा--धनुष डेड़सौ तुंग तन, महासेन नृपनंद।
मातु लछना उर जये, थापों चन्दजिनन्द॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र। अत्र मम सन्निहितो भव २ वषट्।

अष्टक।

गंगाहृदनिरमलनीर, हाटकभृंगभरा।
तुम चरन जजों वरवीर, मेटो जनमजरा॥
श्रीचंदनाथद्युति चंद चरनन चंद लगै। मनवचतन
जजत अमंद, आतमजोति जगै॥ जलं॥ १॥
श्रीखंडकपूर सुचंग, केशररंग भरी। घँसि प्रासुक
जलके संग भवआतप हरी॥श्री०॥ चंदनं॥२॥
तंदुल सित सोम समान, सम लय अनियारे। दिय
पुञ्ज मनोहर आन, तुमपदतर प्यारे॥श्री०॥ अक्षतान्॥
सुरद्रुमके सुमन सुरंग, गंधित अलि आवै। तासों
पद पूजन चंग, कामविथा जावै॥ पुष्पं०॥ ४॥
नेवज नानापरकार, इंद्रियबलकारी। सो लै पद
[illegible]॥ श्री०॥ नैवेद्यं॥ ५॥

तमभंजन दीप सँवार, तुम ढिग धारतु हों। मम तिमिरमोह निरवार, यह गुन धारतु हों ॥ओं०दीपं ॥६॥

दशगंधहुतासनमाहिं हे प्रभु खेवतु हौं। मम करम दुष्ट जरि जांहि, यातैं सेवतु हौं ॥ ओं० धूपं ॥ ७ ॥

अति उत्तमफल सु मंगाय, तुम गुनगावतु हौं। पूजौं तनमन हरषाय, विघन नशावतु हौं ॥ ओं० फलं ॥८॥

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अङ्ग नमों। पूजों अष्टमजिन मीत, अष्टम अवनि गमों ॥ ओं० अर्घ्यं ॥९॥

पंचकल्याणक।

छन्द तोटक (वर्ण १२)

कलि पंचमचैत सुहात अली। गरभागममंगल मोद भली॥ हरि हर्षित पूजत मातु पिता। हम ध्यावत पावत शर्मसिता ॥ १ ॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णपञ्चम्यां गर्भमङ्गलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

कलि पौषइकादशि जन्म लयो। तब लोकविषैं सुख थोक भयो॥ सुरईश जजैं गिरशीश तबै। हम पूजत हैं नुतशीस अबै ॥ २ ॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं ॥२॥

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा। कलिपौष इग्यारसि पर्व वरा॥ निजध्यानविषै लवलीन भये। धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णौका ... निःक्रमणमहोत्सवमण्डिताय श्रीजिनेन्द्राय अर्घं ॥३॥

कर केवलभानु उद्योत कियो। तिहुं लोकतणों भ्रम मेट दियो ॥ कलिफाल्गुणसप्तमी इन्द्र जजे ॥ हम पूजहिं सर्व कलङ्क भजे ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्या केवलज्ञानमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेंद्राय ॥४॥

सित फाल्गुण सप्तमि मुक्ति गये। गुणवंत अनंत अबाध भये ॥ हरि आय जजें तित मोदधरे ॥ हम पूजतही सब पाप हरे ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभ जिनेंद्राय अर्घं ॥

जयमाला।

दोहा—हे मृगांकअंकितचरण, तुम गुण अगम अपार। गणधरसे नहिं पार लहिं, तौ को वरनत सार ॥१॥ पै तुम भगति हिये मम, प्रेरै अति उमगाय। तातैं गाऊं सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय ॥ २ ॥

छन्द पद्धरि (१६ मात्रा)।

जय चन्द्र जिनेन्द्र दयानिधान। भवकानन हानन दवप्रमान ॥ जय गरभजनममंगल दिनंद। भवि जीव विकाशन शर्मकंद ॥ ३ ॥ दशलक्षपूर्वकी आयु पा[illegible] मनवांछित सुख भोगे जिनाय ॥ लखि कारणह्वै ज[illegible] उदास। चिंत्यो अनुप्रेक्षा सुखनिवास ॥ ४ ॥ [illegible] लौकांतिक बोध्यो नियोग। हरि शिविका सजि ध[illegible] अभोग ॥ तापै तुम चढ़ि जिनचंदराय ता[illegible]

शोभाको कहाय ॥ ५ ॥ जिन अंग सेत सित चमर ढार । सित छत्र शीस गलगुलकहार ॥ सित रतनजड़ितभूषण विचित्र । सित चन्द्रचरण चरचैं पवित्र ॥६॥ सित तन द्युति नाकाधीश आप सित शिविका कांधे धरि सुचाप ॥ सित सुजस सुरेश नरेश सर्व । सित चितमें चिन्तत जात पर्व ॥ ७ ॥ सित चंदनगरतैं निकसि नाथ । सित बनमें पहुंचे सकलसाथ ॥ सित-शिलाशिरोमणि स्वच्छछांह । सित तप तित धार्यो तुम जिनाह ॥ सित पयको पारण परमसार सित चांद्र-दत्त दीनों उदार ॥ सित करमें सो पयधार देत । मानों बांधत भवसिन्धुसेत ॥ ९ ॥ मानों सुपुण्यधारा प्रतच्छ । तित अचरज पन सुर किय ततच्छ ॥ फिर जाय गहन सित तपकरंत । सित केवलज्योति जग्यो अनंत ॥ लहि समवसरणरचना महान । जाके देखत सब पापहान ॥ जहँ तरु अशोक शोभै उतंग । सब शोकतनो चूरै प्रसंग ॥ ११ ॥ सुर सुमनवृष्टि नभमैं सुहात । मनु मन्मथ तज हथियार जात ॥ बानी जिन मुखसौं खिरत सार । मनुतत्त्वप्रकाशन मुकुर धार ॥ १२॥ जहँ चौंसठ चमर अमर दुरन्त । मनु सुजस मेघझरि लगिय संत ॥ सिंहासन है जहँ कमलजुक्त । मनु शिवसरवरको कमलशुक्त ॥ १३ ॥ दुंदुभि जित बाजत मधुर सार । मनु करमजीतको है नगार ॥ सिर छत्र फिरै त्रय स्वेतवर्ण ।

मनु रतन तीन त्रयताप हर्ण ॥ १४ ॥ तन प्रभातनो मंडल सुहात । भवि देखत निजभव सात सात ॥ मनुदर्प-णद्युति यह जगमगाय । भविजन भव मुख देखत सुआय ॥ १५ ॥ इत्यादि विभूति अनेक जान बाहिज दीसत महिमा महान ॥ ताको वरणत नहिं लहत पार, तौ अन्तरंगको कहै सार ॥ १६ ॥ अनअंत गुणनिजुत करि बिहार । धरमोपदेश दे भव्य तार ॥ फिर जोग-निरोधि अघाति हानि । सम्मेदथकी लिय मुकतिथान ॥ १७ ॥ वृन्दावन वन्दत शीश नाय । तुम जानत हौ मम उर जु भाय ॥ तातैं का कहौं सु बार बार । मनवां-छित कारज सार सार ॥ १८ ॥

छंद घत्तानंद—जय चंदजिनंदा आनँदकंदा, भवभयभंजन राजै है ॥ रागादिकद्वन्दा हरि सब फंदा, मुकतिमाहिं थिति साजै हैं ॥ १९ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

छंद चौबोला ।

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचंद जजैं ॥
ताके भवभवके अघ भाजैं, मुक्तसारसुख ताहि सजैं ॥२०॥
जमके त्रास मिटैं सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं ।
वृन्दावन ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुरि राज रजैं ॥२१॥

इत्याशीर्वादः परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

८७—श्रीवासुपूज्य जिनपूजा।

छंद रूपकवित्त—श्रीमत वासुपूज्य जिनवर पद, पूजनहेत हिये उमगाय। थापों मनवचतन शुचि करिकै, जिनकी पाटलदेव्या माय॥ महिष चिन्ह पद लसै मनोहर, लाल बरन तन समतादाय। सो करुनानिधि कृपादिष्टकरि, तिष्ठहु सुपरितिष्ठि यहँ आय॥ १॥

ओं ह्रीं वासुपूज्यजिनेन्द्र। अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ओं ह्रीं वासुपूज्य जिनेन्द्र। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक।

छंद जोगीरासा।

गंगाजल भरि कनककुंभमैं, प्रासुक गंध मिलाई। करम कलंक विनाशन कारन, धार देत हरषाई॥ वासुपूज वसुपूजतनुजपद, वासव सेवत आई। बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई॥ जलं॥ १॥

कृष्णागरु मलयागिरचंदन, केशरसंग घसाई। भव आताप विनाशनकारन, पूजों पद चित लाई॥वासु॥चंदनं॥

देवजीर सुखदास शुद्ध वर, सुवरनथार भराई। पुंजधरत तुम चरननआगैं, तुरित अखय पदपाई॥वासु॥अक्षतान्॥

पारिजात संतानकलपतरु,—जनित सुमन बहु लाई। मीनकेतुमदभंजनकारन, तुम पदपद्म चढाई॥वासु॥पुष्पं॥

नव्यगव्यआदिकरसपूरित, नेवज तुरित उपाई। छुधा-

रोग निरवारनकरन, तुम्हें जजों शिरनाई ॥वासु॥नैवेद्य॥
दीपकजोत उदोत होत वर, दशदिशमें छवि छाई।
तिमिरमोहनाशक तुमको लखि,जजों चरन हरषाई ॥दीपं॥
दशविध गंधमनोहार लेकर, वात्रहोतमें डारी। अष्ट
करम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम सु धूम उड़ाई ॥वासु ॥धूपं॥
सुरस सुपक्वसुपावन फल लै, कंचनथार भराई। मोच्छ
महाफलदायक लखि प्रभु, भेंट धरों गुनगाई॥वासु॥फलं॥
जलफल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई। शिव-
पदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरो यह लाई॥वासु॥अर्घ्यं॥

पञ्चकल्याणक।

छन्द पाईता (१४ मात्रा)।

कलि छट्ठ असाढ़ सुहायौ। गरभागम मंगल पायौ॥
दशमें दिवितें इत आये। सतइन्द्र जजे शिर नाये॥१॥
ओं ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठ्यां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घं॥

कलि चौदश फागुन जानों। जनमें जगदीश महानो
हरि मेर जजे तव जाई। हम पूजत हैं चितलाई॥ २॥
ओंह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्या जन्ममङ्गलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घं।

तिथि चौदश फागुन श्यामा। धरियो तप श्रीअभिरामा।
नृप सुन्दरके पय पायो। हम पूजत अतिसुख थायो॥३॥
ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्या तपमङ्गलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्य जिनेद्राय अर्घं।

वदि भादव दोइज सोहै। लहि केवल आतम जो है॥
अनअंत गुनाकर स्वामी। नित वंदों त्रिभुवन नामी॥४॥

ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णद्वितियायां केवलज्ञानमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घं

सितभादवचौदशि लीनों। निरवान सुथान प्रवीनो
पुर चंपाथानकसेती। हम पूजत निजहित हेती ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घं ॥

जयमाला।

दोहा—चंपापुरमें पंचवर, कल्याणक तुम पाय।
सत्तर धनु तन शोभनो, जैजैजै जिनराय ॥१॥

छन्द मोतियदाम (वर्ण १२)

महासुखसागर आगर ज्ञान। अनंत सुखामृत भुक्त महान ॥ महाबलमंडित खंडितकाम। रमाशिवसंग सदा विसराम ॥२॥ सुरिंद फनिंद खगिंद नरिंद। मुनिंद जजैं नित पादर विंद। प्रभू तुव अंतरभाव विराग। सुबालहितें ब्रतशीलसों राग ॥ ३ ॥ कियो नहिं राज उदाससरूप। सुभावन भावत आतमरूप ॥ अनित्य शरीर प्रपंच समस्त। चदातम नित्य सुखाश्रित वस्त ॥ ४ ॥ अशर्न नहीं कोउ शर्न सहाय। जहां जिय भोगत कर्मविपाय ॥ निजातम कै परमेसुर शर्न। नहीं इनके बिन आपदहर्न ॥५॥ जगत्त जथा जलबुद्बुद येव। सदा जिय एक लहै फलभेव ॥ अनेकप्रकार धरी यह देह। भमैं भवकानन आनन नेह ॥ ६ ॥ अपावन सात कुधात भरीय। चिदातम शुद्धसुभाव धरीय ॥ धरै इनसों जब नेह तबेव सुआवत कर्म तबै वसु भेव ॥७॥ जबै तनभोगजगत्तउ-

दास । धरै नव संवर निर्जर आश ॥ करै जब कर्मकलंक विनाश । लहै तब मोक्ष महासुखराश ॥ ८ ॥ तथा यह लोक नराकृत नित्त । विलोकियते षटद्रव्यविचित्त ॥ सुआतमजानन बोधविहीन । धरै किन तत्त्वप्रतीत प्रवीन ॥ ९ ॥ जिनागमज्ञानरु संयमभाव । सबै निजज्ञान विना विरसाव ॥ सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल । सुभाव सबै जिहतें शिव हाल ॥१०॥ लयो सब जोग सुपुन्य वशाय कहो किमि दीजिये ताहि गंवाय ॥ विचारत यों लवकांतिक आय । नमें पदपंकज पुष्प चढ़ाय ॥११॥ कह्यो प्रभु धन्य कियो सुविचार । प्रबोधि सु येम कियो जु विचार ॥ तबै सबधर्मतनों हरि आय । रच्यौ शिविका चढ़ि आप जिनाय ॥१२॥ धरे तप पाय सुकेवलबोध । दियो उपदेश सुभव्य संबोध ॥ लियो फिर मोच्छ महासुखराश । नमैं तिन भक्त सोई सुख आश ॥ १३ ॥

घत्तानंद—नित वासववन्दत, पापनिकंदत, वासपूज्य व्रत ब्रह्मपती । भवसंकटखंडित, आनँदमंडित, जै जै जै जैवंत जती ॥ १४ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १४ ॥

सोरठा—वासपूजपद सार, जजौ दरवविधि भावसों ।
सो पावै सुखसार, भुक्ति मुक्तको जो परम ॥ १५ ॥

इत्याशीर्वादः परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

८८—श्रीशान्तिनाथ जिनपूजा ।

मत्तगयन्द छन्द (शब्दाडम्बर तथा जमकालंकार)

या भवकाननमें चतुरानन, पापपनानन घेरि हमेरी । आतमजान न मान न ठान न, वान न होइ हिये सठ मेरी ॥ तामद भानन आपहि हो, यह छान न आन न आननटेरी । आन गही शरनागतको, अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी ॥ १ ॥

ओं ह्री श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर । संत्रौषट् ।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र । अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ओं ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय । अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट्

अष्टक ।

छंद त्रिभंगी । अनुप्रयासक (मात्रा ३२ जगनवर्जित)

हिमगिरिगतगंगा,--धार अभंगा, प्रासुक संगा, भरिभृङ्गा । जरमरनमृतंगा, नाशी अघंगा, पूजि पदंगा मृदुहिंगा ॥ श्रीशान्तिजिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं, चक्रेशं । हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयाम्रतेशं, मक्रेशं ॥जलं॥

वर बावनचंदन, कदलीनंदन, घनआनंदन सहित घसों । भवतापनिकन्दन, ऐरानंदन, वंदि अमंदन, चरनवसों ॥ श्रीशान्ति जिनेश० ॥ चंदनं ॥ २ ॥

हिमकरकरी लज्जत, मलयसुसज्जत, अच्छत जज्जत, भरिथारी । दुखदारिद गज्जत,सदपदसज्जत,भवभय भज्जत, अतिभारी ॥ श्रीशान्तिजिनेशं० ॥ अक्षतान् ॥ ३ ॥

मंदार सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं, मलय-भरं। भरि कंचनथारी, तुम ढिग धारी, मदनविदारी, धीरधरं॥ श्रीशान्तिजिनेशं० ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥

पकवान नवीने, पावन कीने, षटरसभीने, सुखदाई। मन-मोदनहारे, छुधा विदारे, आगैं धारे, गुनगाई ॥नैवेद्यं॥

तुम ज्ञानप्रकाशे, भ्रमतम नाशे, ज्ञेयविकाशे सुख-रासे। दीपक उजियारा, यातैं धारा, मोहनिवारा, निज भासे॥ श्रीशान्तिजिनेशं० ॥ दीपं ॥ ६ ॥

चंदन करपूरं, करि वर चूरं, पावक भूरं, माहि जुरं। तसु धूम उड़ावै, नाचत जावै, अलि गुंजावै, मधुरसुरं ॥ श्रीशान्तिजिनेशं० ॥ धूपं ॥ ७ ॥

बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं निंबुक भूरं, लै आयो। तासों पद जज्जों, शिवफल सज्जों, निजरसरज्जों, उम-गायो ॥ श्रीशान्तिजिनेशं० ॥ फलं ॥ ८ ॥

वसु द्रव्य सँवारी, तुमढिग धारी, आनंदकारी, दृग-प्यारी। तुम हो भवतारी, करुनाधारी, यातैं थारी, शर-नारी ॥ श्रीशान्तिजिनेशं० ॥ अर्घं ॥ ६ ॥

पंचकल्याणक।

सुन्दरी तथा द्रुतविलंबित छन्द।

असित सातय भादव जानिये। गरभमंगल तादि मानिये। सचि कियो जननी पद चर्चनं। हम करैं इत ये पद अर्चनं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय शांतिनाथ जिने० अर्घं ॥

जनम जेठ चतुर्दशि श्याम है। सकलइंद्र सु आगत धाम है॥ गजपुरै गज राज सबै तजै। गिरि जजे इत मैं जजि हो अबै ॥ २ ॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्ण चतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय शान्तिनाथ जिने० अर्घं ॥२॥

भव शरीर सुभोग असार हैं। इमि विचार तबै तप धार हैं॥ भ्रमर चौदश जेठ सुहावनी। धरमहेत जजों गुन पावनी ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्ण चतुर्दश्यां निःक्रममहोत्सवमण्डिताय शांतिनाथ जिने०अर्घं।

शुकलपौष दशैं सुखराश है। परम-केवल-ज्ञान प्रकाश है॥ भवसमुद्रउधारन देवकी। हम करैं नित मंगल सेवकी ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथ जिने० अर्घं ॥ ४ ॥

असित चौदस जेठ हनें अरी। गिरि समेदथकी शिव-ती वरी ॥ सकलइंद्र जजैं तित आइकैं। हम जजैं इत मस्तक नाइकैं ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीशांतिनाथ जिने० अर्घं ॥५॥

अथ जयमाला।

छन्द रथोद्धता, चंद्रवत्स तथा चंद्रवर्त्म (वर्ण ११ लाटानुप्रास)

शान्ति शान्तिगुनमंडिते सदा। जाहि ध्यावते सुपण्डिते सदा॥ मैं तिन्हें भगतमंडिते सदा। पूजि हों कलुषहंडिते सदा ॥ १ ॥ मोक्षहेत तुम ही दयाल हो।

हे जिनेश गुनरत्नमाल हो। मैं अबै सुगुनदाम ही धरों।
ध्यावतें तुरति मुक्ति-ती वरों ॥ २ ॥

छन्द-पद्धरि (१६ मात्रा)

जय शान्तिनाथ चिद्रूपराज। भवसागरमें अद्भुत जहाज ॥ तुम तजि सरवारथसिद्ध थान। सरवारथजुत गजपुर महान ॥ १ ॥ तित जनम लियौ आनंद धार। हरि ततछिन आयो राजद्वार ॥ इंद्रानी जाय प्रसूतथान। तुमको करमें लै हरष मान ॥ २ ॥ हरि गोद देय सो मोदधार। सिर चमर अमर ढारत अपार ॥ गिरिराज जाय तित शिला पांड। तापै थाप्यो अभिषेक माड ॥३॥ तित पंचम उदधि तनों सु वार। सुर कर कर करि ल्याये उदार ॥ तब इंद्र सहसकर करि अनंद। तुम सिर धारा ढार्‌यो सुनंद ॥ ४ ॥ अघ घघ घघ घघ धुनि होत घोर। भभ भभ भभ धध धध धध कलशशोर ॥ द्रम द्रम द्रम-द्रम बाजत मृदंग। झन नन नन नन नन नूपुरङ्ग ॥५॥ तन नन नन नन नन तनन तान। घन नन नन घंटा करत ध्वान ॥ ताथेई थेइ थेइ थेइ सुचाल। जुत नाचत नावत तुमहिं भाल ॥ ६ ॥ चट चट चट अटपट नटत नाट। झट झट झट हट नट शट विराट ॥ इमि नाचत राचत भगत रङ्ग। सुर लेत जहां आनन्द संग ॥ ७ ॥ इत्यादि अतुल मङ्गल सुठाट। तित बन्यौ जहां सुरगिरिविराट ॥ पुनि करि नियोग पितुसदन आय। हरि सौंप्यौ तुम

तित बृद्ध थाय ॥ पुनि राजमाहिं लहि चक्ररत्न । भोग्यौ छखंड करि धरम जत्न ॥ पुनि तप धरि केवलरिद्धि पाय भवि जीवनकों शिवमग बताय ॥ शिवपुर पहुंचे तुम हे जिनेश । गुनमंडित अतुल अनन्त भेष ॥ मैं ध्यावतु हों नित शीश नाय । हमरी भवबाधा हर जिनाय ॥ १० ॥ सेवक अपनो निज जान जान । करुना करि भौभय भान भान ॥ यह विघन मूल तरु खंड खंड । चितचिन्तित आनँद मंड मंड ॥ ११ ॥

घत्तानन्द छन्द (मात्रा ३१)

श्रीशान्ति महंता, शिवतियकंता, सुगुन अनंता, भगवन्ता । भवभ्रमन हनंता, सौख्यअनंता, दातारं तारनवन्ता ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

छन्द रूपक सवैया (मात्रा ३१)

शांतिनाथजिनके पदपंकज, जो भवि पूजै मनवच-काय । जनम जनमके पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय ॥ मनवांछित सुख पावै सो नर, बांचै भग-तिभाव अति लाय । तातैं 'वृन्दावन' नित बंदै, जातैं शिवपुरराज कराय ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

८९—श्रीनेमिनाथपूजा।

छन्द लक्ष्मी, तथा अर्द्ध लक्ष्मी धरा।

जैति जै जैति जै जैति जै नेमकी, धर्म अवतार दातार श्योचैनकी। श्रीशिवानंद भौफंद निकंद ध्यावै, जिन्हैं इन्द्र नागेन्द्र ओ मैनकी। पञ्चकल्यानके देनहारे तुम्हीं, देव हो एक तातैं करौं ऐनकी। थापि हौं वार त्रै शुद्ध उच्चार त्रै, शुद्धताधार भौपारकूं लेनकी ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिन! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

अष्टक।

दाता मोक्षके श्रीनेमिनाथ जिनराय ॥ दाता० ॥ टेक ॥

निगमनदी कुश प्राशुक लीनौं, कंचनभृंग भराय। मनवचतनतैं धार देत हो, सकल कलंक नशाय ॥ दाता मोक्षके, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता० ॥ जलं ॥ १ ॥

हरिचन्दनजुत कदलीनंदन, कुंम २ संग घसाय। विघनतापनाशनके कारन, जजौं तिहारे पाय ॥दाता०॥चंदनं॥

पुण्यराशि तुमजस सम उज्जल, तंदुल शुद्ध मँगाय। अखय सौख्य भोगनके कारन, पुंज धरों गुनगाय ॥अक्षतान् ॥

पुंडरीकतृणद्रुमको आदिक, सुमन सुगंधित लाय। दर्पक[illegible]कारन जजहुं चरन लवलाय ॥ पुष्पं ॥

घेवर बावर खाजे साजे, ताजे तुरति मँगाय। क्षुधावेदनी नाश करनको, जजहुं चरन उमगाय ॥ नैवेद्यं ॥५॥

कनकदीपनवनीत पूरकर, उज्जल जोति जगाय। तिमिर-
मोहनाशक तुमकों लखि, जजहुं चरन हुलसाय ॥दीपं॥
दशविध गंध मँगाय मनोहर, गुंजत अलिगनआय।
दशोंबंध जारनके कारन, खेवों तुमढिग लाय ॥ धूपं ॥
सुरसवरन रसनामनभावन,पावन फल सु मँगाय। मोक्ष-
महाफल कारन पूजों, हे जिनवर तुमपाय। दाता०॥फलं॥

जलफलआदि साज शुचि लीने, आठों दरब
मिलाय। अष्टमछितिके राज करनकों जजो अंग वसु
नाय ॥ दातामोक्षके० अर्घं ॥ ६ ॥

पञ्चकल्याणक

सित कातिक छट्ठ अमंदा। गरभागमआनँदकंदा ॥
शचि सेय सिवापद आई। हम पूजतमनवचकाई ॥१॥
ओं ह्रीं कार्तिकशुक्लषष्ठयां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथ जिने० अर्घं ॥
सित सावन छट्ठ अमंदा। जनमें त्रिभुवनके चंदा ॥
पितु समुद महासुख पायो। हम पूजत विघन नशायो ॥२॥
ओं ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्या जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथ जिने० अर्घ्य ॥
तजि राजमती व्रत लीनों। सितसावन छट्ठ प्रवीनों ॥
शिवनारि तबै हरषाई। हम पूजैं पद शिरनाई ॥ ३ ॥
ओं ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यां तपःकल्याणकप्राप्ताय श्रीनेमिनाथ जिने० अर्घ्य ॥
सित आसिन एकम चूरे। चारों घाती अति क्रूरे ॥
लहि केवल महिमा सारा। हम पूजैं अष्टप्रकारा ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं आश्विनशुक्लप्रतिपदा केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीनेमिनथ जिने० अर्घ ॥

सितषाढ़ अष्टमी चूरे। चारों अघातिया कूरे।

शिव उज्जयंततें पाई। हम पूजौं ध्यान लगाई ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं आषाढशुक्लाष्टम्या मोक्षमंगल प्राप्ताय श्रीनेमिनाथ जिने० अर्घ ॥

जयमाला।

दोहा—श्याम छवी तन चाप दश, उन्नत गुननिधिधाम।

शंख चिह्नपदमें निरखि, पुनि पुनि करों प्रनाम ॥ १ ॥

पद्धरी छन्द (१६ मात्रा लक्ष्वन्त)।

जै जै जै नेमि जिनिंद चंद। पितु समुद देन अनंदकंद ॥ शिवमात कुमुदमनमोददाय। भविवृन्द चकोर सुखी कराय ॥ २ ॥ जय देव अपूरव मारतंड। तुम कीन ब्रह्मसुत सहस खंड ॥ शिवतियमुखजलजविकाशनेश। नहिं रही सृष्टिमें तम अशेश ॥ ३ ॥ भवि भीत कोक कीनों अशोक। शिवमग दरशायो शर्म थोक ॥ जै जै जै जै तुमगुनगंभीर। तुम आगम निपुन पुनीत धीर ॥ ४ ॥ तुम केवलजोति विराजमान। जै जै जै करुणानिधान ॥ तुम समवसरनमें तत्त्वभेद। दरशायो जातें नशत खेद ॥ ५ ॥ नित तुमकों हरि आनंदधार। पूजत भगतीजुत बहु प्रकार ॥ पुनि गद्यपद्यमय सुजस गाय। जै बल अनंत गुनवंतराय ॥ ६ ॥ जय शिवशंकर ब्रह्मा महेश। जय बुद्ध विधाता विष्णु-

वेष ॥ जय कुमतिमतंगनको मृगेंद्र । जय मदनध्वांतकों रवि जिनेन्द्र ॥ ७ ॥ जय कृपासिंधु अविरुद्ध बुद्ध । जय रिद्धसिद्ध दाता प्रबुद्ध ॥ जय जगजनमनरंजन महान । जय भवसागरमहं सुष्टु थान ॥ ८ ॥ तुव भगति करै ते धन्य जीव । ते पावैं दिव शिवपद सदीव ॥ तुमरो गुन देव विविधप्रकार । गावत नित किन्नरकी जु नार ॥ ९ ॥ वर भगतिमाहिं लवलीन होय । नाचैं ताथेइ थेइ थेइ वहोय ॥ तुम करुणासागर सृष्टिपाल । अब मोकों वेगि करो निहाल ॥१०॥ मैं दुख अनंत वसुकर-मजोग भोगेसदीव नहिं और रोग ॥ तुमको जगमें जान्यों दयाल । हो वीतराग गुनरतनमाल ॥११॥ तातें शरना अब गही आय । प्रभु करो वेगि मेरी सहाय ॥ यह विघन करम मम खंडखंड । मनवांछितकारज मंडमंड । ॥ १२ ॥ संसारकष्ट चकचूर चूर । सहजानंद मम उर पूर पूर ॥ निज पर प्रकाशबुधि देह देह । तजिके विलंब सुधि लेह लेह ॥ १३ ॥ हम जांचते हैं यह बार बार । भवसागरतें मों तार तार ॥ नहिं सह्यो जात यह जगत दुःख तातें विनवों हे सुगुनमुक्ख ॥ १४ ॥

घत्तानंद—श्रीनेमिकुमारं जितमदमारं, शीलागारं, सुखकारं,। भवभयहरतारं, शिवकरतारं, दातारं धर्माधारं ॥

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मालिनी—सुख, धन, जस, सिद्धि पुत्रपौत्रादि ...नेन्द्राय अहं

सकल मनसि सिद्धि होतु है ताहि रिद्धि ॥ जजत हरषधारी नेमिको जो अगारी। अनुक्रम अरिजारी सो वरे मोक्ष नारी ॥ १६ ॥ इत्याशीर्वादः।

६०—श्रीवर्द्धमानजिनपूजा।

मत्तगयंद—श्रीमतवीर हरै भवपीर, भरै सुखसीर अनाकुलताई। केहरिअंक अरीकरदंक, नये हरिपंकतिमौलि सुआई ॥ मैं तुमको इत थापतु हौं प्रभु, भक्ति समेत हिये हरखाई। हे करुणाधनधाकर देव, इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई ॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट् ॥ १ ॥ अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ॥ २ ॥ अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट् ॥३॥

अष्टक।

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचनभृंग भरों।
प्रभु वेग हरो भवपीर, यातैं धार करों ॥
श्रीवीरमहा अतिवीर सन्मतिनायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मतिदायक हो। जलं ॥१॥
मलयागिरचंदनसार, केसरसंग घसौं।
प्रभु भव आताप निवार, पूजत हिय हुलसौं।श्री०।चंदनं
तंदुलसित शशिसम शुद्ध, लीनों थार भरी।
तसु पुंज धरों अविरुद्ध, पावौं शिवनगरी। श्री० अक्षतान्
सुरतरुके सुमन समेत, सुमन सुमनप्यारे।
जय मन्मथभंजनहेत, पूजों पद थारे। श्री० ॥ पुष्पं ॥

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी ।
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी ॥ श्री० ।नैवेद्यं ॥
तमखंडित मंडितनेह, दीपक जोवत हों ॥
तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हों ।श्री० दीपं
हरिचंदन अगर कपूर, चूर सुगन्ध करा ।
तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ॥ श्री० । धूपं ॥
रितुफल कलवर्जित लाय, कंचनथार भरौं ।
शिव फलहित हे जिनराय, तुमढिग भेट धरौं श्री०फलं
जलफल वसु सजि हिमथार, तनमनमोद धरों ।
गुण गाऊं भवदधितार, पूजत पाप हरों ॥ श्री। अर्घ्यं ॥६॥

पंचकल्याणक ।

मोहि राखो हो, सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखो० ॥ गरभ साढ़सित छट्ट लियो थिति, त्रिशला उर अघहरना । सुर सुरपति तित सेव करयो नित, मैं पूजों भवतरना । मोहिराखो० ॥

ओं ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं नि

जनम चैतसित तेरसके दिन, कुंडलपुर कनवरना ।
सुरगिर सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भवहरना ।मोहि०॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं नि०

मगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना ।
नृप कुमारघर पारन कीनो, मैं पूजों तुम चरना ॥मोहि०॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं

शुकलदशैं वैशाखदिवस अरि, घात चतुक छयकरना।
केवललहि भवि भवसरतारे, जजों चरन सुख भरना।मो०।
ओं ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं नि०
कातिक श्याम अमावस शिवतिय, पावापुरतें परना।
गनफनिवृंद जजे तित बहुविधि, मैं पूजों भयहरना।मो०।
ओं ह्रीं कार्तिककृष्णअ० मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं नि०

जयमाला।

छंद हरिगीता (२८) मात्रा।

गनधर असनिधर, चक्रधर, हरधर गदाधर बरवदा। अरु चापधर विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा॥ दुखहरन आनंदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं। सुकुमाल गुनमनिमाल उन्नत, भालकी जयमाल हैं॥ १॥

घत्तानन्द—जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगदानंदं, चंदवरं। भवतापनिकंदन तनकनमंदन, हरितसपंदन, नयन धरं॥ २॥

छंद तोटक—जय केवलभानुकलासदनं। भविकोकविकाशनकंदवनं॥ जगजीत महारिपु मोहहरं। रजज्ञानदृगांबर चूरकरं॥१॥ गर्भादिकमंगलमण्डित हो॥ जगमाहिं तुमी सत पंडित हो। तुम ही भवभावविहंडित हो॥ २॥ हरिवंशसरोजनको रवि हो। बलवंत महंत तुम ही कवि हो॥ लहि केवल धर्मप्रकाश कियौ। अबलों सोई मारगराजित यौ॥३॥ पुनि आप तनें गुन-

गोत्र कर्म ७
वेदनीय कर्म
नारकीय दुःख
जिनवाणी प्रचारक कार्यालय
कलकत्ता

माहिं सही। सुर मग्न रहैं जितने सब ही ॥ तिनकी वनिता गुन गावत हैं। लय माननिसों मनभावत हैं ॥ ४ ॥ पुनि नाचत रंग उमंग भरी। तुअ भक्तिविषै पग येम धरी ॥ झननं झननं झननं छननं। सुरलेत तहां तननं तननं ॥ ५ ॥ घननं घननं घनघंट बजै। दृमदं दृमदं मिरदंग सजै ॥ गगनीगनगर्भगता सुगता। ततता ततता अतता वितता ॥६॥ धृगतां धृगतां गति बाजत हैं। सुरताल रसाल जु छाजत हैं ॥ सननं सननं सननं नभमैं। इकरूप अनेक जु धारि भमैं ॥ ७ ॥ कइ नारि सु वीन बजावति हैं। तुमरो जस उज्जल गावति हैं ॥ करतालविषै करताल धरैं। सुरताल विशाल जु नाद करैं ॥ ८ ॥ इन आदि अनेक उछाहभरी। सुरि-भक्ति करैं प्रभुजी तुमरी ॥ तुमही सब विघ्नविनाशन हो। तुमही निजआनँद भासन हो ॥ तुमही चित चिंतितदायक हौ। जगमाहिं तुमी सब लायक हौ ॥ तुमरे पनमङ्गल-माहिं सही। जिय उत्तम पुन्यलियो सबही ॥ हमको तुमरी शरनागत है। तुमरे गुनमें मन पागत है ॥११॥ प्रभु मो हिय आप सादा बसिये। जबलों वसुकर्म नहीं नसिये ॥ तबलों तुम ध्यान हिये वरसो। तबलों श्रुत-चिंतन चित्त रतो ॥ १२ ॥ तबलों तब चारित चातुर हों। तबलों शुभ भाव सुगाहतु हों ॥ तबलों सतसं-गति नित्त रहौ। तबलों मम संजम चित्त गहौ॥ १३॥

जबलों नहीं नाश करों अरिकों। शिवनारि वरों समता धरिको ॥ यह द्यो तबलों हमको जिनजी। हम जाचतु हैं इतनी सुनजी ॥ १४ ॥

घत्तानन्द—श्रीवीरजिनेशा नमितसुरेशा, नाग-नरेशा भगतिभारा। बृंदावन, ध्यावै विघन नशावै, बांछित पावै शर्म वरा ॥ १५ ॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

दोहा—श्रीसनमतिके जुगलपद, जो पूजै धरि प्रीत।
बृंदावन सो चतुरनर, लहै मुक्तिनवनीत ॥ १६ ॥

इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।

६१—श्रीपार्श्वनाथ जिन पूजा।

अडिल्ल—पारस मेरु समान ध्यानमें थिर भये।
कमठ किये उपसर्ग सबै छिनमें जये ॥
ज्ञान भान उपजाय हानि बिधि शिव वरी।
आह्वानन विधि करूं प्रणमि त्रिविधा करी ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र। अत्र अवतर अवतर। संवौषट् ॥ १ ॥
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट् ॥ ३ ॥

गीता छन्द।

शरद इन्दु समान उज्जल स्वच्छ मुनि चित सारसौ।
शुभ मलय मिश्रित भृङ्ग भरिहूँ शीतअतिही तुसारसौ ॥
सो नीर मनहर तृषा नाशन, हिमन उद्भव ल्याय ही।
श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र पूजूं हृदै हरष उपाय ही ॥ जलं ॥

घनसार अगर मिलाय कुंकुम, मलय संग घसाय ही।
अतिशीत होय सनेह उस्न जु, बूंद एक रलाय ही ॥ सो
गंध भवतपनाश कारन, कनक भाजन ल्यायही ।श्री०। चं०॥
सरित गंगा अंबु सींची, सालि उज्जल अति घनी।
दुति धरै मुक्ताकी मनोहर, सरल दीरघ जुत अनी ॥ सो
अछित औघ अखण्ड कारन, अखैं पदकूं ल्यायही ॥अ०॥
कनकनिर्भय रतन जड़िये, पञ्च वरन सुहावने। प्रसूत
सुन्दर अमर तरुके, गन्धजुत अति पावने ॥ सो लेय
समरनिवारकारण, घ्राण चक्खि सुहावही ॥ श्री० पुष्पं॥
लछिमी निवास सरोज उद्भव, तथा सोमथकी भरै।
आमोद पावन मिष्ट अति चित, अमी भुंजनको हरै ॥ सो
चारुरसनैवेद कारण, छुधा नाशन ल्यायही ॥ नैवेद्यं ॥
कनक दीप मनोग मणिमय, भानभासुर सोहने।
तम नसै ज्यों घन पवन नासै, धूमवर्जित सोहने ॥ मम
मोह निविड विध्वंस कारण, लेय जिनगृह आयही ॥दीपं
श्रीखण्ड अगर दशांग धूप, सु कनक धूपायनि भरैं।
आमोदतैं अलिवृन्द आवैं, गूंजतैं मनकूं हरैं। वसु कर्म
दुष्ट विध्वंसकारण, अग्निसंग जरायही ॥ श्रीपा० ॥धूपं॥
अति मिष्टफल मनोज्ञ पावन, चक्खि घ्राणनकूं हरैं।
अलि गुञ्ज करत सुगन्ध सेती, सुधाकी सरभरि करैं।
सो फल मनोहर अमरतरुके, स्वर्णथाल भराय ही ॥फलं॥
सलिल मुक्त सु अगर चंदन अछित उज्जल ल्यायही।

वर कुसुम चरुतैं छुधा नाशै, दीप ध्वांत नसायही ॥
करि अर्घ धूप मनोग्य फल लै, "राम" शिवसुख दायही।
श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र पूजूं, हृदै हरष उपायही ॥महार्घं॥

पञ्चकल्याणक।

दोहा—प्राणत स्वर्ग थकी चये, बामा उर अवतार।
दोज असित बैसाख ही, लयो जजूं पदसार ॥१॥

ओं ह्रीं बैसाखकृष्णद्वितीयाया गर्भमंगलमंडिताय पार्श्वनाथजिने० ॥ अर्घं ॥

पौह कृष्ण एकादशी, तीन ज्ञानजुत देव।
जनमैं हरि सुर गिरि जजे, मैं जजहूं करि सेव ॥२॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णाद्वितियायां जन्ममङ्गलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिने० ॥अर्घं ॥

दुद्धर तप सुकुमार वय, काशी देश विहाय।
पोह कृष्ण एकादशी, धर्यौ जजूं गुणगाय ॥३॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णद्वादश्या तपोमंगलमंडिताय पार्श्वनाथ जिने० ॥ अर्घं ॥

कृष्ण चौथि शुभ चैतकी, हने घाति लहि ज्ञान।
कह्यौ धर्म दुविधा मुदा, जजूं बोध भगवान ॥४॥

ओं ह्रीं चैतकृष्णचतुर्दश्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय ॥अर्घं॥

सप्तमि श्रावण शुकल ही, शेष कर्म हनिवीर।
अविचल शिवथानक लयो, जजूं चरण धर धीर ॥५॥

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय पार्श्व नाथ जिने० ॥ अर्घं ॥

अथ जयमाला।

दोहा—पार्श्वनाथ जिनके नमूं, चरण कमल सुखसार।
[illegible] तुम हरयौ, मुझ तारो भव तार

चाल—ते साधु मेरे उर बसो मेरी हरहु पातक पीर।

श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र, वंदू, शुद्ध मनवचकाय। धनि पिता अश्वसेनजी, धनि धन्य वामामाय॥ धनि जनम काशी देशमें बानारसी शुभ ग्राम। प्रभु पास द्यौ मुझ दासकी सुनि अरज अविचल ठाम॥ १॥ अतिशय मनोहर सजल जलद समान सुन्दर काय। मुख देखिकैं ललचाय लोचन नैक तृपति न थाय॥ पदकमलनखद्युतिकवल चपला कोटिरवि छवि स्याम। प्रभु पास०॥ २॥ है अधोमुख पंचाग्नि तपतो कमठको चर क्रूर। तिन अगनि जरते नाग बोधे देह व्रच वृष पूर॥ वे भये है धरनेन्द्र पद्मा भवनत्रिक ऋद्धि धाम॥ प्रभु० ॥ ३॥ इम उरग मरत निहारिकैं सब अथिर शरन न जोय। संसार यो भ्रम जाल है जिम चपल चपला होय॥ हूँ एक चेतन सासतो शिव लहूं तजिकैं धाम। प्रभुपास०॥ ४॥ इम चितवतां लोकांतके सुर आय पूजे पाय। परणाम करि संबोधि चाले चितवते गुण ध्याय॥ धनिधन्य वय सुकुमारमें तप धर्यो अतिबल धाम। प्रभुपास०॥ ५॥ वंदू समै जिनधरी दिक्षा विहरि अहिछिति जाय। तिन ठये वनमें दुष्ठ वोसुर कमठको चर आय॥ अतिरूप भीषण धारिकैं फुंकार पन्नग स्याम। प्रभु पास०॥ ६॥ ह्वै तुंग वारण सिंघ गरज्यौ उपलरज बरसाय। करि अगनि बरषामेघ मम्मल

अत्यंत निरभय
तड़ित परलय वाय ॥ प्रभु धीर वीर
असुरको बल खाम । प्रभु पास० ॥७॥ वाही समै धर-
णेंद्रको नय सुकुट कंप्यो पीठ । हरि आय सिंघासन रच्यौ
फणमंड कीनों ईठ ॥ तब असुर करनी भई निरफल
अचल जिन जिम धाम ॥ प्रभु पास० ॥ ८ ॥ धरि ध्यान
जोग निरोधिकैं चउघाति कर्म उपारि । लहि ज्ञान केव-
लतैं चराचर लोक सकल निहारि ॥ समवादि भूति
कुवेर कीनी कहै किम बुद्धि खाम । प्रभु पास० ॥ ९ ॥
हरि करी नुति कर जोरि विनती धन्य दिन यह बार ।
धनि घड़ी या प्रभु पासजी हम लहैं भवकी पार ॥ धिन
धन्य वानी सुनी मैं अघनाशनी पुनि धाम ॥ प्रभु पास०
॥ १० ॥ बसु कर्म नाशि विनासि वपु शिवनयरि पाई
बीर । बसु द्रव्यतैं वह थान पूजे टरैं सबही पीर ॥ सो
अचल हैं सम्मेदपैं सम भाव हैं बसु जाम । प्रभु पास०
॥११॥ कर जोरिकैं "रामचंद" भाषैं अहो धनि तुम देव
भवि बोधिकैं भवसंधुतारे तरन तारन टेव ॥ मैं नमत
हूँ मो तारि अबही ढील क्यों तुम काम । प्रभु पास०
॥१२॥ निति पढ़ै जे नरनारि सब ही हरें तिनकी पीर ।
सुर लोक लहि नर होय चक्री काम हलधर बीर ॥ फुनि
सर्व कर्म जु घाति कैं लहि मोख सब सुख धाम । प्रभु
पास द्यो मुझ दासकी सुनि अरज अविचल ठाम ॥१३॥
इति स्वाहा ॥ समाप्त ॥

६२—सप्तऋषिपूजा।

छप्पय—प्रथम नाम श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषीश्वर। तीसर मुनि श्रीनिचय सर्वसुंदर चौथो वर॥ पंचम श्रीजयवान विनयलालस षष्ठम भनि। सप्तम जयमित्राख्य सर्व चारित्रधाम गनि॥ ये सातौ चारण-ऋद्धिधर, करूं तासु पद थापना। मैं पूजूं मनवचकाय-करि, जो सुख चाहूं आपना॥

ओं ह्रीं चारणर्द्धिधरश्रीसप्तर्षीश्वरा। अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

गीता छंद—शुभतीर्थउद्भव जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायके॥ भव तृषाकंद निकन्द कारण, शुद्ध घट भर-वायके॥ मन्वादि चारण ऋद्धिधारक, मुनिनकी पूजा करूँ। ता करें पातिक हरें सारे, सकल आनंद विस्तरूँ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वस्वरमन्वनिचयसर्वसुन्दरजयवानविनयलालसजयमित्रा०जलं०॥

श्रीखण्ड कदलीनन्द केशर, मन्द २ घिसायके। तसुगंध प्रसरित दिगदिगन्तर, भरकटोरी लायके॥मन्वा०चंदनं
अति धवल अक्षत खण्ड वर्जित, मिष्ट राजन भोगके कल धौत थारा भरतसुंदर,चुनित शुभउपयोगके, म०।अक्ष०
बहु वर्ण सुवरण सुमन आछे,अमल कमल गुलाबके, केत की चम्पा चारु मरुआ, चुने निजकर चावके मंन्वा०पुष्पं
पकवान नाना भांति चातुर, रचित शुद्ध नये नये। सद-मिष्ट लाडू आदि भर बहु, पुरटके थारालये॥म०॥नैवेद्यं

कलधौत दीपक जड़ित नाना, भरित गोघृतसारसों। अति ज्वलित जगमग जोति जाकी, तिमिरनाशनहारसों ॥दीपं॥ दिक्चक्र गंधित होत जाकर, धूप दशअंगी कही। सो लाय मनवचकाय शुद्ध, लगायकर खेऊं सही॥ मंवा०॥ धूपं॥ वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायके। द्रावड़ी दाडिम चारु पुंगी थाल भरभर लायके॥ मन्वा० ॥फलं॥ जल गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना। फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ कीजे पावना ॥म० अर्घं॥

जयमाला।

छंद त्रिभंगी—वंदू ऋषि राजा, धर्म जहाजा, निज पर काजा करत भले। करुणाके धारी, गगन विहारी, दुख अपहारी, भरम दले॥ काटत जमफंदा, भविजन-वृन्दा, करत अनंदा चरणनमें। जो पूजैं ध्यावें, मङ्गल-गावें फेर न आवैं भववनमें॥ १॥

छंद पद्धरी—जय श्रीमनु मुनिराजा महंत। त्रस थावरकी रक्षा करंत॥ जय मिथ्यातम नाशक पतंग। करुणारसपूरित अंग अंग ॥१॥ जय श्रीस्वरमनु अकलं-करूप। पद सेव करत नित अमर भूप॥ जय पंच अक्ष जीते महान। तप तपत देह कंचन समान॥ २॥ जन निचय सप्त तत्त्वार्थभास। तप रमातनौ तनमें प्रकाश॥ जय विशयरोध संबोधभान। परणतिके नाशन अचल ध्यान॥ ३॥ जय जयहि सर्वसुन्दर दयाल। लखि

इन्द्‌जालवत जगतजाल ॥ जय तृष्णाहारी रमण राम । निज परिणतिमें पायो विराम ॥ ४ ॥ जय आनँद्घन कल्यानरूप । कल्याण करत सबको अनूप । जय मद्‌नाशन जयवान देव । निरमद विरचित सब करत सेव ॥५॥ जय जयहिं विनयलालर अमान । सब शत्रु मित्र जानत समान ॥ जय कृशितकाय तपके प्रभाव । छवि छटा उड़ति आनंद्‌दाय ॥ ६ ॥ जय मित्र सकल जगके सुमित्र । अनगिनत अधम कीने पवित्र ॥ जय चंद्र वद्‌न राजीव नैन । कब हूँ विकथा बोलत न बैन ॥ ७ ॥ जय सातौ मुनिवर एकसंग । नित गगन-गमन करते अभंग जय आये मथुरापुर मंझार । तहँ मरी रोगको अति प्रचार ॥८॥ जय जय तिन चरणनिके प्रसाद । सब मरी देवकृत भई बाद ॥ जय लोक करै निर्भय समस्त । हम नमत सदा नित जोरि हस्त ॥९॥ जय ग्रीषमऋतु पर्वत मंझार । नित करत अतापन योग सार ॥ जय तृषा परीषह करत जेर । कहुं रंच चलत नहिं मन सुमेर ॥१०॥ जय मूल अठाइस गुणन धार । तप उग्र तपत आनंद्‌कार ॥ जय वर्षाऋतुमें वृक्षतीर । तहं अति शीतल झेलत समीर ॥११॥ जय शीतकाल चौपट मंझार । कै नदी सरोवर तट विचार ॥ जय निवसत ध्यानारूढ़ होय रंचक नहिं मटकत रोम कोय ॥ १२ ॥ जय मृतकासन वज्रासनीय । गोदूहन इत्यादिक गनीय ॥ जय आसन

नानाभांति धार। उपसर्ग सहित ममता निवार ॥१३॥ जय जपत तिहारो नाम कोय। लख पुत्रपौत्र कुल वृद्धि होय ॥ जय भरे लक्ष अतिशय भंडार। दारिद्रतनो दुख होय छार ॥ जय चोर अग्नि डांकिन पिशाच। अरु ईति भीति सब नसत सांच ॥ जय तुम सुमरत सुख लहत लोक। सुर असुर नवत पद देत धोक ॥

रोला—ये सातों मुनिराज महातप लक्ष्मीधारी।
परम पूज्य पद धरैं सकल जगके हितकारी ॥
जों मनवचतन शुद्ध होय सेवै औ ध्यावै।
सो जन मनरंगलाल अष्ट ऋद्धिनकों पावै ॥

दोहा—नमन करत चरनन परत, अहो गरीबनिवाज।
पंच परावर्तननितैं, निरवारो ऋषिराज ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

६३—श्रीसम्मेद शिखरपूजा विधान

दोहा—सिद्धक्षेत्र तीरथ परम, हैउत्कृष्ट सु थान ॥
शिखरसम्मेद सदा नमौ, होय पापकी हानि ॥१॥
अगणित मुनि जहतैं गये लोक शिखरके तीर।
तिनके पदपंकज नमूं, नाशैं भवकी पीर ॥२॥

अडिल्ल—है उज्ज्वल वह क्षेत्र सुअति निरमल सही। परम पुनीत सुठौर महा गुणकी मही। सकल सिद्धिदातार महा रमणीक है। बन्दौं निज सुखहेत [illegible] ॥ ३ ॥

सोरठा—शिखरसमेद महान, जगमैं तीर्थप्रधान है।
महिमा अद्भुत जान, अल्पमती मैं किमि कहों॥

सुन्दरी छंद—सरस उन्नत क्षेत्र प्रधान है। अति सु उज्वल तीर्थ महान है॥ करहिं भक्ति सु गुण गण गायकें। वरहिं सुर शिवके सुख जायकें॥

अडिल्ल—सुर हरि नर इन आदि और बंदन करें। भव-सागरतैं तिरे, नहीं भवमें परे। सफल होय तिन जन्म-शिखरदरशन करैं, जनम-जनमके पाप सकल छिनमैं टरैं॥

पद्धरी छन्द—श्रीतीर्थंकर जिनबर जु वीश। अरु मुनि असंख्य सबगुनन ईस॥ पहुंचे जहंतैं कैवल्यधाम। तिनको अब मेरी है प्रणाम॥ ७॥

गीतिका छंद—सम्मेदगढ़ है तीर्थ भारी सबहिकों उज्वल करै। चिरकालके जे कर्म लागे दर्शतैं छिनमैं टरैं॥ है परम पावन पुण्यदायक अतुल महिमा जानिये। अरु है अनूप सुरूप गिरिवर तास पूजन ठानिये॥ ८॥

दोहा—श्रीसम्मेद शिखर सदा, पूजौं मनवचकाय।
हरत चतुर्गतिदुःखकों, मनवांछित फलदाय॥

ओं ह्री श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्ध अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

अष्टक।

अडिल्ल—क्षीरोदधिसम नीर सुनिरमल लीजिये।

कनक कलशमें भरकैं धारा दीजिये ॥ पूजौं शिखरसमेद सुमनवचकायजी । नरकादिक दुख टरें अचलपद पायजी ॥

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यो सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

पयसों घसि मलयागिरिचंदन लाइये । केसरि आदि कपूर सुगंध मिलाइये ॥पू०॥ चंदनं ॥ २ ॥ तंदुल धवल सुवासित उज्वल धोयकै । हेमरतनके थार भरों शुचि होयकै ॥ पूजौं० ॥ अक्षतान् ॥ ३ ॥ सुरतरुके सम पुष्प अनूपम लीजिये । कामदाहदुखहरणचरण प्रभु दीजिये पूजौं० ॥ पुष्पं ॥४॥ कनकथार नैवेद्य सु षटरसतैं भरे । देखत क्षुधा पलाय सुजनि आगैं धरे ॥ पूजौं० ॥नैवेद्यं ॥ ५ ॥ लेकर मणिमय दीप सुज्योति प्रकाश है । पूजत होत सुज्ञान मोहतम नाश है ॥ पूजौं० ॥ नरका० दीपं ॥ ६ ॥ दशबिधि धूप अनूप अगनिमैं खेवहूं । अष्टकर्म को नाश होत सुख लेवहूं ॥ पूजौं० ॥ फलं ॥ ८ ॥ जल गंधाक्षतपुष्प सुनेवज लीजिये । दीप धूप फल लेकर अर्घ सु दीजिये ॥ पूजौं० अर्घ्यं ॥ ९ ॥

पद्धरि छन्द—श्रीविंशति तीर्थंकर जिनेन्द्र । अरु असंख्यात जहते मुनेन्द्र ॥ तिनकों करजोरि करौं प्रणाम । जिनको पूजों तजि सकल काम ॥ महार्घं ॥

अडिल्ल—जे नर परम सुभावनतैं पूजा करैं । हरि हलि चक्री होंय राज छह खंड करैं ॥ फेरि होंय धरणेंद्र

इन्द्रपदवीधरैं । नानाविध सुखभोगि बहुरि शिव-तिय वरैं ॥ इत्याशीर्वादः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

छंद जोगीरासा ।

श्रीसम्मेदशिखरगिरि उन्नत, शोभा अधिक प्रमानों। विंशति तिहिंपर कूट मनोहर, अद्भुत रचना जानो ॥ श्रीतीर्थंकर बीस तहातैं, शिवपुर पहुंचे जाई । तिनके पदपंकजजुग पूजौं, अर्घ प्रत्येक चढ़ाई । पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

नं० २४ अजितनाथ सिद्धवर कूट ।

प्रथम सिद्धिवरकूट सुजानो, आनंद मंगलदाई । अजितनाथ जहतैं शिव पहुंचै पूजों मनवचकाई ॥ कोडि जु अस्सी एक अरब मुनि, चौवन लाख जु गाई । कर्म काटि निर्वाण पधारे, तिनकों अर्घ चढाई ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र सिद्धवर कूटतें, अजितनाथ जिनेन्द्रादि मुनि एक अर्ब असीकोटि चौवनलाख सिद्धपदप्राप्तेभ्य सिद्धक्षेत्रेभ्यो ॥अर्घं॥

नं० १४ संभवनाथ धवलकूट ।

धवलदत्त है कूट दूसरो, सब जियको सुखकारी । श्रीसंभवप्रभु मुक्ति पधारे पापतिमिर को टारी ॥ धवल-दत्त दे आदि मुनी, नवकोडाकोडी जानो । लाख बह-त्तरि सहस वियालिस, पंचशतक ऋषि मानो ॥ कर्म-नाशकरि शिवपुर पहुंचे, बंदों शीश नवाई । तिनके पदयुग जजहुं भावसों, हरषि हरषि चितलाई ॥ ३ ॥

ओंह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रधवलकूटतैं सम्भवनाथजिनेन्द्रादि मुनित्रौकोडा कोड़ीवहत्तरलाखव्यालीसहजारपाचसौसिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो ॥अर्घं॥

नं० १६ अभिनन्दननाथ आनन्दकूट।

चौपाई—आनँदकूट महासुखदाय। अभिनंदन प्रभु शिवपुर जाय॥ कोडाकोडी बहत्तर जान। सत्तर कोडि लखछत्तिस मान॥ सहस वियालिस शतक जु सात। कहे जिनागममैं इह भांत॥ एऋषि कर्म काटि शिव गये। तिनके पदजुग पूजत भये॥ ४॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रे आनन्दकूट श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्रादिमुनि वहत्तरकोडाकोडी सत्तरकोडिछत्तींसलाखव्यालीसहजारसातसौसिद्धपद प्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

नं० १६ सुमतिनाथ अविचलकूट। अडिल्ल।

अविचल चौथो कूट महासुख धामजी। जहंतैं सुमतिजिनेश गये निर्वाणजी॥ कोडाकोडी एक मुनिश्वर जानिये। कोटि चुरासी लाख बहत्तरि मानिये॥ सहस इक्यासी और सातसौ गाइये। कर्म काटि शिवगये तिन्हें शिर नाइये॥ सो थानक मैं पूजूं मनवचकायजी। पाप दूर हो जांय अचलपद पाय जी॥ ५॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रअविचलकूटतैं सुमतिनाथजिनेद्रादि मुनि एक कोड़ाकोड़ी चौरासीकोडि वहत्तरलाख इक्यासीहजार सातसौ सिद्धपद प्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ निर्वपामीति स्वाहा॥ ५॥

नं० ८ पद्मप्रभ मोहनकूट। अडिल्ल।

मोहन कूट महान परम सुंदर कह्यो। पद्मप्रभु जिन-

राज जहां शिवपुर लह्यो ॥ कोटि निन्यानव लाख सतासी जानिये । सहस तियालिस और मुनीश्वर मानिये ॥ सप्त सैंकरा सत्तर ऊपर बीस जू । मोक्ष गए मुनि तिन्हें नमूं नित शीसजू ॥ कहै जवाहरलाल दोयकर जोरिकै। अविनाशी पद दे प्रभु कर्मन तोरिकै ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रमोहनकूटतै पद्मप्रभजिनेन्द्रादिमुनि निन्यानबे कोड़ि सतासीलाख निताlलिसहजार सातसौ नब्बे सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

नं० २२ सुपार्श्वनाथ प्रभासकूट । सोरठा ।

कूट प्रभास महान,सुंदर जगमन-मोहनो । श्रीसुपार्श्वभगवान, मुक्ति गये अघ नाशिकैं॥ कोडाकोडी उनचास, कोडि चुरासी जानिये । लाख बहत्तर खास, सात सहस हैं सातसौ ॥ और कहे व्यालीस, जहंतैं मुनि मुक्ती गए । तिनहिं नमैं नित शीश, दास जवाहर जोरकर ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रप्रभासकूटश्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्रादि मुनि उनचास कोड़ाकोड़ी चौरासीकोडि बहत्तरलाख सातहजार सातसौ बियालिस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

नं० ६ चंद्रप्रभ ललितकूट ।

दोहा—पावन परम उतंग है, ललितकूट है नाम। चंद्रप्रभ शिवकों गये, बंदौं आठों जाम ॥ कोडाकोडी जानिये, चौरासी ऋषिमान। कोडि बहत्तर अरुकहे, अस्सीलाख प्रमान॥ सहस चुरासी पंचशत, पचपन कहे

मुनिंद । वसुकरमनको नाशकर, पायो सुखको कंद । ललितकूटतैं शिवगये, बंदौं शीश नवाय । जिनपद पूजौं भावसों, निजहित अर्घ चढ़ाय ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रललितकूटतैं चंद्रप्रभजिनेन्द्रआदिमुनि चौरासीकोडाकोडी बहत्तरकोडि असीलाख चौरासीहजार पाचसौ पचपन सिद्धपदप्राप्तेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

नं० ७ पुष्पदन्त सुप्रभकूट । पद्धरी छन्द ।

श्री सुप्रभकूट सु नाम जान । जहँ पुष्पदंतको मुकति थान ॥ मुनि कोडाकोडी कहे जु भाख । नव ऊपर नव-भर कहे लाख ॥ शतचारि कहे अरु सहससात । ऋषि-अस्सी और कहे विख्यात ॥ मुनि मोक्षगए हनि कर्म जाल । बंदौं कर जोरि नमाय भाल ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र सुप्रभकूटतैं पुष्पदन्तजिनेन्द्रादिमुनि एक कोड़ाकोड़ी निन्यानवेलाख सात हजार चारसौ अस्सी सिद्धपद प्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ ९ ॥

नं० १२ शीतलनाथ विद्युतकूट । सुन्दरी छन्द ।

सुभग विद्युतकूट सु जानिये । परम अदभुत तापर मनिये ॥ गये शिवपुर शीतलनाथजी । मनहुं तिन इह करधर माथजी ॥ मुनि जु कोडाकोडि अठारहू । मुनि जु कोडि बियालिस जानहू ॥ कहे और जु लाखबत्तीस जू । सहसब्यालिस कहे यतीश जू ॥ अवर नौसौ पांच जु जानिये । गए मुनि शिवपुरको मानिये ॥ करहिं जे पूजा मन लायकैं । धरहिं जन्म न भवमें आयकैं ॥ १० ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रविद्युतकूटतैं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्रादि मुनि एक कोड़ाकोड़ी व्यालीसकोडि वत्तीसलाख व्यालीसहजार नौसौ पांच सिद्ध पदप्राप्तेभ्यः सिद्ध क्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

नं० ६ श्रेयांसनाथ संकुलकूट । जोगीरासा ।

कूट जु संकुल परममनोहर, श्रीश्रेयांस जिनराई । कर्मनाशकर शिवपुर पहुंचे, वंदौं मनवचकाई ॥ छ्यानव कोडाकोडि जानो, छ्यानवकोडि प्रमानो ॥ लाख छ्या-नवे सहस मुनीश्वर, साढ़े नव अव जानो ॥ ता ऊपर व्यालीस कहे हैं श्रीमुनिके गुण गावैं ॥ त्रिविधयोग करि जो कोइ पूजै, सहजानंद तहं पावैं ॥ सिद्ध नमों सुखदा-यक जगमें, आनंदमंगलदाई । जजों भावसों चरण जिनेश्वर, हाथ जोड़ शिरनाई ॥ परम मनोहर थान सु पावन, देखत विघन पलाई ॥ तीन काल नित नमत जवाहर मेटो भवभटकाई । जहंतैं जे मुनि सिद्ध भये हैं, तिनको शरण गहाई । जापदको तुम प्राप्त भए हो, सो पद देहु मिलाई ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रे संकुलकूटतैं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्रादि-मुनि छ्यानवेकोड़ाकोड़ी छ्यानवेकोड़ि छ्यानवेलाख नवहजार पाचसौ विया-लेस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

नं० २३ विमलनाथ सुवीरकुलकूट । कुसुमलता छंद ।

श्रीसुवीरकुलकूट परम सुन्दर सुखदाई, विमलनाथ भगवान जहां पंचमगति पाई । कोडि सु सत्तर सात-

लाख षट सहस जु गाई, सात सतक मुनि और बिया-
लिस जानो भाई ॥

दोहा—अष्टकर्मको नष्टकर मुनि अष्टमछिति पाय ।
तिन प्रति अर्घ चढ़ावहूँ, जनम मरण दुखजाय ॥
विमलदेव निरमल करण, सब जीवन सुखदाय ।
मोतीसुत वंदत चरण, हाथ जोरि शिरनाय ॥१२॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रस्वयंभूकूटतैं बिमलनाथजिनेन्द्रादि मुनि सत्तरकोडि सातलाख छहहजारसातसौब्यालीससिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १२ ॥

नं० १३ अनतनाथ स्वयंभूकूट । अडिल्ल ।

कूट स्वयंभू नाम परम सुन्दर कह्यो । प्रभु अनंत जिननाथ जहां शिवपद लह्यो ॥ मुनि जु कोडाकोडि छया-नवे जानिये । सत्तर कोडि जु सत्तरलाख प्रमानिये ॥ सत्तर सहस जु और मुनीश्वर गाइये । सात सतकता ऊपर तिनको ध्याइये ॥ कहैं जवाहरलाल सुनो मनलायकैं । गिरिवरकों नित पूजो अति सुखपायकैं ॥

सोरठा—पूजत विघन पलाय, ऋद्धिसिद्धि आनंद करै ।
सुरशिवको सुखदाय, जो मनवच पूजा करै ॥१३॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रस्वयंभूकूटतै अनंतनाथजिनेन्द्रादि मुनि छ्यानवेकोड़ाकोड़ी सत्तरकोड़ि सत्तरलाख सत्तर हजार सातसो सिद्धपद-प्राप्तेभ्यो अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ॥ १३ ॥

नं० १८ धर्मनाथ सुदत्तकूट । चौपाई ।

कूट सुदत्त महाशुभ जान । श्रीजिनधर्मनाथको थान । मुनि कोडाकोडी उनईस । और कहे ऋषि कोड़ि उनीश ॥ लाख जु नव नवसहस सुजान । सात शतक पंचावन मान ॥ मोक्ष गये वे कर्मनचूर । दिवसरु रयन नमों भर-पूर ॥ महिमा जाकी अतुल अनूप । ध्यावत वर इंद्रा-दिक भूप ॥ शोभत महा अचलपदपाय । पूजौं आनंद मंगलगाय ॥ दोहा—परमपुनीत पवित्र अति, पूजत शत सुरराय । तिह थानकों देखकर, मोतीसुत गुणगाय ॥ पावन परम सुहावनो, सब जीवन सुखदाय । सेवत सुर-हरि नर सकल मनवांछित पदपाय ॥ १४ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुदत्तकूटतैं धर्मनाथजिनेन्द्रादिमुनि उन्नीस कोडाकोडी उन्नीसकोड़ि नौलाख नौहजार सातसौ पंचानवे सिद्धपदप्राप्तेभ्यो अर्घ ॥ १४ ॥

नं० २० शान्तिनाथ-शातिप्रभकूट । सुगीतिका छन्द ।

श्रीशांतिप्रभ है कूट सुन्दर, अति पवित्र सुजानिये। श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्र जहंतैं, परम धाम प्रमानिये ॥ नवजु कोड़ाकोड़ि मुनिवर लाख नव अब जानिये । नौ सहस नवसै मुनि निन्यानव, हृदयमें धर मानिये ॥

दोहा—कर्मनाश शिवको गए, तिन प्रति अर्घ चढ़ाय ।
त्रिविधयोग करि पूज हैं, मनवांछित फलपाय ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रशांतिप्रभकूटतैं । शान्तिनाथजिनेन्द्रादि-

मुनि नौकोड़ाकोड़ी नौलाख नौहजार नौसै निन्यानवे सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

नं० २ कुन्थुनाथ ज्ञानधरकूट । गीतिका छन्द ।

ज्ञानधर शुभकूट सुन्दर, परम मनमोहन सही। जहंतैं श्रीप्रभुकुन्थुस्वामी, गये शिवपुरकी मही। कोड़ा सु कोड़ि छयानवें, मुनि कोड़िछयानव जानिये। अर लाखबत्तिस सहसछयानव, शतक सात प्रमानिये ॥

दोहा—और कहे ब्यालीस मुनि, सुमिरों हिये मझार।
तिनपद पूजों भावसों, करै जु भवदधिपार ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रज्ञानधरकूटतैं श्रीकुन्थुनाथजिनेद्रादिमुनि छयानवे कोड़ाकोडी छयानवे कोडि बत्तीसलाख छयानबे हजार सातसौ बियालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति ॥

नं० ४ अरनाथ नाटककूट । दोहा

कूट जु नाटक परमशुभ, शोभा अपरंपार। जहंतैं। अरजिनराजजी, पहुंचे मुक्ति-मझार ॥ कोड़िनिन्यानव जानि मुनि, लाक्षनिन्यावन और। कहे सहस निन्यानवै बंदौं कर जुग जोर ॥ अष्ट कर्मको नष्टकरि, मुनि अष्टमक्षिति पाय। ते गुरु मो हिरदै बसौ, भवदधि पार लगाय ॥

सोरठा—तारणतरण जिहाज, भवसमुद्रके बीचमैं पकरो मेरी बांह, डूबतसे राखो मुझे ॥ अष्टकरम दुख दाय, ते तुमने चूरे सबै। केवलज्ञान उपाय, अविनाशी

पद पाइयो ॥ मोतीसुत गुणगाय, चरणन शीश नवायकै। मेटो भवभटकाय, मांगत अब बरदान यो ॥१७॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रनाटककूटतैं अरनाथजिनेन्द्रादिमुनि निन्यानवैकोड़ि निन्यानवै लाख निन्यानवै हजार सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्व० ॥

नं० ५ मल्लिनाथ सम्बलकूट। सुन्दरी छन्द।

कूट सम्बल परमपवित्र जू। गये शिवपुर मल्लिजिनेश जू॥ मुनि जु छ्यानवकोड़ि प्रमानिये। पदजजत हिरदय सुख आनिये॥ मोती दामछंद—प्रभो प्रभुनाम सदा सुखरूप, जजौं मनमैं धर भाव अनूप। टरै अघपातिक जाहिं सुदूर, सदा जिनको सुख आनंदपूर ॥ डरै ज्यों नाग गरुड़को देखि, भजै गजजुत्थ ज़ु सिंहहि पेख। तुमनाम प्रभू दुख हरण सदा, सुखपूर अनूपम होय मुदा॥ तुम देव सदा अशरण शरणं, भट मोहबली प्रभुजी हरणं। तुम शरण गही हम आय अबैं, मुझ कर्मबली दिढ़ चूर सबैं ॥ १८ ॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रसम्बलकूटतै श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्रादि छ्यानवैं कोड़ि मुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धपदक्षेत्रभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

नं० ६ मुनिसुव्रत निर्जरकूट। मदअवलिप्तकपोल छंद।

मुनिसुव्रत जिननाथ सदा आनंदके दाई। सुन्दर निर्जरकूट जहांतैं शिवपुर जाई॥ निन्यानवकोड़ाकोड़ि कहे मुनि कोड़ि सत्याना। नवलख कोड़ि मुनिंद कहे नौसौ निन्याना॥

सोरठा—कर्म नाशि ऋषिराज, पंचमगतिके सुख लहे।
तारणतरणजिहाज, मो दुख दूर करो सकल ॥

भुजंगप्रयात—बली मोहकी फौज प्रभुजी भगाई, जग्यो ज्ञानपंचम महा सुक्खदाई। समोशरण धरणेंद्रने तब बनायो, तबै देव सुरपति सबै शीश नायो ॥ जयो जय जिनेन्द्र सुशब्द उचारी, भये आज दर्शन सबै सुक्खकारी। गए सर्व पातक प्रभू दूरहीतैं, जबै दर्श कीने प्रभू दूरहीतैं ॥ सुनी नाथ श्रवनों जु तेरी बड़ाई, गही शरण हमने तुम्हारी सुहाई। बली कर्म नाशै जबै मुक्ति पाई, तिन्हें हाथ जोरें सदा शीश नाई ॥

ओं ह्री श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रनिर्जरकूटतैं मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्रादिमुनि निन्यानवेकोडाकोडि सत्तानवे कोड़ि नौलाख नौसौनिन्यानवे सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ॥ १९ ॥

नं० ३ नमिनाथ मित्रधरकूट। जोगीरासा।

कूट मित्रधर परम मनोहर, सुन्दर अति छविदाई। श्रीनमिनाथ जिनेश्वर जहंतैं, अविनाशी पद पाई ॥ नौ सौ कोड़ाकोड़ि मुनिवर, एक अरब ऋषि जानो। लाख पैंतालिस सात सहस अरु, नौसौ ब्यालिस मानो ॥

दोहा—वसु करमनको नाश कर अविनाशी पद पाय।
पूजों चरणसरोजकों, मनवांछित फलदाय ॥२०॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रमित्रधरकूटतें नमिनाथजिनेन्द्रादिमुनि नौसौकोड़ाकोडि एकअरब पैंतालिसलाख सातहजार नौसौ ब्यालिस सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २० ॥

नं० २६ पार्श्वनाथ। सुवर्णभद्रकूट।

दोहा—सुवरणभद्र जु कूटपै, श्रीप्रभुपारसनाथ।
जहँतैं शिवपुरको गये, नमों जोरिजुग हाथ॥

त्रिभंगी छंद—मुनि कोडिबियासी लाख चुरासी, शिवपुरवासी सुखदाई। सहसहि पैंतालिस सातसौ ब्यालिस, तजिके आलस गुणगाई॥ भवदधितैं तारण पतितउधारण, सब दुखहारण सुख कीजै। यह अरज हमारी सुनि त्रिपुरारी शिवपद भारी मो दीजै॥

छन्द—यह दर्शनकूट अनंत लह्यो। फलषोडशकोटि उपासकह्यो॥ जगमें यह तीर्थ कह्यो भारी। दर्शन करि पाप कटैं सारी॥ मोतीदामछंद—टरैं गति वंदत नर्क तिर्यंच। कबहुं दुखको नहिं पावै रंच॥ यही शिवको जगमें है द्वार। अरे नर वंदों कहत 'जवार'॥

दोहा—पारशप्रभुके नामतैं, विघन दूरि टरि जाय।
ऋद्धि सिद्धि निधि तासको, मिलिहैं निशिदिन आय॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रसुवर्णकूटतें श्रीपार्श्वनाथादिमुनि बियासी करोड़ चुरासीलाखपैंतालिसहजारसातसौ बियालीस सिद्धिपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं०॥ २१॥

अडिल्ल—जे नर परम सुभावथनैं पूजा करैं। हरि हरि चक्री होय राज्य षटखंड करैं॥ फेरि होय धरणेंद्र इंद्रपदवी धरैं। नानाविधि सुख भोगि बहुरि शिवतिय वरैं॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

६४—श्रीगिरनार क्षेत्र पूजा।

दोहा—वंदौं नेमि जिनेश पद, नेमि-धर्म-दातार।
नेमधुरंधर परम गुरु, भविजन सुख कर्तार ॥ १ ॥
जिनवाणीको प्रणमिकर, गुरु गणधर उरधार।
सिद्धक्षेत्र पूजा रचौं, सब जीवन हितकार ॥
उर्जयंत गिरिनाम तस, कह्यो जगत विख्या।
गिरिनारी तासों कहत, देखत मन हर्षात ॥३॥

द्रुतविलंबित तथा सुंदरी छंद—गिरिसुउन्नत सुभगाकार है। पंचकूट उत्तंग सुधार है॥ वन मनोहर शिला सुहावनी। लखत सुंदर मनको भावनी॥ अवर कूट अनेक बने तहां। सिद्ध थान सु अति सुंदर जहां॥ देखि भविजन मन हर्षावते। सकल जन वंदनको आवते॥५॥ त्रिभंगी छंद—तहँ नेमकुमारा व्रत तप धारा कर्म विदारा, शिवपाई। मुनि कोड़ि बहत्तर सात शतक धर तागिरिऊपर सुखदाई॥ है शिवपुरवासी गुणके राशी विधिथिति नाशी ऋद्धिधरा। तिनके गुणगाऊं पूज रचाऊं मन हर्षाऊं सिद्धिकरा॥

दोहा—ऐसे क्षेत्र महान तिहिं, पूजों मन वच काय।
स्थापना त्रयबार कर, तिष्ठ तिष्ठ इत आय ॥

ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र। अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट

अष्टक। कवित्त।

लेकर नीर सुक्षीरसमान महा सुखदान सुप्रासुक भाई। दे त्रय धार जजों चरणा हरना मम जन्म जरा दुखदाई ॥ नेमिपती तज राजमती भयो बालयती तहँतैं शिवपाई ॥ कोंड़ि बहत्तरि सातसौ सिद्ध मुनीश भये सु जजों हर्षाई ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीगिरनारिसिद्धक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

चंदनगारि मिलाय सुगंध हु, ल्याय कटोरीमें धरना। मोहमहातममेटनकाज सु चर्चतु हों तुम्हरे चरना ॥नेमि० ॥ चंदनं ॥ अक्षत उज्वल ल्याय धरों, तहँ पुंज करो मनको हर्षाई। देहु अखयपद प्रभु करुणाकर, फैर न या भववासकराई। नेमि० ॥ अक्षतान् ॥ फूल गुलाब चमेली बेल कदंब सु चंपकबीन सुल्याई। प्रासुकपुष्प लवंग चढ़ाय सु गाय प्रभू गुणकाम नसाई ॥ नेम० ॥ पुष्पं ॥ नेवज नव्य करों भरथाल सुकंचन भाजनमें धर भाई। मिष्ट मनोहर क्षेपत हों यह रोग क्षुधा हरियो जिनराई ॥ नेम० ॥ नैवेद्यं ॥ धूप दशांग सुगंधमई कर खेबहुं अग्निमँझार सुहाई। शीघ्रहि अर्ज सुनो जिनजी मम कर्म महावन देउ जराई ॥ नेम० ॥ धूपं ॥ ले फल सार सुगंधमई रसनाहृद नेत्रनको सुखदाई। क्षेपत हों तुम्हरे चरणाप्रभु देहु हमैं शिवकी ठकुराई ॥ नेम० ॥ फलं ॥ ले वसु द्रव्य सु अर्घ करों धर थाल सुमध्य महा हरषाई

पूजत हों तुमरे चरणा हरिये वसुकर्मबली दुखदाई ॥अर्घं॥

दोहा—पूजत हों वसुद्रव्य ले, सिद्धक्षेत्र सुखदाय।
निजहित हेतु सुहावनो, पूरण अर्घ चढ़ाय ॥ पूर्णार्घं ॥१०॥

पंचकल्याणक अर्घ।

कार्तिक सुदिकी छठि जानो। गर्भागम तादिन मानो॥
उत इंद्र जजैं उस थानी। इत पूजत हम हरखानी॥ १॥

ओं ह्रीं कार्तिकशुक्लाषष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय नेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घं।

श्रावणसुदि छठि सुखकारी। तब जन्म महोत्सव धारी
सुरराज सुमेर न्हवाई। हम पूजत इत सुखदाई। २॥

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लाषष्ठ्यां जन्ममंगलमंडिताय नेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घं॥

सित सावनकी छठि प्यारी। तादिन प्रभु दीक्षा धारी॥
तप घोर बीर तहँ करना। हम पूजत तिनके चरणा॥३॥

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठीदिने दीक्षामंगलप्राप्ताय नेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घं।

एकम सुदि आश्विन मासा। तब केवलज्ञान प्रकाशा॥
हरि समवशरण तब कीना। हम पूजत इत सुख लीना॥४॥

ओं ह्रीं आश्विन शुक्लाप्रतिपदा केवलज्ञानप्राप्तायनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घं।

सित अष्टमि मास अषाढ़ा। तब योग प्रभूने छाडा।
जिन लई मोक्ष ठकुराई। इत पूजत चरणा भाई॥ ५॥

ओं ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्या मोक्षमंगलप्राप्ताय नेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घं।

अडिल्ल—कोड़ि बहत्तरि सत सैकड़ा जानिये। मुनि-
मुक्ति गये तहँतैं सु प्रमाणिये॥ पूजों तिनके चरण

सु मनवचकाय कैं। वसुविध द्रव्यमिलायसुगाय बजा-यकैं ॥ पूर्णार्घं ॥

जयमाला।

दोहा—सिद्धक्षेत्र गिरनारशुभ, सब जीवन सुखदाय।
कहों तासु जैमालिका सुनतहि पाप नशाय ॥

पद्धरीछंद–जय सिद्धक्षेत्र तीरथ महान। गिरिनारि सुगिरि उन्नत बखान ॥ तहँ जूनागढ़ है नगर सार। सौराष्ट्रदेशके अधिविथार ॥ २ ॥ तिस जूनागढ़से चले सोइ। समभूमि कोस वर तीन होइ ॥ दरवाजेसे चल कोस आध। इक नदी बहत है जल अगाध ॥ ३ ॥ पर्वत उत्तरदक्षिण सु दोय। अधि वहत नदी उज्वल सु तोय ॥ ता नदीमध्य कइकुंड जान। दोनों तट मंदिर बने मान ॥ ४ ॥ तह वैरागी वैष्णाव रहाय। भिक्षाकारण तीरथ कराय ॥ इक कोस तहां यह मच्यो ख्याल। आगैं इक वरनदि बहत नाल ॥ ५ ॥ तहँ श्रावकजन करते स्नान। धो द्रव्य चलत आगैं सुजान। फिर मृगीकुंड इक नाम जान। तहं बैरागिनिके बने थान ॥ ६ ॥ वैष्णव तीरथ जहँ रच्यो सोइ। वैष्णव पूजत आनंद होइ ॥ आगे चल डेढ़ सु कोस जाव। फिर छोटे पर्वतको चढ़ाव ॥ ७ ॥ तहं तीन कुंड सोहैं महान। श्रीजिनके युगमंदिर बखान ॥ मंदिर दिगंबरी दोय जान। श्वेतांबरके बहुते प्रमान ॥ ८ ॥ जहँ बनी धर्मशाला सु जोय। जलकुंड

तहां निर्मल सु तोय ॥ तहँ श्वेतांबरगण दिशा जांय। ता कुंडमाहिं नितही नहांय ॥ ९ ॥ फिर आगैं पर्वतपर चढाव । चढ़ि प्रथम कूटको चले जाव ॥ तहं दर्शन कर आगैं सुजाय । तहं द्वुतिय टोंकका दर्श पाय ॥ १० ॥ तहँ नेमनाथके चरण जान । फिर है उतार भारी महान ॥ तहं चढकर पंचम टोंक जाय । अति कठिन चढ़ाव तहां लखाय ॥ ११ ॥ श्रीनेमनाथका मुक्तिथान । देखत नयनों अति हर्षमान ॥ इक बिंब चरनयुग तहां जान । भवि करत बंदना हर्ष ठान ॥ १२ ॥ कोउ करते जय जय भक्ति लाइ । कोऊ थुति पढते तहं सुनाय ॥ तुम त्रिभुवनपति त्रैलोक्यापाल । मम दुःख दूर कीजै दयाल ॥ १३ ॥ तुम राजऋद्धि भुगती न कोय । यह अथिरस्रूप संसार जोय ॥ तज मातपिता घर कुटुम्ब द्वार । तज राजमतीसी सती नार ॥ १४ ॥ द्वादशभावन भाई निदान ॥ पशुबंदि छोड़ दे अभयदान । शेसावनमें दीक्षा सुधार । तप करके कर्म किये सुछार ॥ १५ ॥ ताही बन केवल ऋद्धि पाय । इंद्रादिक पूजे चरण आय ॥ तहं समवशरण रचियो विशाल । मणिपंथ वर्णकर अति रसाल ॥ १६ ॥ तहँ वेदी कोट सभा अनूप । दरवाजे भूमि वनी सुरूप ॥ वसु प्रातिहार्य छत्रादि सार । वर द्वादशि सभा वनी अपार ॥ १७ ॥ करके विहार देशों मझार । भवि जीव करे भवसिंधु पार ॥ पुन टोंक पंच-

मीको सुजाय। शिवनाथ लह्यो आनंद पाय ॥ १८ ॥ सो पूजनीक यह थान जान। बंदत जन तिनके पाप हान ॥ तहतैं सु बहत्तर कोड़ि और। मुनि ससशतक सब कहे जोर ॥ १९ ॥ उस पर्वतसों सब मोक्ष पाय। सब भूमि सु पूजन योग्य थाय ॥ तहं देश देशके भव्य आय। बंदन कर बहु आनंद पाय ॥ २० ॥ पूजन कर कीने पाप नाश। बहु पुण्यबंध कीनो प्रकाश ॥ यह ऐसो क्षेत्र महान जान। हम करी बंदना हर्ष ठान ॥ २१ ॥ उनईस शतक उनतीस जान। संवत अष्टमि सित फाग मान ॥ सब संग सहित बंदन कराय। पूजा कीनी आनंद पाय ॥ २२ ॥ अब दुःख दूर कीजै दयाल। कहै 'चंद्र' कृपा कीजै कृपाल ॥ मैं अलपबुद्धि जयमाल गाय। भवि जीव शुद्ध लीज्यो बनाय ॥ २३ ॥

घत्ता—तुम दयाविशाला सब क्षितिपाला, तुम गुण-माला कंठ धरी। ते भव्य विशाला तज जगजाला, नावत भाल मुक्तिवरी ॥

ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

९५—श्रीचंपापुरसिद्ध क्षेत्र पूजा।

दोहा—उत्सव किय पनवार जहं, सुरगनयुत हरि आय।
जजों सुथल वसुपूज्यसुत, चंपापुर हर्षाय ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र ! अत्रावतरावतर। संवौषट् !

ओं ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक । चाल नन्दीश्वरपूजनकी ।

सम अमिय विगतत्रस वारि, लै हिमकुंभ लस सुम्बद भरा । त्रिगदहरतार, दे अघ धार धरा ॥ श्रीवासुपूज्य जिनराय, निर्वृतिथान प्रिया । चंम्पापुर थल सुखदाय, पूजौं हर्ष हिया ॥

ओं ह्रीं श्रीचम्पापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० ॥

कस्तीरी केशर सार, अति ही पवित्र खरी । शीतल चन्दनसंग सार लै भव ताप हरी ॥ श्री० ॥ चंदनं ॥

मणिद्युतिसम खंडविहीन, तंदुल लै नीके । सौरभयुत नव वर बीन, शालि महा नीके ॥श्री०॥अक्षतान्॥ ३ ॥ अलि लुभन सुभन दृग घ्राण, सुमन जु सरद्रुमके । लै वाहिम अर्जुनवान, सुमन दमन भुमके ॥ श्री० ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥ रस पुरित तुरित पकवान, पक्व यथोक्त घृती । क्षुधगदमदप्रदमन जान, लै विध युक्तकृती ॥ श्री० ॥ नैवेद्यं ॥५॥ तमअज्ञमनाशक सूर, शिवमग परकाशी । लै रत्नदीप द्युतिपूर, अनुपम सुखराशी ॥ श्री० ॥ दीपं ॥ ६ ॥ वर परिमल द्रव्य अनूप, सोध पवित्र करी । तस चूरण कर कर धूप, ले विधिकुंज हरी ॥ श्री० ॥ धूपं ॥७॥ फल पक्व मधुररसवान, प्रासुक बहुविधिके । लखि सुखद रसनदृगघ्रान, ले प्रद पद सिधके ॥ श्री० ॥फलं॥८॥

जल फल वसु द्रव्य मिलाय, लै भर हिमथारी ॥ वसु-
अंग धरापर ल्याय, प्रमुदित चितधारी ॥श्री०॥ अर्घं॥६॥

अथ जयमाला।

दोहा—भये द्वादशम तीर्थपति, चांपापुर निर्वान।
तिन गुणकी जयमाल कछु, कहों श्रवण सुखदान ॥

पद्धरिछन्द—जय जय श्री चांपापुर सु धाम। जहं
राजत नृप वसुपूज नाम ॥ जय पौन पल्यसै धर्महीन।
भवभ्रमन दुःखमय लख प्रवीन ॥१॥ उर करुणाधर सो
तम विडार। उपजे किरणावलिधर अपार ॥ श्री वासु-
पूज्य तिनके जु बाल। द्वादशम तीर्थकर्त्ता विशाल ॥२॥
भवरोग देहतैं विरत होय। वह बालमाहिं ही नाथ सोय ॥
सिद्धन नमि महाव्रत भार लीन। तप द्वादशविधि उग्रोग्र
कीन ॥ ३ ॥ तहँ मोक्ष ससत्रय आयु येह। दश प्रकृति
पूर्व ही क्षय करेह ॥ श्रेणीजु क्षपक आरूढ़ होय। गुण
नवमभाग नवमाहिं सोय ॥४॥ सोलहवसु इक इक षट
इकेय। इक इक इक इम इन क्रम सहेय ॥ पुन दशम
थान इक लोभटार। द्वादशमथान सोलह विडार ॥५॥
ह्वै अनंत चतुष्टय युक्त स्वाम। पायो सब सुखद सयोग
ठाम ॥ तहं काल त्रिगोचर सर्व ज्ञेय। युगपतहि समय
इकमहि लखेय ॥ ६ ॥ कछु काल दुविध वृष अमिय
वृष्टि। कर पोषे भविसुविधान्यसृष्टि ॥ इक मास आयु
अवशेष जान ॥ जिन योगनकी सु प्रवृत्ति हान ॥ ७ ॥

ताही थल तृतिशितध्यान ध्याय। चतुदशमथान निवसे जिनाय ॥ तहँ दुचरम समयमझार ईश प्रकृति जु बहत्तर तिनहि पीश ॥ ८ ॥ तेरह नठ चरम समयमझार। करके श्रीजगतेश्वर प्रहार ॥ अष्टमि अवनी इक समयमद्ध। निवसे पाकर निज अचल रिद्ध ॥ ९ ॥ युत गुण वसु प्रमुख अमित गणेश। हैं रहै सदा ही इमहि वेश। तवहीतैं सो थानक पवित्र। त्रैलोक्यपूज्य गायो विचित्र ॥१०॥ मैं तसु रज निज मस्तक लगाय। वन्दौं पुन पुन भुवि शीश नाथ ॥ ताही पद वांछा उरमझार। धर अन्य चाहबुद्धी विडार ॥

दोहा—श्रीचांपापुर जो पुरुष, पूजै मन वचकाय।
वर्णि "दौल" सो पाय ही, सुखसम्पति अधिकाय॥

इत्याशीर्वादः।

भारतवर्षमें जैन धर्म सम्बन्धी

पुराण, पुस्तकें तथा रंगीन बड़े २ चित्र १५×२० इाइजके मगवानेका एक मात्र पता—

जिनवाणी प्रचारक कार्यालय,

१६१।१ हरीसन रोड, बांगड़बिल्डिंग कलकत्ता।

जुआ खेलनेका फल ।

द्वितीय सर्ग

पचवां अध्याय

आरतीसंग्रह

१—पंचपरमेष्ठी की आरती।

इहिविधि मंगल आरति कीजै। पंच परमपद ज सुख लीजै॥ टेक॥ पहली आरति श्रीजिनराजा। भवदधिपारउतारजिहाजा॥ इहिविधि०॥१॥ दूसरि आरति सिद्धनकेरी। सुमरनकरत मिटै भवफेरी॥ इहविध०॥ २॥ तीजो आरति सूर मुनिंदा। जनमसरनदुख दूर करिंदा॥ इहविध०॥ ३॥ चौथी आरति श्रीउवझाया। दर्शन देखत पाप पलाया॥४॥ पांचमि आरति साधु तिहारी। कुमतिविनाशन शिव अधिकारी॥ इहविध०॥ ५॥ छट्ठी ग्यारहप्रतिमा धारी। श्रावक बंदों आनंदकारी॥ इहविध०॥ ६॥ सातमि आरति श्रीजिनवानी 'द्यानत' सुरगमुकति सुखदानी॥ इहविध०॥ ७॥

२—दूसरी आरती।

आरति श्रीजिनराज तिहारी. करमदलन संतन

हितकारी ॥ टेक ॥ सुरनरअसुर करत तुम सेवा। तुमहो सब देवनके देवा ॥ आरति श्री० ॥ १ ॥ पंच-महाव्रत दुद्धर धारे। रागरोष परिणाम विदारे ॥ आरति श्री० ॥ २ ॥ भवभय भीत शरन जे आये। ते परमारथपंथ लगाये ॥ आरति श्री० ॥ ३ ॥ जो तुम नाथ जपै मनमाहीं। जनममरनभय ताको नाहीं ॥ आरति श्री० ॥ ४ ॥ समवसरनसंपूरन शोभा। जीते क्रोधमानछललोभा ॥ आरति श्री० ॥ ५ ॥ तुम गुण हम कैसे करि गावें। गणधर कहत पार नहिं पावैं ॥ आरति श्री० ॥ ६ ॥ करुणासागर करुणा कीजे। 'द्यानत' सेवकको सुख दीजे ॥ आरति श्री० ॥ ७ ॥

३—तीसरी आरती

आरति कीजै श्रीमुनिराजकी, अधमउधारन आतमकाजकी ॥ आरति० ॥ टेक ॥ जा लच्छीके सब अभिलाखी। सो साधन करदमवत् नाखी ॥ आरति० ॥ १ ॥ सब जग जीत लियो जिन नारी। सो साधन नागिनिवत छारी ॥ आरति० ॥

विषवन तज दीने ॥ आरति० ॥ ३ ॥ भुविको राज चहत सब प्रानी । जीरन तृणवत त्यागत ध्यानी ॥ आरति० ॥ ४ ॥ शत्रु मित्र दुखसुख सम मानै । लाभ अलाभ बराबर जानै ॥ आरति० ॥ ५ ॥ छहों काय-पांहरब्रत धारें । सबको आप समान निहारें ॥ आरति० ॥ ६ ॥ इह आरती पढे जो गावै । 'द्यानत' सुरगमुकति सुख पावै ॥ आरति० ॥ ७ ॥

४—चौथी आरती ।

किस विधि आरती करौं प्रभु तेरी । आतम अकथ ज्ञस बुध नहिं मेरी ॥ टेक ॥ समुदविजयसुत रज्ज-मति छारा । यों वहि थुति नहिं होय तुम्हारा ॥ १ ॥ कोटि स्तम्भ वेदो छवि सारी । समोशरण थुति तुमसे न्यारी ॥ २ ॥ चारि ज्ञान श्रुत तिनके स्वामी । सेवकके प्रभु अन्तर्यामी ॥ ३ ॥ सुनके वचन भविक शिव जाहिं ॥ सो पुद्गलमें तुम गुण नाहिं ॥ ४ ॥ आतम ज्योति समान बताऊँ । रवि शशि दीपक मूढ कहाऊं ॥ ५ ॥ नमत त्रिजगपति शोभा उनकी । तुम सोभा तुममें निज गुणकी ॥ ६ ॥ मानसिंह महाराजा गावें । वन

५—पांचमी आरती।

इह विधि आरती करौं प्रभु तेरी। अमल अबाधित निज गुणकेरी॥ टेक॥ अचल अखंड अतुल अविनाशी। लोकालोक सकल परकाशी॥ इहविध० ॥ १ ॥ ज्ञानदरससुखबल गुणधारी। परआतम अविकल अविकारी॥ इहविध० ॥ २ ॥ क्रोधआदि रगादिक तेरे। जन्म जरामृत कर्म न नेरे॥ इहविध० ॥ ३ ॥ अवपु अबंधकरण सुखरासी। अभय अनाकुल शिव पदवासी॥ इहविध० ॥ ४ ॥ रूप न रेख न भेख न कोई। चिन्मूरति प्रभु तुम ही होई॥ इहविध० ॥ ५ ॥ अलख अनादि अनंत अरोगी। सिद्धविशुद्ध सुआतमभोगी॥ इहविध० ॥ ६ ॥ गुन अनंत किम वचन बतावै। दीपचंद भवि भावन भावै॥ इहविध० ॥ ७ ॥

६—छट्ठी आरती।

करौं आरती आतम देवा, गुणपरजाय अनंत अभेवा ॥ टेक॥ जामें सब जगजो जगमाहीं। बसत जगतमें जगसम नाहीं॥ करौं० ॥ १ ॥ ब्रह्मा विसन महेश्वर ध्यावैं। साध सकल जिसके गुण गावैं॥

करौं० ॥ २ ॥ विन जाने जिय चिरभव डोले । जिहँ जाने ते शिवपट खोले ॥ करौं० ॥ ३ ॥ व्रती अव्रती विधव्योहारा । सो तिहुंकालकरमसों न्यारा ॥ करौं० ॥ ४ ॥ गुरुशिख उभय बचनकरि कहिये । वचनातीत दशा तस लहिये ॥ करौं० ॥ ५ ॥ स्वपर-भेदका खेद उछेदा । आप आपमें आप निवेदा ॥ करौं० ॥ ६ ॥ सो परमातम शिव-सुख-दाता । होहि 'विहारीदास' विख्याता ॥ करौं० ॥ ७ ॥

७—सप्तम आरती ।

करौं आरती वर्द्धमानकी । पावापुर निर्वाण थानकी । करौं० ॥ टेक ॥ राग-विना सब जग जन तारे । द्वेष विना सब करम विदारे ॥ करौं० ॥ १ ॥ शील धुरंधर शिव तियभोगी । मनवचकायन कहिये योगी ॥ करौं० ॥ २ ॥ रत्नत्रय निधि परिग्रह-हारी । ज्ञानसुधा भोजन व्रतधारी ॥३॥ लोक अलोक व्याप निजमाहीं । सुखमैं इन्द्री सुख दुःख नाहीं ॥ ४ ॥ पंच कल्याणक पूज्य विरागी । विमल दिगम्बर अम्बरत्यागी ॥ ५ ॥ गुणमनि भूषण भूषित स्वामी । तीन लोकके अन्तरयामी ॥ ६ ॥ कहैं कहां लो तुम सब जानो । द्यानतको अभिलाष प्रमानो ॥ ७ ॥

८—अष्टम आरती।

मंगल आरती आतमराम। तन मंदिर मन उत्तम ठाम ॥ टेक ॥ सम रस जल चन्दन आनन्द। तन्दुल ताव स्वरूप अमंद॥१॥ समयसार फूलनिकी माला। अनुभव सुख नेवज भरि थाला॥२॥ दीपक ज्ञान ध्यानकी धूप। निरमल भाव महाफल रूप॥३॥ सुगुण भविक जन इकरंग लीन। निहचे नवधाभक्ति प्रवीन ॥ ४ ॥ धुनि उत्साहसु अनहद गान। परम समाधि निरत परधान ॥ ५ ॥ वाहिज आतमभाव बहावे। अन्तर ह्वै परमातम ध्यावै ॥ ६ ॥ साहिब सेवक भेद मिटाई। द्यानत एक भेष हो जाई॥७॥

९—नवमी आरती।

क्या ले आरती भगति करूँजी। तुम लायक नहिं हाथ परेजी ॥टेक॥ क्षीर उदधिको नीर चढ़ायो। कहा भयो मैं भी जल लायो ॥ १ ॥ उज्वल मुक्ताफलसों पूजें। हमपै तन्दुल और न दूजे ॥ २ ॥ कल्पवृक्ष फलफूल तुम्हारे। सेवक क्या ले भगति विथारे ॥ ३ ॥ तनसूं चन्दन अगर न लागै। कौन सुगन्ध धरैं तुम आगे ॥ ४ ॥ नख सम कोटि चन्द रवि

नाहीं । दीपक जोति कहो किह माहीं ॥ ५ ॥ ज्ञान सुधा भोजन वृतधारी । नेवद कहा करे संसारी ॥६॥ द्यानत शक्ति समान चढ़ावै । कृपा तुम्हारीसे सुख पावै ॥ ७ ॥

१०—दशम आरती ।

क्या लें पूजा भगति चढ़ावैं । योग्य वस्तु कहांसे ले आवैं ॥ टेक ॥ क्षीर उदधि जल मेरु न्हलावैं । सो गिर नीर कहां हम पावैं ॥ १ ॥ समोशरणविधि सर्व बतावैं । सो न बनै मुख क्या दिखलावैं ॥ २ ॥ जल फल सुरग लोकतैं लावैं । सो हम पै नहि कहा चढ़ावैं ॥ ३ ॥ नाचैं गावैं बीन बजावैं । सो न शक्ति किम पुण्य उपावैं ॥ ४ ॥ द्वादशंग श्रुति जो श्रुति गावैं । सो हम बुद्धि न कहा बतावैं ॥ ५ ॥ चार ध्यान धर गणधर ध्यावैं । सो थिरता नहिं चपल कहावैं ॥ ६ ॥ द्यानत प्रीति सहित सिर नावैं । जनम जनम यह भक्ति कमावैं ॥ ७ ॥

भावना संग्रह

११—बारहभावना भूधरदासकृत ।

राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार ।

मरना सबको एकदिन, अपनी अपनी बार ॥
दलबलदेई देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरियां जीवको, कोई न राखनहार ॥
दामबिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूं न सुख संसरामें, सब जग देख्यो छान ॥
आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय।
यूं कबहूं इस जीवको, साथी सगा न कोय ॥
जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय।
घर संपति पर प्रगटये, पर हैं परिजन लोय ॥
दिपै चामचादरमढो, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगतमैं, और नहीं घिनगेह ॥
सोरठा—मोहनींदके जोर, जगवासी घूमै सदा।
कर्मचोर चहुं ओर, सरबस लूटैं सुध नहीं ॥
सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमै।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्मचोर आवत रुकैं ॥
दोहा—ज्ञानदीपतपतेल भर, घर शोधैं भ्रम छोर
याविध बिन निकसै नहीं, बैठे पूरब चार ॥
पंच महाव्रत संचरण, समित पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्री-विजय, धार निर्जरा सार ॥

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान ।
तामैं जीव अनादितैं, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥
धनकनकंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान ।
दुर्लभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान ॥
जाचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंता रैन ।
बिन जाचे बिनचिंतये धर्म सकल सुख दैन ॥

१२—बारहभावना बुधजनकृत ।

जेती जगतमें वस्तु तेती अथिर परणमती सदा । परणमनराखन नाहिं समरथ इन्द्र चक्री मुनि कदा ॥ सुतनारि यौवन और तन धन जान दामिनि दमकसा । ममता न कीजे धारि समतामानि जलमैं नमकसा ॥ १ ॥ चेतन अचेतन सब परिग्रह हुआ अपनी थिति लहैं । सो रहैं आप करार माफिक अधिक राखे ना रहैं ॥ अब शरण काकी लेयगा जब इन्द्र नाहीं रहत हैं । शरण तो इक धर्म आतम जाहि मुनिजन गहत हैं ॥ २ ॥ सुर नर नरक पशु सकल हेरे कर्मचेरे बन रहे । सुख शासता नहिं भासता सब विपतिमें अति सन रहे ॥ दुख मानसी तो देवगतिमैं नारकी दुख ही भरै । तिर्यंच मनुज वियोग रोगी

शोक संकटमें जरै ॥ ३ ॥ क्यों भूलता शठ फूलता है देख परिकरथोकको । लाया कहां लेजायगा क्या फौज भूषण रंक को ॥ जनमत मरत तुझ एकलेको काल केता होगया । सँग और नाहीं लगे तेरे सीख मेरो सुन भया ॥ ४ ॥ इन्द्रीनतैं जाना न जावै तू चिदानंद अलक्ष है । स्वसंवेदन करत अनुभव होत तब परत्यक्ष है ॥ तन अन्य जड जानो सरूपी तू अरूपी सत्य है । कर भेदज्ञान सो ध्यान धर निज और बात असत्य है ॥ ५ ॥ क्या देख राचा फिरै नाचा रूपसुंदरतन लहा । मलमूत्र भांडो भरा गाढा तू न जानै भ्रम गहा ॥ क्यों सूग नाहीं लेत आतुर क्यों न चातुरता धरै । तुहि काल गटकै नाहिं अटकै छोड तुझको गिर परै ॥ ६ ॥ कोइ खरा अरु कोइ बुरा नहिं वस्तु विविध स्वभाव है । तू वृथा विकलप ठान उरमैं करत राग उपाव है ॥ यूं भाव आस्त्रव बनत तू ही द्रव्य आस्त्रव सुन कथा । तुझ हेतुसे पुद्गल करम न निमित्त हो देते व्यथा ॥ ७ ॥ तन भोग जगत सरूप लख डर भविक गुरु शरणा लिया सुनधर्म धारा भर्म गारा हर्षि रुचि सन्मुख भया ॥

इन्द्री अनिंद्री दावि लीनी त्रस रु थावर बध तजा। तब कर्म आस्रव द्वार रोकै ध्यान निजमैं जा सजा ॥ ८ ॥ तज शल्य तीनों बरत लीनो बाह्य भ्यंतर तपतपा। उपसर्ग सुरनर जड पशू कृत सहा निज आतम जपा ॥ तब कर्म रसबिन होन लागे द्रव्य-भावन निर्जरा। सब कर्म हरकै मोक्ष वरकै रहत चेतन ऊजरा ॥ ९ ॥ बिच लोक नंतालोक माहीं लोकमैं द्रव सब भरा। सब भिन्नभिन्न अनादिरचना निमितकारणकी धरा ॥ जिनदेव भाषा तिन प्रकाशा भर्मनाशासुन गिरा। सुरमनुष तिर्यकनारकी हुइ ऊर्ध्व मध्य अधोधरा ॥ १० ॥ अनंतकालनिगोद अटका निकस थावर तनधरा। भू वारितेजबयार ह्वैकै बेइन्द्रिय त्रस अवतरा ॥ फिर हो तिइन्द्री वा चौइंद्री पंचेंद्री मनबिन बना। मनयुत मनुषगतिहोन दुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना ॥ ११ ॥ जिय ? न्हान धोना तीर्थ जाना धर्म नाहीं जपजपा। तननंग्न रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तपतपा ॥ वर धर्म निज आतम स्वभावा ताहि विन सब निष्फला। बुधजन धरम निज धार लीना तिनहिं कीना सब भला ॥ १२ ॥

दोहा—अथिराशरण संसार हैं, एकत्व अनित्यहि जान। अशुचि आश्रव संवरा, निर्जर लोक बखान ॥ १३ ॥ बोध औदुर्लभ धर्म ये, बारह भावन जान। इनको ध्यावे जो सदा, क्यों न लहैं निर्वाण ॥ १४ ॥

१३—बारह भावना भगौतीदासजी कृत।

पंच परमपद बन्दन करों। मन वचभाव सहित उर धरों ॥ बारहभावन पावन जान। भाऊं आतम गुण पहिचान ॥ १ ॥ थिर नहिं दीखै नयनों वस्त। देहादिक अरु रूप समस्त ॥ थिर बिन नेह कौनसों करों। अथिर देख ममता परिहरों ॥२॥ अशरण तोहि शरण नहिं कोय। तीनलोकमें हगधर जोय ॥ कोइ न तेरा राखनहार। कर्मनवश चेतन निरधार ॥ ३ ॥ अरु संसारभावना एह। परद्रव्यनसों करै जु नेह ॥ तू चेतन वे जड़ सरवंग। तातैं तजहु परायो संग ॥ ४ ॥ जीव अकेला फिरै त्रिकाल। ऊरध मध्यभुवन पाताल ॥ दूजा कोइ न तेरे साथ। सदा अकेलो भ्रमै अनाथ ॥ ५ ॥ भिन्न सदा पुद्गलतें रहै। भर्मबुद्धितैं जड़ना गहै ॥ वे रूपो पुदगलके खंध। तू चिनमूरति सदा अबन्ध ॥६॥ अशुचि देख देहादिक अंग। कौन

कुवस्तु लगी तो संग॥ अस्थी मांस रुधिरगदगेह। मल मूत्रनि लख तजहु सनेह ॥ ७ ॥ आस्रव परसों करै जु प्रीति। तातैं बंध बढ़हि विपरीत॥ पुद्गल तोहि अपनपो नाहिं। तू चेतन वे जड़ सब आंहि ॥ ८ ॥ संवर परको रोकन भाव। सुख होवेको यही उपाव। आवैं नहीं नये जहँ कर्म। पिछले रुकि प्रगटै निजधर्म॥ ९ ॥ थिति पूरी ह्वै खिर खिर जाहिं। निर्जर भाव अधिक अधिकांहिं ॥ निर्मल होय चिदानन्द आप। मिटै सहस परसंग मिलाप॥१०॥लोकमांहिं तेरो कछु नाहिं। लोक अन्य तू अन्य लखाहिं ॥ वह सब षटद्रव्यनको धाम। तू चिन्मूरति आतमराम॥११॥ दुर्लभ परको रोकनभाव। सो तो दुर्लभ है सुनु राव॥ जो तेरो है ज्ञान अनंत। सो नहिं दुर्लभ सुनो महंत ॥ १२ ॥ धर्मस्वभाव आपही जान। आप स्वभाव धर्म सोइ मान। जब वह धर्म प्रगट तोहि होय। तब परमातम पद लख सोय॥१३॥ येही बारह भावन सार। तीर्थंकर भावहिं निरधार॥ ह्वै वैराग्य महाव्रत लेहि। तब भवभ्रमण जलांजुलि देहि ॥ १४ ॥ भैया भावहु भाव अनूप। भावत होहु तुरत शिवभूप॥

सुख अनन्त विलसो निश दीश। इम भाख्यो स्वामि जगदीश ॥ १५ ॥

१४—बारह भावना जयचन्दजी कृत।

दोहा—द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन। द्रव्यदृष्टि आपा लखो, पर्जय नयकरि गौन ॥१॥ शुद्धातम अरु पंचगुरु, जगमैं सरनौ दोय। मोह उदय जियके वृथा, आन कलपना होय ॥ २ ॥ परद्रव्यनतैं प्रीति जो, है संसार अबोध। ताको फल गति चारमें भ्रमण कह्यो श्रुत शोध ॥ ३ ॥ परमारथतैं आतमा, एक रूप ही जोय। कर्मनिमित विकलप घने, तिन नासे शिव होय ॥ ४ ॥ अपने अपने सत्त्वकूं, सर्व वस्तु विलसाय। ऐसे चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय ॥ ५ ॥ निर्मल अपनी आतमा देह अपावन गेह। जानि भव्य निज भावको, यासौं तजो सनेह ॥६॥ आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय-दृष्टि निहार। सब विभाग परिणाममय, आस्रव भाव विडार ॥ ७ ॥ निज स्वरूपमें लीनता, निश्चय संवर जानि। समिति गुप्ति संजम धरम, धरैं पापकी हानि ॥ ८ ॥ संवरमय है आतमा, पूर्व कर्म झड़ जाय। निज स्वरूपको

पायकर, लोक शिखर जब थाय ॥ ६ ॥ लोक स्वरूप विचारिकैं, आतमरूप निहार। परमारथ व्यवहार मुणि, मिथ्याभाव निवारि ॥ १० ॥ बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं। भवमें प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कराहिं ॥ ११ ॥ दर्शज्ञानमय चेतना आतमधर्म बखानि। दयाक्षमादिक रतनत्रय, यामैं गर्भित जान ॥ १२ ॥

१५—बारह भावना मंगतरामजी कृत।

दोहा छन्द।

बन्दूं श्री अर्हंत पद, वीतराग विज्ञान।
बरणूं बारह भावना, जग जीवन हितजान ॥१॥

विष्णुपद छन्द।

कहां गये चक्री जिन जीता, भरतखंड भारा।
कहां गये वह रामरु लछमन, जिन रावन सारा ॥
कहां कृष्ण रुकमिनि सतभामा, अरु सम्पति सगरी।
कहां गये वह रंगमहल अरु, सुवरनकी नगरी ॥ २ ॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रनमें। गये राज तज पांडव बनको, अगिन लगी तनमें ॥ मोह नींदसे उठरे चेतन, तुझे जगावनको। हो दयाल उपदेश

१६ अथिर भावना।

सूरज चांद छिपै निकलै ऋतु, फिर फिर कर
आवै। प्यारी आयू ऐसी बीते, पता नहीं पावै॥
पर्वत पतित नदी सरिता जल, बह कर नहिं हटता।
स्वाँस चलत यों घटे काठ ज्यों, आरेसों कटता॥४॥
ओस बूँद ज्यों गले धूपमें, वा अंजुलिपानी। छिन
छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्रानी॥ इन्द्र-
जाल आकाश नगर सम, जग सम्पतिसारी। अथिर
रूप संसार विचारो, सब नरअरु नारी॥ ५॥

१७ असरण भावना।

काल सिंहने मृग चेतनको, घेरा भव बनमें।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मनमें॥ मंत्र
यंत्र सेना धन सम्पति, राज पाट छूटे। वश नहिं
चलता काल लूटेरा, काय नगर लूटे॥६॥ चक्र रतन
हलधर सा भाई, काम नहीं आया। एक तीरके लगत
कृष्णकी, छिनमें नहिं काया॥ देव धर्म गुरु शरण
जगतमें, और नहीं कोई। भ्रमसे फिरै भटकता चेतन,
यूँही उमर खोई॥ ७॥

१८—संसार भावना।

जनम मरण अरु जरा रोगसे, सदा दुखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्त्तन सहता॥
छेदन भेदन नरक पशु गति, बध बंधन सहना।
राग उदयसे दुख सुरगतिमें, कहाँ सुखी रहना॥८॥
भोग पुन्य फल हो इक इन्द्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली॥
मानुष जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पंचमगति सुख मिले शुभाशुभ, का मेटो लेखा॥ ९॥

१९—एकत्व भावना।

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुखदुखका भोगी।
और किसीका क्या इक दिन यह, देह जुदी होगी॥
कमला चलत न पैंड जाय मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुखको रोवे, पितापुत्र दारा॥ १०॥
ज्यों मेलेमें पंथीजन मिलि नेह फिरैं धरते। ज्यों तरवरपै रैन बसेरा, पंछी आकरते॥ कोस कोइ दोकोस कोइ उड फिर थक थक हारे। जाय अकेला हंस, संगमें, कोइ न पर मारे॥ ११॥

२०—भिन्न भावना।

मोहरूप मृगतृष्णा जगमें मिथ्या जल चमको।

दौडैं थक थकके ॥
मृग चेतन नित भ्रममैं उठ उठ, दौडैं थक थकके ॥
जल नहिं पावै प्राण गमावै, भटक भटक मरता ।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता ॥ १२ ॥
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड तू ज्ञानी ।
मिलेअनादि यतनतैं विछुडै, ज्यों पय अरु पानी ॥
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना । जौलों
पौरुष थकै न तौलों उद्यमसों चरना ॥ १३ ॥

२१—अशुचि भावना।

तू नित पोखै सूखै यह ज्यों, धोवै त्यों मैली । निश
दिन करै उपाय देहका, रोगदशा फैली ॥ मातपि-
तारज वीरज मिलकर, वनी देह तेरी। मांस हाड
नश लहू राधकी, प्रघट व्याधि घेरी ॥ १४ ॥ काना
पौंडा पड़ा हाथ यह चूसै तो रोवै । फलै अनंत जु
धर्म ध्यानकी, भूमिविषै बोवै । केसर चंदन पुष्प
सुगंधित, वस्तु देख सारी । देह परसते होय अपावन
निशदिन मलजारी ॥ १५ ॥

२२—आस्रव भावना ।

ज्यों सरजल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मनको
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब पुद्गल भरमनको

भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतनको। पाप पुण्यको दोनों करता, कारण बंधनको ॥ १६ ॥ पन मिथ्यात योग पंद्रह द्वादश अविरत जाना। पंचरु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो ॥ मोहभावकी ममता टारै, पर परणत खोते। करै मोखका यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते ॥ १७ ॥

२३—संवरभावना।

ज्यों मोरीमें डाट लगावै, तब जल रुक जाता। त्यों आस्रवको रोकै संवर, क्यों नहिं मन लाता ॥ पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मनको। दशविधधर्म परीषहबाइस, बारह भावनको ॥ १८ ॥ यह सब भाव सतावन मिलकर, आस्रवको खोते। सुपन दशासे जागो चेतन, कहां पड़े सोते ॥ भाव शुभाशुभ रहित शुद्धभावनसंवर पावै। डांट लगत यह नाव पड़ी मझधार पार जावै ॥ १९ ॥

२४—निर्जरा भावना।

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़ै भारी। संवर रोकै, कर्म-निर्जरा, है सोखनहारी ॥ उदयभोगसविपाकसमय, पकजाय आम डाली। दूजी है

अविपाक पकावे, पालविषै माली ॥ पहली सबके होय नहीं, कुछ सरे काम तेरा । दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगत फेरा ॥ संवर सहित करो तप प्रानी, मिले मुकत रानी । इस दुलहनकी यही सहेली, जानै सब ज्ञानी ॥ २१ ॥

२५—लोक भावना ।

लोक अलको अकाश माहिं थिर, निराधार जानो । पुरुषरूप कर कटी भये षट, द्रव्यनसों मानों ॥ इसका कोइ न करता हरता, अमिट अनादी है । जीवरु पुद्गल नाचै यामें, कर्म उपाधी है ॥ २२ ॥ पाप पुन्यसों जीव जगतमें, नित सुख दुख भरता । अपनी करनी आप भरै शिर, औरनके धरता ॥ मोह-कर्मको नाश मेटकर, सब जगकी आसा । निज पदमें थिर होय लोकके, शीश करो बासा ॥ २३ ॥

२६—बोधिदुर्लभ भावना ।

दुर्लभ है निगोदसे थावर, अरु त्रसगति पानी । नरकायाको सुरपति तरसै सो दुर्लभ प्रानी ॥ उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना । दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना ॥ दुर्लभ रत्नत्रय

आराधन, दीक्षाका धरना। दुर्लभ मुनिवरको व्रत पालन, शुद्धभाव करना॥ दुर्लभसे दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावै। पाकर केवलज्ञान नहीं फिर इस भवमें आवै॥

२७—धर्मभावना।

षट् दरशन अरु बौद्धरु नास्तिकने जगको लूटा। मूसा ईसा और मुहम्मदका मजहब झूठा॥ हो सुछद सब पाप करै सिर, करताके लावै। कोइ छिनक कोई करतासे, जगमें भटकावै॥ वीतराग सर्वज्ञ दोष विन, श्रीजिनकी वानी। सप्त तत्त्वका वर्णन जामैं, सबको सुखदानी॥ इनका चितवन बार बार कर, श्रद्धा उर धरना। मंगत इसी जतनतै इक-दिन, भवसागरतरना॥

२८—सोलह कारण भावना।

चौपाई—आठदोषमद आठ मलीन, छह अना-यतन शठता तीन। ये पचीस मल वर्जित होय, दर्शविशुद्धिभावना सोय॥ १॥ रत्नत्रयधारी मुनि-राय, दर्शनज्ञान चरित समुदाय। इनकी विनय विपै परवीन, दुतिय भावना सो अमलीन॥ २॥ शील-

धारि धारै समचेत, सहस अठारह अङ्ग समेत। अतीचार नहिं लागै जहां, तृतिय भावना कहिये तहां ॥ ३ ॥ आगम कथित अरथ अवधार, यथाशक्ति निजबुधि अनुसार। करै निरन्तर ज्ञान अभ्यास, तुरिय भावना कहिये तास ॥ ४ ॥

दोहा—धर्म धर्मके फल विषै, परतैं प्रीति विशेख।
यही भावना पञ्चमी, लिखो जिनागम देख ॥५॥

चौपाई—औषधि अभय ज्ञान आहार. महादान ये चार प्रकार। शक्ति समान सदा निर्वहै, छठी भावना धारक वहै ॥६॥ अनसन आदि मुक्ति दातार, उत्तमतप बारह परकार। बल अनुसार करै जो कोय, सो सातमी भावना होय ॥ ७ ॥ यतीवर्गको कारन पाय, विघन होत जो करै सहाय। साधुसमाधि कहावै सोय, यही भावना अष्टमि होय ॥ ८ ॥ दश-विध साधु जिनागम कहे, पथ पीडित रागादिक गहे। तिनकी जो सेवा सत्कार, यही भावना नवमी सार ॥ ९ ॥ परम पूज्य आतम अरहंत, अतुल अनंत चतुष्टयवंत। तिनकी थुति नित पूजा भाव, दशमि ... ॥ १० ॥ जिनवरकथित अर्थ

अवतार, रचना करै अनेक प्रकार। आचारजकी भक्ति विधान, एकादशमि भावना जान ॥ ११ ॥ विद्यादायक विद्यालीन, गुणगरिष्ट पाठक परवीन तिनके चरन सदा चित रहै, बहु श्रुत भक्ति वारमी यहै ॥ १२ ॥ भगवतभाषित अरथ अनूप, गणधर ग्रन्थित ग्रन्थ स्वरूप। तहां भक्ति बरतै अमलान प्रवचनभक्ति तेरमी जान ॥ १३ ॥ षट् आवश्यक क्रिया विधान, तिनकी कबहूं करे न हान। सावधान वरतै थिर चित्त, सो चौदहवीं परम पवित्त ॥ १४ ॥ कर जपतप पूजाव्रत भाव, प्रगट करै जिनधर्मप्रभाव सोई मारगपरभावना, यही पंचदशमी भावना ॥१५॥ चार प्रकार संघसों प्रीति, राखै गाय वत्सकी रीति यह सोलहमी सब सुखदान, प्रवचन वातसल्य अभिधान ॥

दोहा---सोलह कारन भावना, परमपुण्यको खेत भिन्न भिन्न अरु सोलहों, तीर्थंकरपद देत ॥ बंध प्रकृति जिनमतविषै, कही एक सौ बीस। सौ सतरह मिथ्यातमैं, बांधत हैं निशदीस ॥ तीर्थंकर आहार द्विक, तीन प्रकृति ये जान इनको बंध मिथ्यातमैं,

कह्यो नहीं भगवान ॥ तातैं तीर्थंकर प्रकृति, तीनों समकित माहिं। सोलहकारणसों बंधैं, शिवको निश्चय जाहिं ॥

सोरठा—पूज्यपाद मुनिराय, श्री सरवारथ सिद्धिमें।
कह्यो कथन इस न्याय, देख लीजिये सुबुधिजन ॥

२६—वैराग्य भावना।

(वज्रनाभि-चक्रवर्ती की)

दोहा—बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जगमाहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करे, धर्म विसारे नाहिं ॥१॥

योगीरासा वा नरेन्द्र छन्द।

इस विध राज्य करे नरनायक भोगे पुण्य विशाल।
सुख सागरमें रमत निरन्तर जात न जाने काल ॥
एक दिवस शुभ कर्म संयोगे क्षेमंकर मुनि वन्दे।
देख श्री गुरुके पद पंकज लोचन अति आनन्दे ॥२॥
तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो कर पूजा थुति कीनी।
साधु समीप विनय कर बैठो चरणोंमें दृष्टि दीनी ॥
गुरु उपदेशो धर्म शिरोमणि सुनराजा वैरागे।
राजरमा वनितादिक जे रस सो सब नीरस लागे ॥३॥
मुनि सूरज कथनी किरणावलि लगत भर्म बुधिभागी।
भव तन भोग स्वरूप विचारो परमधर्म अनुरागो ॥

या संसार महावन भीतर भरमत ओर न आवे।
जन्मन मरण जरा दव दाहै जीव महा दुख पावे ॥४॥
कबहूं कि जाय नरकि पद भुंजे छेदन भेदन भारी।
कबहुं कि पशु पर्याय धरे तहां बध बन्धन भयकारी॥
सुरगतिमें पर सम्पति देखे राग उदय दुख होई।
मानुष योनि अनेक विपतिमय सवे सुखी नहीं कोई॥५॥
कोई इष्ट वियोगी विलखे काइ अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दरिद्री दीखे कोई तन का रोगी॥
किस ही घर कलिहारी नारी कै बैरी सम भाई।
किसहीके दुख बाहिज दीखे किसहो उर दुचिताई॥६॥
कोई पुत्र विना नित भूरै होइ मरै तब रोवे।
खोटो संतति सौं दुख उपजे नहिं प्राणी सुख सोवे॥
पुन्न उदय जिनके तिनके भी नाहिं सदा सुख साता।
यह जगवास यथारथ देखें सबही है दुख दाता॥७॥
जो संसार विषें सुख होता तीर्थंकर क्यों त्यागे।
काहेको शिव साधन करते संयम सों अनुरागे॥
देह अपावन अथिर घिनावनि इसमें सार न कोई।
सागर के जल सोंशुचि कीजे तो भी शुद्ध न होई॥८॥
सत कुधातु भरी मल मूरत चर्म लपेटी सो है।

]

अन्तर देखत या सम जगमें और अपावन को है ॥
नव मलद्वार श्रवें निशिवासर नाम लिये घिन आवे
व्याधि उपाधि अनेक जहां तहँ कौन सुधीसुख पावै ॥९॥
पोषत तो दुख दोष करै अति सोखत सुख उपजावे।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावे ॥
राचन जोग स्वरूप न याको विरचन जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे यामें सार यही है॥१०॥
भोग बुरे भव रोग बढावें बैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति सेवत लागेंनीके॥
बज्र अगिनि विष से विषधरसे ये अधिके दुखदाई।
धर्म रतनके चोर चपल अति दुर्गति पन्थ सहाई॥११॥
मोह उदय यह जीव अज्ञानी भोग भले कर जाने।
ज्यों काइ जन खाय धतूरा सो सब कंचन माने ॥
ज्यों ज्यों भोग संयोग मनोहर मन वांछित जन पावे।
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके लहर लोभ विष लावे॥१२॥
मैं चक्रीपद पाय निरन्तर भोगे भोग घनेरे।
तौ भी तनक भये नहिं पूरण भोग मनोरथ मेरे॥
राज समाज महा अघ कारण बैर बढ़ावन हारा।
[illegible] अति चंचल इसका कौन पत्यारा॥१३॥

मोह महारिपु बैर विचारो जगजिय संकट डारे।
घर कारागृह बनिता बेड़ी परजन हैं रखवारे॥
सम्यकदर्शन ज्ञानचरण तप ये जियके हितकारी।
येही सार असार और सब यह चक्री चितधारी॥१४॥
छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि अरु छोड़े संग साथी।
कोटि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी॥
इत्यादिक सम्पति बहुतेरी जीरण तृण वन त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुत कों राज दियो बड़भागी
॥१५॥ होय निशल्य अनेक नृपति सँग भूषण बसन
उतारे। श्रीगुरु चरणधरी जिन मुद्रा पंच महाव्रत
धारे। धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम धनि यह
धीरज धारी। ऐसो सम्पति छोड़ बसे बन तिन पद
धोक हमारी॥ १६ ॥

दोहा—परिग्रह पोट उतार सब, लीनो चारित पन्थ;
निज स्वभावमें थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ ॥१७॥

३०—मेरी भावना।

जिसने रागद्वेषकामादिक जीते, सब जग जान
लिया, सब जीवोंको मोक्षमार्गका निस्पृह हो उपदेश
दिया। बुद्ध, वीर जिन, हरि हर, ब्रह्मा या उसको

स्वाधीन कहो, भक्तिभावसे प्रेरित हो यह चित्त उसीमें लीन रहो ॥ १ ॥ विषयोंकी आशा नहिं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं, निज-परके हित-साधनमें जो निश-दिन तत्पर रहते हैं। स्वार्थत्यागकी कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं, ऐसे ज्ञानी साधु जगतके दुखसमूहको हरते हैं ॥ २ ॥ रहे सदा सतसंग उन्हींका, ध्यान उन्हीका, नित्य रहे उनही जैसी चर्यामें यह चित्त सदा अनुरक्त रहे। नहीं सताऊँ किसी जीवको, झूठ कभी नहिं कहा करूं, पर-धन-वनितापर न लुभाऊ, सन्तोषामृत पिया करूं, ॥ ३ ॥ अहंकारका भाव न रक्खूं, नहीं किसीपर क्रोध करू, देख दूसरोंकी बढ़तीको कभी न ईर्षा-भाव धरूं। रहे भावना ऐसीमेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूँ. बने जहांतक इस जीवनमें औरोंका उपकार करूँ ॥ ४ ॥ मैत्रीभाव जगतमें मेरा सब जीवोंसे नित्य रहे, दीन दुखी जीवों पर मेरे उरसे करुणास्रोत बहे। दुर्जन क्रूर-कुमार्गरतो पर क्षोभ नहीं मुझको आवे, साम्य-भाव रखूं मैं उनपर, ऐसी परिणति हो जावे ॥ ५ ॥ गुणीजनोंको देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड़ आवे.

बने जहांतक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे। होंऊ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे। गुण ग्रहणका भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६॥ कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे। लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आजावे। अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे, तो भी न्यायमार्गसे मेरा कभी न पद डिगने पावे ॥७॥ होकर सुखमें मग्न न फूले, दुखमें कभी न घबरावे, पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक अटवीसे नहिं भय खावे। रहे अडोल-अकंप निरन्तर, यह मन, दृढ़तर बन जावे, इष्टवियोग-अनिष्टयोगमें सहनशीलता दिखलावे ॥ ८ ॥ सुखी रहें सब जीव जगतके, कोई कभी न घबरावे, वैर-पाप-अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे। घरघर चर्चा रहे धर्मकी, दुष्कृत दुष्कर हो जावे, ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना मनुज जन्म फल सब पावें ॥ ९ ॥ ईति-भीति व्यापे नहिं जगमें, वृष्टि समय पर हुआ करे, धर्मनिष्ठ हो कर राजा भी न्याय प्रजाका किया करे। रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्तिसे जिया करे, परम अहिंसा-धर्म

जगतमें, फैल सर्वहित किया करे ॥ १० ॥ फैल प्रेम परस्पर जगमें, मोह दूर पर रहा करे, अप्रिय-कटुक कठोर शब्द नहिं कोई मुखसे कहा करे। बनकर सब 'युग-वीर' हृदयसे देशोन्नतिरत रहा करे, वस्तुस्वरूप विचार खुशीसे सब दुख-संकट सहा करे ॥ ११ ॥

३१—बारहमासादि संग्रह ।

सीताजीका बारहमासा ।

सती सीता विनवै शिर नाय । नाथ करि कृपा हरो दुःख आय ॥ टेक ॥ महीना आषाढ़का आया । जनकगृह जन्म मैंने पाया ॥ हरा सुर भ्रातन की दाया । मात पितुको दुःख उपजाया ॥

दोहा—तब रथनूपुर विजयार्द्धपर ता वनमें सुर जाय । रखा लखा सो भूप चन्द्रगति हितसे लिया उठाय ॥ पुत्र करपाला प्रेम बढ़ाय । नाथ कर कृपा हरो दुःख आय ॥१॥ चढ़े आवण मलेच्छ भारी। पिता दुःख पाया अधिकारी ॥ बुलाये दशरथ हितकारी । राम तिनकी सेना मारी ॥ दोहा—तब रघुपतिको तातने करी सगाई मोर । विधिवश खगपति झगड़ा ठाना आने भवन करोर ॥ चला रखवर परणो गृह ल्याय । नाथ

कर कृपा हरो दुःख आय ॥ २ ॥ भये भादोंमें ससुर वैराग । राज रघुवरको देने लाग । केकई मांगो वर दुर्भाग । भरतको राज लिया तिन मांग ॥

दोहा—तब पति चले विदेशको धनुषवाण ले हाथ । संग चले प्रिय लक्ष्मण देवर मैं भी चाली साथ ॥ चले दक्षिणको चरण उठाय । नाथ कर कृपा हरो दुःख आय ॥३॥ क्वार दंडक वन पहुंचे जाय । हना शंबूक लक्ष्मण असिपाय ॥ फेरि मारा खरदूषण धाय । तहां मैं हरी लंकपति आय ॥ दोहा—मार जटाऊ मोहि ले, दशमुख पहुंचो लंक । मित्र भये सुग्रीव रामके हनुमत वीर निशंक ॥ तैन सुधि पठये श्रीरघुराय । नाथ कर कृपा हरो दुःख आय ॥ ४ ॥ मिली कातिकमें सुधि मेरी । राम लक्ष्मण लंका घेरी ॥ घोर रण भयो बहुत बेरी । लगीं बहु मृतकनकी ढेरी ॥

दोहा—तहां लंकपतिको हना दियो विभीषणराज । मोहि साथ ले गृहको आये लिया राज रघुराज ॥ भरत तप धरा भये शिवराय । नाथ कर कृपा हरो दुःख आय ॥ ५ ॥ कियो अगहनमें गर्भाधान । तबै बटवाया किमिच्छा दान ॥ कर्मवश लोगों गिल्ला ठान ।

सब नृप लाये धाय ॥ मिलनको चली सिया हर्षाय। नाथ कर कृपा हरो दुःख आय ॥९॥ चैत्रमें बोले राम रिसाय। धीज बिन लिये न आवो धाय ॥ तबे बोली सीता बिलखाय। कहो सो लेहु धीज दुखदाय ॥ दोहा—विष खाऊं पावक जलूं करूं जो आज्ञा होय। कही राम पावकमें पैठो सीता मानी सोय ॥ दयो तब पावक कुंड जगाय। नाथ करि कृपा हरो दुख आय ॥ १० ॥ जपति बैशाखमें प्रभुका नाम। अग्निमें पैठी रघुवर श्याम ॥ शील महिमासे देव तमाम। अग्निका कीना जल तिस ठाम ॥

दोहा-कमलासनपर जानकी बैठारी सुर आप। बढ़ा नीर जन डूबन लागे करते भये विलाप॥ करो रक्षा मम सीता माय। नाथ कर कृपा हरो दुख आय ॥ ११ ॥ जेठमें राम मिलन चाले। लुंचि कच लिये सन्मुख डाले ॥ लई दिक्षा अणुव्रत पाले। किया तप दुर्द्धर अब जाले ॥ दोहा—त्रिया लिंग हनि दिव भयो सोलमस्वर्ग प्रतेंद्र। अनुक्रमसे अब शिवपुर पहैं भाषो एम जिनेंद्र ॥ कहें यों दयाराम गुण गाय। नाथ करि कृपा हरो दुख आय ॥ १२ ॥

३२—बारहमासा राजुल।

राग सोरठा।

पिय प्यारेने सुधि बिसराई। अब कैसे जियों मेरी माई॥ ॥ टेक॥ सखी आयो अगम अषाढा। तब क्यों न गये गिरनारा॥ मेरी रच संयोग बिसारी। मनमें क्या नाथ विचारी॥ अब क्यों छोड़ी अकुलाई। अब० ॥ १ ॥ सावनमें व्याहन आये। सब यादव नृपति सुहाये॥ पशुवनको करुणा कीनी। मेरी ओर दृष्टि ना दीनी॥ गिरगमन कियो यदुराई। अब० ॥ २ ॥ भादों वरसत गंभीरा। मेरे प्राण धरे ना धीरा॥ मो[illegible] मात पिता समझावे। मेरे मन एक न आवे॥ [illegible] प्रभु विन कछु न सुहाई। अब० ॥३॥ सखी आयो आस्विन मासा। पहुंची अपने पिय पासा॥ क्यों छोडे भोग विलासा। कर पूर्व जन्मकी आसा॥ तज वर्तमान सुखदाई। अब० ॥ ४ ॥ अब लागो कार्तिक मासा। सब जन गृह करत हुलासा॥ सब गृह गृह मंगल गावें। हमरे पिय ध्यान लगावें॥ मेरी मान कही यदुराई। अब० ॥ ५ ॥ लागो अगहन मास सुहाई। जामें शीत पडे अधिकाई॥ सब जन कंपें जग केरे। कैसे ध्यान धरो प्रभु मेरे॥

थिरता मन नाहिं रहाई। अब० ॥ ६ ॥ सखी पूषमें परत तुषारा। वर शीत भई अधिकारा ॥ कैसेके संयम मंडो। कैसे वसुकर्मन दंडो ॥ घर चलके राज कराई। अब० ॥ ७ ॥ सखि माघ मास अब लागो। सब ही जन आनँद दागो ॥ तुम लीनी जगत बडाई। मोहि त्याग दया ना आई ॥ धृक मेरी पूर्व कमाई। अब० ॥ ८ ॥ फागुनमें सब जन होरी। खेलत केसर रंग बोरी ॥ तुम गिरिपर ध्यान लगायो। मेरो कुछ ध्यान न आयो ॥ तुम शरणागतमें आई। अब० ॥९॥ सखी पहिले, चैत जनायो। सब सालको आगम आयो ॥ सब फूले वन अकुलाई। मोहिं तुम विन कछु न सुहाई ॥ मोहिं अधिक उदासी छाई। अब० ॥ १० ॥ वैसाख पवन झकझोरे। लूह लपट लगे चहुं ओरे ॥ जे जड़ ते तपत पहारा। मो तन कोमल सुकुमारा ॥ घर छोड़ चले जदुराई। अब० ॥ ११ ॥ सखि जेठ मास अब आयो। तब घामने जोर जनायो ॥ कैसे भूख पियास सहोगे। कैसे संयम धारोगे ॥ थिरता मनमें न रहाई। अब कैसे जियों मेरी माई ॥ १२ ॥

३३—बारहमासा श्री मुनिराजजीका ।

राग मरहटी ।

मैं बंदूं साधु महन्त बड़े गुणवन्त सभी चित लाके । जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके ॥टेक॥ चित चैत में व्याकुल रहे काम तन दहे न कुछ बन आवे । फूली वनराई देख मोह भ्रम छावे ॥ जब शीतल चले समीर स्वच्छ हो नीर भवन सुख भावे । किस तरह योग योगीश्वरसे वन आवे ॥ झड़—तिस अवसर श्रीमुनि ज्ञानी, रहें अचल ध्यानमें ध्यानी । जिन काया लखी पयानी, जगऋद्धि खाक सम जानी ॥ उस समय धीर धर रहैं अमर पद लहैं ध्यान शुभ ध्याके । जिन अथिर० ॥ १ ॥ जब आवत है वैशाख होय तृण खाक तपसे जलके । सब करैं धाम विश्राम पवन झल झलके ॥ ऋतु गर्मीमें संसार पहिन नर नार वस्त्र मलमलके । वे जलसे करते नेह जो हैं जी स्थलके ॥ झड़—जिस समय मुनी महाराजे, तन नग्न शिखर गिरि राजे । प्रभु अचल सिंहासन राजे, कहो क्यों न कर्म दल लाजे ॥ जो घोर महा

लखा० ॥ २ ॥ जब पड़े ज्येष्ठमें ज्वाला होय तन
काला धूपके मारे। घर बाहर पग नहिं धरे कोई
घरवारे ॥ पानीसे छिड़के धाम करें विश्राम सकल
नर नारी। धर खसकी टटिया छिपैं लूहकी मारी ॥
झड़—मुनिराज शिखिर गिरि ठाढ़े, दिन रैन किछि
अति बाढ़े। अति तृषा रोग भय बाढ़े, तब रहैं
ध्यानमें गाढ़े ॥ सब सूखे सरवर नीर जलैं शरीर
रहैं समझाके। जिन अथिर लखा० ॥ ३ ॥ आषाढ़
मेघका जोर बोलते मोर गरजते बादल। चमके
बिजुली कड़ कड़ै पड़े धारा जल ॥ अति उमड़ें नदियां
नीर नहर गम्भीर भरे जलसे थल। भोगीको ऐसे
समय पड़े कैसे कल ॥ झड-उस समय मुनी गुणवन्ते,
तरुवर तट ध्यान धरन्ते। अति काटें जीव अरु जन्ते,
नहीं उनका सोच करन्ते ॥ वे काटें कर्म जंजीर
नहीं दिलगीर रहैं शिव पाके। जिन अथिर०
॥ ४ ॥ श्रावणमें है त्यौहार झूलती नार चढ़ी
हिंडोले। वे गावैं राग मलहार पहन नये चोले ॥
जग मोह तिमिर मन वसे सर्व तन कसे देत झक-
झोले। उस अवसर श्रीमुनिराज वनत हैं भोले ॥

झड़—वे जीतें रिपुसे लरके, कर ज्ञान खड्ग लेकरके। शुभ शुक्ल ध्यानको धरके, फरफुल्लित केवल वरके॥ नहीं सहैं वो यमकी त्रास लहैं शिव वास अघात नाशके। जिन अथिर०॥ ५॥ भादव अंधियारी रात ना सूझै हाथ घुमड़ रहे बादर। बन मोर पपीहा कोयल बोलें दादुर॥ अति मच्छर भिन भिन करें सांप फूंकरें पुकारें थलचर। बहु सिंह वघेरा गज घूमें वन अन्दर॥ झड़—मुनिराज ध्यान गुण पूरे, तव काटें कर्म अंकूरे। तन लिपटत कान खजूरे, मधु मच्छ ततइयें भूरे॥ चिटियों ने विल तन करे आप मुनि खड़े हाथ लटकाके। जिन०॥ ६॥ आश्विनमें वर्षा गई समय नहीं रही दशहरा आया। नहीं रही वृष्टि अरु कामदेव लहराया॥ कामी नर करें किलोल वजावें ढोल करें मन भाया। है धन्य साधु जिन आतमध्यान लगाया॥ झड़-वसु याम योगमें भीने, मुनि अष्ट कर्म क्षय कीने। उपदेश सबनको दोने, भविजनको नित्य नवोने॥ हैं धन्य धन्य मुनिराज ज्ञानके ताज नमूं शिर नाके। जिन अथिर०॥ ७॥ कार्तिकमें आया शीत भई विपरीत अधिक

शरदाई । संसारी खेलें जुआ कर्म दुखदाई ॥ जग नर नारीका मेल मिथुन सुख केल करैं मन भाई । शीतल ऋतु कामी जनको है सुखदाई ॥ झड़--जब कामी काम करावें, मुनिराज ध्यान शुभ ध्यावें । सरवर तट ध्यान लगावें, सो मोक्ष भवन सुख पावें ॥ मुनि महिमा अपरम्पार न पावे पार काई नर गाके । जिन अथिर लखा० ॥ ८ ॥ अगहनमें टपके शीत यही जग रीत सेज मन भावे । अति शीतल चलै समीर देह थरावे ॥ शृङ्गार करे कामिनी रूप रस ठनो साम्हने आवे । उस समय कुमति बन सबका मन ललचावे ॥ झड़--योगीश्वर ध्यान धरे हैं, सरिताके निकट खड़े हैं । जहां ओले अधिक परें हैं, मुनि कर्मका नाश करें हैं ॥ जब पड़े बर्फ घनघोर करें नहीं शोर जयी दृढ़ताके । जिन अथिर लखा० ॥ ९ ॥ यह पौष महीना भला शीतमें घुला कांपती काया । वे धन्य गुरू जिन इस ऋतु ध्यान लगाया ॥ घरबारी घरमें छिपैं वस्त्र तन लिपे रहैं जैड़ाया । तज वस्त्र दिगम्बर हो मुनि ध्यान लगाया ॥ झड़--जलके तट जग सुखदाई, महिमा सागर मुनिराई । धर धीर

खड़े हैं भाई, निज आतमसे लवलाई ॥ है यह संसार असार वे तारणहार सकल वसुधाके। जिन अथिर लखा० ॥ १० ॥ है माघ वसन्त वसन्त नार अरु कंथ युगल सुख पाते। वे पहिने वस्त्र वसन्त फिरें मदमाते ॥ जब चढ़ मयनकी शयन पड़ें नहीं चैन कुमति उपजाते। हैं बड़े धीर जन बहुधा वे डिग जाते ॥ झड--तिस समय जु हैं मुनि ज्ञानी, जिन काया लखी पयानी। भवि डूबत बोधे प्रानी, जिन ये वसन्त जिय जानी ॥ चेतनसे खेलैं होरी ज्ञान पिचकारी योग जल लाके। जिन अथिर लखा०॥११॥ जब लगे महीना फाग करें अनुराग सभी नर नारी। लै फिरे फैटमें गुलाल कर पिचकारी ॥ जब श्री मुनि-वर गुणखान अचल धर ध्यान करैं तप भारी। कर शील सुधारस कर्मन ऊपर डारी ॥ झड-कीर्ति कुम-कुमें बनावें, कर्मोंसे फाग रचावें। जो बारामासा गावें, सो अजर अमर पद पावें ॥ यह भाषैं जीया-लाल धर्म गुणमाल योग दरसाके। जिन अथिर लखा संसार वसे वन जाके ॥ १२ ॥

३४—बारहमासा वज्रदंत चक्रवर्तीका

(यति नैनसुखदास कृत)

सवैया-बंदूँ मैं जिनंद परमानंदके कंद जगबंद विमलेंदु जड़ता ताप हरन कूं। इन्द्र धरणेन्द्र गौतमादिक गणेंद्र जाहि सेवें राव रंक भवसागर तरन कूं॥ निर्बंध निर्द्वन्द दीनबन्धु दयासिन्धु करें उपदेश परमार्थ करन कूं। गावें नैनसुखदास वज्रदंत बारहमास मेटो भगवन्त मेरे जन्म मरन कूं॥ १॥

दोहा—वज्रदंत चक्रेशकी, कथा सुनो मन लाय। कर्म काट शिवपुर गये, बारह भावना भाय॥ २॥

सवैया—बैठे वज्रदंत नाथ अपनी सभा लगाय ताके पास बैठे राय छत्तीस हजार हैं। इन्द्र कैसे भोगसार राणी छाड़के हजार पुत्र एक सहस्र महान गुणागार हैं॥ जाके पुण्य प्रचण्डसे नये हैं बलवंत शत्रु हाथ जोड़ मान छोड़ सेवें दरबार हैं। ऐसो काल पाय माली लायो एक डाली तामें देखो अलि अम्बुज मरण भयकार है॥ ३॥ अहो यह भोग महापापको संयोग देखो डालीमें कमल तामें भौंरा प्राण हरे हैं। नासिकाके हेतु भयो भोगमें अचेत सारी रैनके कला-

पमें विलाप इन करे हैं। हम तो हैं पांचों हीके भोगी भये जोगी नाहिं विषयकषायनके जाल मांहि परे हैं जो न अब हित करूँ न जाने कौन गति परूँ सुतन बुलाके यों वच अनुसरे हैं ॥ ४ ॥ अहो सुत जग रीति देखके हमारी नीति भई है उदास वनोवास अनुसरेंगे। राजभार सीस धरो परजाका हित करो हम कर्म शत्रुनकी फौजनसूं लरेंगे। सुनत वचन तब कहत कुमार सब हम तो उगालकूं न अंगीकार करेंगे। आप बुरो जान छोडो हमें जग जाल बडो तुमरे ही संग पंच महाव्रत धरेंगे ॥ ५ ॥

चौपाई मिश्रित गीताछंद--सुन अषाढ़ आयो पावस काल, सिरपर गर्जत यम विकराल ॥ लेहु राज सुख करहु विनीत। हम वन जांय बड़नकी रीति ॥ ६ ॥ जांय तपके हेत वनको भोग तज संयम धरें। तज ग्रंथ सब निरग्रंथ हो संसारसागरसे तरें। यही हमारे मन वसी तुम रहो धीरज धारके। कुल आपनेकी रीति चालो राजनीति विचारके ॥७॥ पिता राज तुम दीनो जौन। ताहि ग्रहण हम समरथ हौं न ॥ यह सौंरा भोगनकी व्यथा। प्रगट करत कर कंगन

यथा ॥ ८ ॥ यथा करका कांगना सन्मुख प्रगट जन-रायरे। त्यों हो पिता भोंरा निरषि भव भोगसे मन थरहरे॥ तुमने जो वनके वासहीको सुख अंगीकृत किया। तुमरी समझ सोइ समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया ॥ ९ ॥ आवश पुत्र कठिन वन वास। जल थल सीत पवनके त्रास ॥ जो नहिं पले साधू आचार। जो मुनि भेष लगावे सार॥ १० ॥ लाजे श्रीमुनि भेष तातैं देहका साधन करो। सम्यक्त युत व्रतपंचमें तुम देश व्रत मनमें धरो॥ हिंसा असत् चोरी परिग्रह ब्रह्मचर्य्य सुधारके। कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के॥ ११ ॥ पिता अंग यह हमरो नाहिं। भूख प्यास पुद्गल परछांहिं॥ पाय परीषह कबहुं न भजैं। धर संन्यास मरण तन तजैं॥ १२ ॥ सन्यास धर तनकूँ तजें नहिं डंशमँ-सकतसे डरें। रहें नग्न तन वनखंडमें जहां मेघ मूसल जल परें। तुम धन्य हो बड़भाग तजके राज तप उद्यम किया। तुमरो समझ सोइ समझ हमरो हमें नृप पद क्यों दिया॥ १३ ॥ भादोंमें सुत उपजे रोग। आवें याद महलके भोग॥ जो प्रमादवस

आसन टले। तो न दया व्रत तुमसे पले ॥ १४ ॥
जब दयाव्रत नहिं पले तब उपहास जगमें विस्तरे।
अरहन्त और निर्ग्रंथकी कहौ कौन फिर सरधा करे।
तातैं करौ मुनिदान पूजा राज काज संभाल के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचारके
॥ १५ ॥ हम तजि भोग चलेंगे साथ।
मिटें रोग भव भवके तात॥ समता मन्दिरमें
पग धरे। अनुभव अमृत सेवन करें॥ १६ ॥ करें
अनुभव पान आतम ध्यान वीणा कर धरें। आलाप
मेघ मल्हार सोहं सप्त भंगी स्वर भरें। धृग् धृग्
पलाव्रज भोगकूं सन्तोष मनसें कर लिया। तुमरी
समझ० ॥ १७ ॥ आसुज भोग तजे नहिं
जांय। भोगी जीवनको डसि खांय॥ मोह लहर
जियकी सुधि हरे। ग्यारह गुण थानक चढ़ गिरे
॥ १८ ॥ गिरे थानक ग्यारवें से आय मिथ्या भू परे।
विन भावकी थिरता जगतमें चतुर्गतिके दुःख भरे।
रहै द्रव्यलिंगी जगतमें विन ज्ञान पौरुष हारके। कुल
आपने की रीति चालो राजनीति बिचार के ॥ १९ ॥
बिधे बिडार पिता तिन कसें। गिर कन्दर निर्जन

वन वसें ॥ महामन्त्रको लखि परभाव । भोग भुजं-
गन चाले घाव ॥ २० ॥ घाले न भोग भुजंग
तब क्यों मोहकी लहरा चढे । परमाद तज पर-
मात्मा प्रकाश जिन आगम पढ़ें । फिर काल लब्धि
उद्योत होय सुहोय यों मन थिर किया ॥ तुमरी
समझ० ॥ २१ ॥ कातिकमें मुत करें विहार । कांटे
कांकर चुभें अपार ॥ मारें दुष्ट खेंचके तीर । फाटे
उर थरहरे शरीर ॥ २२ ॥ थरहरे सगरी देह अपने
हाथ काढ़त नहीं बने । नहिं औरकाहूसे कहें तप
देहकी थिरता हनें ॥ कोई खेंच बांधे थम्भसे कोइ
खाय आंत निकालके ॥ कुल०॥ २३ ॥ पद पद पुराय
धगासें चलें । कांटे पाप सकल दल मलें ॥ जामा
डाल तल धरें शरीर । विफल करै दुष्टनके तीर ॥२४॥
कर दुष्ट जनके तीर निरफल दया कुञ्जरपर चढ़ें ।
तुम संग समता खड्ग लेकर अष्ट कर्मनसे लड़ें ।
धन धन्य यह दिनवा प्रभु तुम योगका उद्यम किया ॥
तुमरी०॥२५॥ अगहन मुनि तटिनीतट रहें। ग्रीषम शैल
शिखर दुख सहैं । पुनि जब आवत पावसकाल । रहैं
साध जन वन विकराल ॥ २६ ॥ रहें वन विकरालमें

जहां सिंह सियार सतावहीं। कानोंमें बीछी बिल· करें और व्याल तन लिपटावहीं। दे कष्ट प्रेत पिचाश आन अंगार पाथर डारके। कुल आपनेकी रीति चालो राजनीति विचारके ॥ २७ ॥ हे प्रभु बहुत बार दुःख सहे। बिना केवली जाय न कहे ॥ शीत उष्ण नर्क· नके तात। करत याद कम्पे सब गात ॥ २८ ॥ गात कम्पे नर्कसे लहे शीत उष्ण अथाय ही। जहां लाख योजन लोह पिंड सुहोय जल गल जाय ही। असि-पत्र वनके दुःख सहे परवश स्ववश तपना किया। तुमरी समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया ॥ २९॥ पौप अर्थ अरु लेहु गयंद। चौरासी लख लख सुख· कंद ॥ कोड़ि अठारह घोड़ा लेहु। लाख कोड़ि हल चलत गिनेहु ॥ ३० ॥ लेहु हल लख कोड़ि षटखण्ड भूमि अरु नव विधि वड़ी। लो देशको विभूति हमरी राशि रत्ननकी पड़ी। धर देहुं शिरपर छत्र तुमरे नगर घोख उचारके ॥ कुल० ॥ ३१ ॥ अहो कृपानिधि तुम परशाद। भोगे भोग सबै मरयाद। अब न भोगकी हमकू चाह। भोगनमें भूले शिव राह ॥ ३२ ॥ राह भूले मुक्तिकी बहुवार सुरगति संचरे। जहां कल्प·

वृक्ष सुगन्ध सुन्दर अपसरा मनको हरे। उदधि पी नहिं भया तिरपत ओस पी कै दिन जिये। तुमरी० ॥२३॥ माघ सधै न सुरनतें सोय। भोग भूमियन तैं नहिं होय। हर हरि अरु प्रति हरिसे वीर। संयम हेत धरे नहिं धीर॥ २४॥ संयम कूँ धीरज नहिं धरें नहिं टरें रणमें युद्धसूं। जो शत्रुगण गजराजकूँ दलमले पकर विरुद्धसं। पुनि कोट सिल सुन्दर समानी देय फैंक उपारके। कुल आपने की० ॥२५॥ बँध योग उद्यम नहिं करें। एतो तात कर्म फल भरें। बांधे पूर्व भव गति जिसी। भुगतें जीव जगतमें तिसी॥ २६॥ जीव भुगतें कर्मफल कहो कौन विधि संयम धरें। जिन बंध जैसा बांधियो तैसा ही सुख दुःख सो भरें। यों जान सबको बंधमें निर्बन्धका उद्यम किया। तुमरी समझ सोई हमरी समझ० ॥२७॥

फाल्गुण चाले शीतल वायु। थर २ कम्पे सबकी काय॥ तब भव बन्ध विहारण हार। त्यागें मूढ़ महाव्रत सार॥२८॥ सार परिग्रह व्रत विसारें अग्नि चहुं दिशि जा रही। करें मूढ़ शीत विलीत दुर्गति गहें हाथ पसार ही। सो होंय प्रेत पिशाच भूतरु

ऊत शुभगति टारके ॥ कुल० ॥ ३६ ॥ हे मतिवन्त कहा तुम कही। प्रलय पवनकी वेदन सही ॥ धारी मच्छ कच्छकी काय। सहे दुःख जलचर परजाय ॥४०॥ पाय पशु परजाय परवश रहे स्तृंग वधांयके। जहां रोम रोम शरीर कम्पे मरे तन तरफायके। फिर गेर चाम उचेर स्वान सिवान मिल श्रोणित पिया। तुमरी ॥ ४१ ॥ चैत लता मदनोदय होय। ऋतु वसन्तमें फूले सोय ॥ तिनकी इष्ट गंधके जोर। जागे काम महाबल फोर ॥ ४२ ॥ फोर बलको काम जागे सोय मन पुरछो नहीं। फिर ज्ञान परमनिधान हरिके करे तेरा तीन ही। इतके न उतके तब रह गये कुगति दोऊ कर झारके॥ कुल० ॥ ४३ ॥ ऋतु वसन्त बनमें रहे। भूमि मसाण परीषह सहे ॥ जहां नहिं हरति काय अंकूर। उडत निरन्तर अहनिसि धूर ॥ ४४ ॥ उडे बनकी धूर निशि दिन लगें कांकर आयके। सुन शब्द प्रेत प्रचण्डके काम जांय पलायके। मत कहो अब कछु और प्रभु भव भोगमें मन कांपिया तुमरो० ॥ ४५ ॥ मास बैसाख सुनत अरदास। चक्री मन उपज्यो विश्वास। अब बोलनको नाहीं ठौर। मैं कहूं

और पुत्र कहें और ॥ ४६ ॥ और अब कछु मैं कहूं नहीं रीति जगकी कीजिये। एक बार हमसे राज लेके चाहे जिसको दीजिये। पोता था एक षट् मास का अभिषेक कर राजा कियो। पितु संग सब जग-जालसेतीं निकस वन मारग लियो ॥ ४७ ॥ उठे बज्रदन्त चक्रेश। तीस सहस्र नृप तजि अवलेश। एक हजार पुत्र बड़ भाग। साठ सहस्र सती जग त्याग ॥ ४८ ॥ त्याग जग कंधे चले सब भोग तज ममता हरी। समभाव कर तिहुंलोकके जीवोंसे यों विनती करी। अहो जेते हैं सब जीव जगमें क्षमा हम पर कीजियो। हम जैन दिक्षा लेत हैं तुम बैर सब तज दीजियो ॥४९॥ बैर सबसे हम तजा अर्हंत-का शरणा लिया। श्रीसिद्ध साहूको शरणा सर्वज्ञके मत चित दिया॥ यों भाष पिहिताश्रव गुरुन ढिग जैन दीक्षा आदरी। कर लौंच तजके सोच सबने ध्यानमें दृढ़ता धरी ॥५०॥ जेठ मास लू ताती चलें। सूकै सर कपिगण मद गलें॥ ग्रीष्म काल शिखिरके सीस। धरो अतापन योग मुनीश ॥ ५१ ॥ धर-योग आतापन सुगुरुने तब शुक्ल ध्यान लगाइयो।

तिहुंलोक भानु समान केवलज्ञान तिन प्रगटाइयो ॥
धन वज्रदन्त मुनीश जग तज कर्मके सन्मुख भये।
निज काज अरु परकाज करके समयमें शिवपुर गये ॥
सम्यक्तादि सुगुण आधार । भये निरंजन निज आकार ॥ आवागमन जलॉजल दई। सब जीवनकी शुभगति भई ॥ ५३ ॥ भई शुभगति सबनकी जिन शरण निजपतिकी लई। पुरुषार्थसिद्धि उपायसे परमार्थकी सिद्धी भई। जो पढ़ें बारामास भावन भाय चित्त हुलसायके। तिनके हों मंगल नित नये अरु विघ्न जाय पलायके ॥ ५४ ॥

दोहा-नित २ नव मंगल बढ़े, पढ़े जो यह गुणमाल।
सुर नरके सुख भोग कर, पावों मोक्ष रिसाल ॥५५॥

सवैया—दो हजार माहिंतै तिहत्तर घटाय अब विक्रमको संवत् विचारकै धरत हूं। अगहन असि त्रियोदशी मृगांक वार अर्ध निशामाँहिं याहि पूर्ण करत हूं ॥ इति श्रीवज्रदन्त चक्रवर्तीका वृतान्त रचके पवित्र नैन आनन्द भरत हूं। ज्ञानवन्त करी शुद्ध जान मेरी बाल बुद्धि दोषपै न रोष करो पायन परत हूं ॥ ५६ ॥

छठा अध्याय ।

परमार्थ जकड़ी संग्रह

३५—जकड़ी भूधरकृत ।

अब मन मेरे बे, सुन सुन सीख सयानी । जिन-वर चरना बे, कर कर प्रीति सुज्ञानी ॥ कर करप्रीति सुज्ञानी शिवसुखदानी धन जीतब्रहै पंचदिना । कोटि-बरस जीवौ किसलेखै जिन चरणांबुज भक्ति विना ॥ नरपरजाय पाय अति उत्तम गृहबसि यह लाहा लेरे । समझ समझ बोलैं गुरुज्ञानी, सीख सयानी मन मेरे ॥१॥ तू मति तरसै बे, संपति देख पराई । बोये लुनि ले बे, जो निज पूर्वकमाई ॥ पूर्वकमाई संपति पाई देखि,देखि मति झूर मरै । बोय बबूल शूल-तरु भोंदू, आमनकी क्यों आस करै ॥ अब कछु समझ बूझ नर तासौं, ज्यों फिर परभव सुख दरसै । कर निज-ध्यान दान तप संजम, देखि विभवपर मत तरसै ॥२॥ जो जग दीसै बे, सुंदर अर सुखदाई । सो सब फलिया बे, धरम-कलप-द्रुम भाई ॥ सो सब धर्म कलपद्रुमके फल, रथ पायक बहु रिद्धि सही । तेज तुरंग तुंग

गज नौ निधि, चौदह रतन छखंड मही ॥ रति उनहार रूपकी सीमा सहस छयानवैं नारि वरै। सो सब जान धर्मफल भाई जो जग सुंदर दृष्टि परै ॥ ३ ॥ लगैं असुंदर वे, कंटकवान घनेरे। ते रस फलिया वे, पापकनकतरुकेरे ॥ ते सब पापकनकतरुके फल, रोग सोग दुख नित्य नये। कुथित शरीर चीर नहिं तापर, घरघर फिरत फकीर भये ॥ भूख प्यास पीडै कन मांगै, होत अनादर पग पगमैं। ये परतच्छ पापसंचितफल, लगैं असुंदर जे जगमैं ॥ इस भववनमैं वे, ये दोऊं तरु जाने। जो मन मानै वे, सोई सींच सयाने ॥ सींच सयाने जो मन मानैं, बेर बेर अब कौन कहै। तू करतार तुही फल भोगी, अपने सुखदुख आप लहै ॥ धन्य धन्य जिनमारग सुंदर, सेवनजोग तिहूंपनमैं। जासौं समुझि परैं सब भूधर, सदा शरण इस भव वनमैं ॥ ५ ॥

३६—जकड़ी रूपचंदकृत

चेतन अचरज भारी, यह मेरे जिय आवै। अमृतवचन हितकारी, सदगुरु तुमहिं पढ़ावै ॥ सदगुरु तुमहिं पढ़ावै चित दै, अरु तुमहू हौ ज्ञानी। तबहू

तमहि न क्यों हू आवै, चेतन तत्त्व-कहानी ॥ विषयनकी चतुराई कहिये, को सरि करै तुम्हारी । विन गुरु फुरत कुविद्या कैसैं, चेतन अचरज भारो ॥ १ ॥ चेतन चतुर सयाने, काहे तुम भ्रम भूले । विषय जु देखि रवाने, कहा जानि जिय फूले ॥ कहा जानि जिय फूले चेतन, तुम तो विधना वांचे । सुद्ध सुभाव सहज सुख छोरि जु, इंद्रियसुख-रस-राचे ॥ भोजन सेज वेषकर जुवती, गीतादिक जु रवाने । भये सुवा भव-सेंवरद्रुमके चेतन चतुर सयाने ॥२॥ मोहमहामदमातें, बादि अनादिगँवायौ । अपने धरमनि घातें विषयनिसौं मन लायौ ॥ विषयनिहीसौं मन लायौ तुम, बाहिर सुन्दर दीठे । विषफल परिहर शेष कटुक हैं, सेवत ही सुख मीठे । कामभोगभ्रमभाव भुलाने, रुचैं न सदगुरुबातें । हित अनहित कछु समझत नाहीं मोहमहामदमातें ॥ ३ ॥ इन्द्रिनिकौ सुख सेये, सुखलव दुख अधिकायौ । सविष सुभोजन जेंये, कब कौनें सुख पायौ ॥ कब कौनैं सुख पायौ चेतन, ये सुख उहकै स्वादै । फरस दन्ति, रस मीन, गंध अलि रूप सलभ मृगनादै ॥ एक एक इन्द्रिनिको यह दुख

पांचौं तुमहिं वंधे ये। सावधान किन होहु वंध ह्वै, इन्द्रिनको सुख सेये ॥ ४ ॥ इह संसार मंझारे, सुरनरवर पद पाए। स्वकृतकरमअनुसारे सुख सेये मन भाये ॥ सुख सेये मन भाये तुम चिर, इन्द्रिनि रचि सुख माने। तब हू त्रिपति भई नहिं कब हू, अरु तिसना अधिकाने। अब रतनत्रयपथ धरि शिव-पुर, जाहु जु होहु सुखारे। रूपचंद कृत दुख देखत हो, इह संसार मंझारे ॥

३७—जकड़ी रूपचंदकृत

चेतन चिर भूल्यो भ्रम्यौ, देख्यौ चित न विचारि। करम कुसंगति वहि परयौ, इह भवगहन मझारि ॥ इहभवगहनमझारि मूरख, दुखदवानल नित दह्यो। मिथ्यातपितसौं दिष्टि छाई मुकतिपंथ न तै लह्यो ॥ तू पंच-इन्द्री-सुखत्रिषा वसि, विषय खार-सलिल छक्यौ। निजसुखसुधारसविमुख चहुं-गति, चेतन चिर भूल्यो भम्यौ ॥ चहुंगति चिर भ्रमतहिं गयौ, रहियौ कहुं न थिराय। कर्मप्र-कृतिपेरयौ फिरयौ, देख्यौ लोक-शिराय ॥ देखियौ लोकशिराथ सबतैं, ऊंच नीच परज धरैं। करम अरु

नोकरमरूपी, सकलपुद्गल आहरै ॥ परिनयौ परपर-
नति निरंतर, काज कछु भूलि न भयौ। परम-रत्न-
त्रय-लबधि विनु, चहुं गति चिर भ्रमतहिं गयौ ॥
गाफिल ह्वैके कहा रह्यौ, अपनि सुरत विसारि।
विषय कषायनिरत भयौ, दीने थ.ग पसारि ॥ दीने
नियोग पसारि तीनौं, सुभासुभरसपरिनयौ। आश्रये
संतत करम बहुविधि, तोहि तिनि आवरि लयौ ॥
जिय कछू सुधिबुधि तोहि नाहीं, मूढमोहग्रहनि गह्यौ।
गुन सील सरवस खोय अपनौ, गाफिल ह्वैके कहा
रह्यौ। चेति चतुरमति चेतना, परपरनतिहिं निवारि।
दर्शनज्ञानचरित्रमय, अपनी वस्तु सँभारि ॥ अपनी
वस्तु सँभारि विसरी, कहा इत उत भटक ही। बहि-
रमुख भूल्यो भया कत, छोडि कन तुष झटक ही ॥
निजवस्तुअन्तरगत विराजित, चिदानंद निकेतना।
स्वानुभवबुद्धि प्रजुंजि देखहि, चेति चतुरमतिचेत-
ना ॥ इह संसारकुवासतैं, दुख देखे चिरकाल। अब
तू यातैं विरचकरि, छोड़ि सकल भ्रमजाल ॥ छोड़ि
सकल भ्रमजाल चेतन, रतनत्रय आराध ही ॥ आपुने
बलहिं सँभार अतिबल, करम-बैरिनि साध ही ॥

समरसो भाव सुभावपरनति, सदा रहहि उदासतै।
'रूपचंद' सहजहीं छूटहिं, इह संसारकुवासतैं॥

३८—जकड़ी दौलतरामकृत।

अब मन मेरा बे, सीख वचन सुन मेरा। भजि जिनवर पद बे, ज्यौं बिनसै दुख तेरा॥ विनसै दुख तेरा भव बन केरा मनवच तन जिन्न चरन भजौ। पंचकरनवश राख सुज्ञानी, मिथ्यामतमग-दौर तजौ। मिथ्यामतमग पगि अनादितैं, तैं चहुंगति कीन्हा फेरा। अबहू चेत अचेत होय मत, सीख वचन सुन मन मेरा॥१॥ इस भववनमैं वे, तैं साता नहिं पाई। वसुविधिवश ह्वै वे, तैं निजसुधि विसराई॥ तैं निज-सुधि विसराई भाई, तातैं विमल न बोध लहा। पर-परनति मैं मगन भयो तू, जन्म जरा-मृत-दाह-दहा॥ जिनमत सारसरोवरकों अब,—गाहि लागि निज-चिंतनमैं। तो दुखदाह नशै सब नातर, फेर फंसै इस भववनमैं॥२॥ इस तनमैं तू वे, क्यागुन देख लुभाया। महा अपावन बे, सतगुरु याहि वताया॥ सतगुर याहि अपावन गाया, मलमूत्रादिकका गेहा। कृमिकुलक-लित लखत घिन आवै, यासों क्या कीजै नेहा॥ यह

तन पाय लगाय आपनी, परनति शिवमगसाधनमैं। तो दुखदंद नशै सब तेरा, यही सार है इस तनमैं ॥ ३ ॥ भोग भले न सही, रोग शोकके दानी। शुभ-गतिरोकन ये दुर्गतिपथ अगवानी ॥ दुर्गतिपथ अग-वानी हैं जे, जिनकी लगन लगी इनसौं। तिन नाना विध विपति सही है, विमुख भयो निजसुख तिनसौं ॥ कुंजर झख अलि शलभ हिरन इन, एक अक्षवश मृत्यु लही। यातै देख समझ मनमांहीं, भवमैं भोग भले न सही ॥ ४ ॥ काज सरै तब जे जब निजपद आराधै। नशै भवावलि जे निराबाधपद लाधै ॥ निरा-बाधपद लाधै तब तोहि, केवलदर्शनज्ञान जहां। सुख अनंत अति-इन्द्रियमंडित, वीरज अचल अनंत तहां ॥ ऐसा पद चाहै तो भज निज बार बार अब को उचरै। 'दौलत' मुख्य उपचार रतनत्रय, जो सेवै तो काज सरै।

३६—जयपुरी दौलतरामकृत।

वृषभादि जिनेश्वर ध्याऊं, शारद अंबा चित लाऊं। दे विध-परिग्रह-परिहारी गुरु नमहूं स्वपर हित-कारी ॥ हितकारि तारक देवश्रुत गुरु, परख निजउर

लाइये। दुखदायकुपथविहाय शिवसुख,-दया जिनवृष ध्याइये॥ चिरतैं कुमगपगि मोहठगकरि, ठग्यौ भव-कानन परचौ। च्यालीसद्विकलख जौनिमैं, जर-मरन-जाम-नदबजरयौ ॥१॥ जब मोहरिपु दीन्हीं घुमरिया, तसवश निगोदमैं परिया। तहां स्वास एककेमाहीं, अष्टादश मरन लहाहीं॥ लहि मरन अंतमुहूर्तमैं, छचासठ सहस शत तीन ही। षटतीस काल अनंत यौं दुख, सहे उपमा ही नहीं॥ कबहू लहो वर आयु छिति-जल,-पवन-पावक तरुतणी। तस भेद किंचित कहूँ सो सुन कह्यौ जो गौतमगणी॥ २॥ पृथिवी द्वयभेद बखाना, मृदु माटीकठिन पखाना। मृदु द्वादशसहस बरसकी, पाहन बाईस सहसकी॥ पुनि सहस सात कही उदक त्रय, सहसवर्ष समीरकी। दिन तीन पावक दश सहस तरु, प्रभृति नाश सुपीरकी॥ विनघातसूक्ष्म देहधारी, घातजुत गुरुतन लह्यौ। तहँ खनन तापन जलन व्यंजन, छेद-भेदन दुख सह्यौ॥ शंखादि दुइंद्रो प्रानी, थिति द्वादश-वर्ष बखानी। यूकादि तिइन्द्री हैं जे, वासर उनचास जियैं ते॥ जीवैं छमास अली प्रमुखा, च्यालीस

मरमतुरगतनी। खगको बहत्तरसहस नवपूर्वाङ्ग
पको भनी॥ नरमत्स्यपूरवकोटकी थिति कर-
म बखानिये। जलचरविकलबिन भोगभू-नर-पशु
य प्रमानिये ॥ ४ ॥ अघवश करि नरक बसेरा,
तहं कष्ट घनेरा। छेदैं तिलतिल तन सारा,
हपूतिमझारा॥ मझार वज्रानिल पचावें, धरहिं
ऊपरें। सींचें जु खारे वारिसों दुठ, कहें व्रण
करें॥ वैतरणिसरिता समलजल अति दुखद
ंवल तने। अति भीमवन असिकांत समदल,
दुख देवें घने ॥५॥ तिस भूमें हिम गरमाई,
गिरि सम अस गल जाई। तामें थिति सिंधु तनी
ों दुखद नरक अवनी है॥ अवनी तहांकीतैं
सि, कबहूं जनम पायौ नरौ। सर्वाङ्ग सकुचित
अपावन, जठरजननीके परौ॥ तहँ अधोमुख
ी रसांश, थकी जियौ नव मास लौं। ता पीरमें
सीर नाहीं, सहै आप निकास लौं॥ ६॥ जन-
जो संकट पायौ, रसनातें जात न गायौ। लहि
ने दुखभारी॥ तरुनापौलयौ दुखभारी दुख-
इष्ट वियोग अशुभ,-संयोग सोग सरोगता।

व ग्रीषमसीतपावस, सहे दुख अतिभोगता॥ काहू कुतिय काहू कुबांधव, कहुं सुनाहे व्यभिचारिणी। किसहू विसन रत पुत्र पुष्ट, कलत्र कोऊ पर ऋणी ॥ ७ ॥ वृद्धापनके दुख जेते, लखिये सब नयननते। मुख लार बहे तन हाले, बिन शक्ति न वसन सँभाले॥ न संभाल जाके देहकी तो, कहो वृषकीका कथा। तब ही अचानक आन जम गहै, मनुजजन्म गयो वृथा॥ काह जनम शुभ ठान किंचित, लह्यौ पद चउदेवको। अभियोग किल्विष नाम पायो, सह्यो दुख परसेवको॥ तहं देख महा सुररिद्धी, झूर्यो विषयनकरि गृद्धी। कबहूं परिवार नसानौ, शोकाकुल है विलसानौ॥ विललाय अति जब मरननिकट्यौ, सह्यो संकट मानसी। सुरविभव दुखद लगी तबै जब, लखी माल मलानसी॥ तबही जु सुर उपदेश-हित समुझाइयो समुझ्यो न त्यों। मिथ्यात्व जुत च्युत कुगति पाई, लहै फिर सो स्वपद क्यों॥ यों चिर भव-अटवी माहो, किंचितसाता न लहाहो। जिनकथित धरम नहिं जान्यो, परमाहिं अपन पो मान्यो॥ मान्यो न सम्यक त्रयातम आतम अनात-

ममैं फस्यो। मिथ्याचरन दृग्ज्ञान रंज्यौ, जाय नवग्रीवक बस्यो ॥ पै लह्यो नहिं जिनकथित शिवमग, वृथा भ्रम भूल्यो जिया। चिद्भावके दरसावविन सब गये अहले तप किया ॥ १० ॥ अब अद्भुत पुण्य उपायो, कुल जात विमल तू पायो। याते सुन सीख सयाने, विषयनसों रति मत ठाने ॥ ठाने कहा रति विषयमें ये, विषम विषधरसम लखो। यह देह मरत अनंत इनकों, त्यागि आतमरस चखो ॥ या रसरसिकजन बसे शिव अब, बसें पुनि बसि है सही। 'दौलत' स्वरचि परविरचि सतगुरु, सीख नित उर धर यही ॥ ११ ॥

४०—जकड़ी रामकृष्णकृत।

अरहंत चरन चित लाऊं। पुन सिद्ध शिवंकर ध्याऊं ॥ बन्दौं जिनमुद्राधारी। निर्ग्रन्थ यती अविकारी ॥ अविकार करुणावन्त बन्दौं, सकललोकशिरोमणी। सर्वज्ञभाषित धर्म प्रणमूं, देय सुख संपति घनी ॥ ये परममंगल चार जगमें, चारु लोकोत्तम सही। भवभ्रमत इस असहाय जियको, और रक्षक कोउ नहीं ॥ १ ॥ मिथ्यात्व महारिपु दंड्यो।

चिरकाल चतुर्गति हंढ्यो ॥ उपयोग नयन-गुन खोयौ।
भरि नींद निगोद सोयौ ॥ सोयौ अनादि निगोदमैं
जिय, निकर फिर थावर भयौ। भू तेज तोय समीर
तरुवर, थूल सूक्ष्मतन लयौ॥ कृमि कुन्थु अलि सैनी
असैनी व्योम जल थल संचरचौ। पशुयोनि बासठ-
लाख इस विध, भुगति मर मर अवतरचो ॥ अति
पाप उदय जब आयौ। महानिंद्य नरकपद पायौ ॥
तिथि सागरोंबन्ध जहां है। नानाविध कष्ट तहां है ॥
है त्रास-अति आताप वेदन, शीत बहुयुत है मही। जहां
मार मार सदैव सुनिये, एकक्षण साता नहीं ॥ नारक
परस्पर युद्ध ठाने, असुरगण क्रीड़ा करैं। इहविधि
भयानक नरकथानक, सहैं जी परवश परैं॥ ३ ॥
मानुषगतिके दुख भूलयो। बसि उदर अधोमुख
झूल्यो ॥ जनमत जो संकट सेयो। अविवेक उदय
नहिं बेयो ॥ बेयो न कछु लघुबालवयमें, वंशतरुकों-
पल लगी। दलरूप यौवन वयस आयौ, काम-दौं-तब
उर जगी ॥ जब तन बुढापो घट्यो पौरुष, पान पकि
पीरो भयो। झड़ि परचो काल बयार बाजत, बादि नर-
भव यौं गयौ ॥ ४ ॥ अमरापुरके सुख कीने। मन-

वांछित भोग नवीने ॥ उरमाल जबै मुरझानी। विल-
ख्यो-आपन-मृतु जानी ॥ मृतु जान हाहाकार कीनौं
शरन अब काकी गहौं। यह स्वर्गसंपति छोड़ अब मैं,
गर्भवेदन क्यौं सहौं ॥ तब देव मिलि समुझाइयो,
पर कछु विवेक न उर वस्यो। सुरलोक-गिरिसों गिरि
अज्ञानी, कुमति-कादौं फिर फँस्यो ॥ ५ ॥ इहविध
इस मोही जीनें। परिवर्तन पूरे कीनें ॥ तिनकी बहु
कष्ट कहानी। सो जानत केवलज्ञानी ॥ ज्ञानी विना
दुख कौन जाने, जगत-बनमें जो लह्यो। नरजन्म-
मरणस्वरूप ताछन, त्रिविध दावानल दह्यो ॥ जिनमत
सरोवर शीतपर अब, बैठ तपन बुझाय हो। जिय
मोक्षपुरकी बाट बूझौ, अब न देर लगाय हो ॥ यह
नरभव पाय सुज्ञानी। कर कर निजकारज प्रानी॥
तिर्यंचयोनि जब पावै। तब कौन तुझै समझावै ॥
समुझाय गुरु उपदेश दीनो, जो न तेरे उर रहै। ता
जान जीव अभाग्य अपनो, दोष काहूको न है। सूरज
प्रकाशै तिमिर नाशै, सकल जगको तम हरै। गिरि
गुफा-गर्भ उदोत होत न, ताहि भानु कहा करै ॥७॥
जगमाहिं विषयवन फूल्यो। मनमधुकर तिहिंविच

भूल्यो ॥ रसलीन तहां लपटान्यो। रस लेत न रंच अघान्यो॥ न अघाय क्यों हो रमैं निशदिन, एक छन भी ना चुकै। नहिं रहै बरज्योबरज देख्यो बार बार तहां ढुकै॥ जिनमतसरोज-सिधान्त सुन्दर, मध्य याहि लगाय हो। अब 'रामकृष्ण' इलाज याको, किये ही सुखपाय हो ॥ ८ ॥

४१—चेतन सुमतिकी होली।

अबकी मैं होरी खेलों सुमतिसे। यह मन भाय गई मेरे डटके ॥टेक॥ अनुभव गात्र सम सुख पिचकारी, तकि २ मारो कुमति घर हटके ॥ १ ॥ ज्ञान गुलाल थाल निज परिणति लालनलाल कुचाल पलटके ॥ २ ॥ प्रमुदित गात्र क्षमादित सखियां शम दम साज मन्दिरमें खटके ॥३॥ नयो २ फाग नयो २ अवसर खेले हजारी क्यों भव भटके ॥ ४ ॥

४२—आसारामकृत होली।

हूं री रे मन तोहि खिलाऊं चेतन राम रिझाऊँ। अम्बर अङ्ग करों अति सुन्दर भूषण भाव बनाऊं। कर्म सबै वसु केशर घारों गर्व गुलाल उड़ाऊं॥ भलोविधि धूम उड़ाऊं ॥१॥ चोआ चित्त करों अति

वेश्या गमनसे गर्मी सुजाक होता है।

सियरों हियरो अति जरद जड़ाऊं । ज्ञानके सागरमें धसके तहां ते सवरी गहि ल्याऊं ॥ भलीविधि मंगल गाऊं ॥ २ ॥ मन मृदङ्ग बजे मधुरी ध्वनि कर खम्माच बजाऊं । पञ्च सखी अपने संग लेके सुधूम धमार गवाऊं—भली विधि सों निर ताऊं ॥ ३ ॥ ऐसी होरी जे मुनि खेलैं तिन पद शीस नवाऊं । आशाराम करैं विनती प्रभु भक्ति अभय पद पाऊं । तबै निज दास कहाऊं ॥

४३—मानिक कृत होली ।

जामें आवागमन बकी डोरी । हमारेको खेल ऐसी होरी ॥ टेक ॥ हिंसादिक नित धाय धाय के बहु विधि कर पकरोरी । पाप कींच बहु भांति लपेटत बिषय कुरंग छिरकोरी ॥ १ ॥ कुमति कुनारि डारि भ्रम फांसी बहुत करी बरजोरी । कर्म धूल अंग ल्यावत प्यावत मोह अमल कटोरी ॥ २ ॥ कषाय पचीस नृत्यकारिन संग गति गति नाचत चोरी । रागद्वेष दोउ छैल छबीले देत कुमगकी डोरी ॥३॥ यों चिरकार खेल जिय मानिम पाये दुःख करोरी । जैनधर्म परभाव भविक अब प्रीति सुपदसों जोरी ॥

४४—गङ्गा कृत होली।

खेलत फाग प्रवीना ॥ टेक ॥ दया वसन्त सखा लाचण समकित रङ्ग जु कीना। ज्ञान गुलाल चरित्र अरगंजा शील अतरमें भीना ॥ १ ॥ ध्यानानल आस्त्रव होरी दावन्ध त्रपत कर खीना। निर्जर नेह मुकत धन फगुआ सिज परिणतिको जीना ॥ २ ॥ गंगा मन आनन्द भयो है सब विकलप तज दीना। निज सर्वज्ञनाथ प्रभु आगे नाम निरन्तर लीना ॥ ३ ॥

४५—मेवारामकृत होली।

अरे मत खेल खेलारी फाग रची संसारी ॥टेक॥ काम क्रोध दोउ छैल छवीले कुमति हाथ पिचकारी। पाप कींच बहु भांति भरी है देत बदनपर डारी ॥१॥ मोह मृदंग मजीरा मान मद लोभ तमूरा चारी। आशा तृष्णा नृत्य करत हैं लेत तान गति न्यारी ॥ २ ॥ पांच पचीसी कामिनी घटमें गावत मनसों गारी। झगड़ झगड़ मिलि फगुआ मांगत भाव बतावत भारी ॥ ३ ॥ खेलत खेल युग बहु बीते अब जिय भयो दुखारी। मेवाराम जैन हित होरी अबकी बार हमारी ॥ ४ ॥

४६—मानिककृत होली।

कहा वानि परी पिय तोरी-कुमति संग खेलत है नित होरी ॥ टेक ॥ कुमति कूर कुबिजा रंग राची लाज शरम सब छोरी। राग द्वेष भय धूलि लगावे नाचे ज्यों चकडोरी। अक्ष विषय रंग भरि पिचकारी कुमति कुत्रिय सरबोरी। जा प्रसंग चिर दुखी भये फिर प्रीति करत बरजोरी ॥ २ ॥ निज घरकी पिय सुधि विसारके परत पराई पोरो। तीन लोकके ठाकुर कहियत सो विधि सबरी बोरी ॥ ३ ॥ बरजि रही बरजों नहिं मानत ठानत हठ बरजोरी। हठ तजि सुमति सीख भजि मानिक तो बिलसो शिव गोरी ॥४॥

४७—दौलतकृत होली।

छाड़ि दे तूं यह वुधि भोरी-वृथा पर सों रत जोरी ॥टेक॥ जे पर हैं नर हैं थिर पोषत जे कल मलकी झोरी। इन सों करि ममता अनादिसे बन्धे कर्मकी डोरी। सहे भव जलधि हिलोरी ॥ १ ॥ व जड़ है तूं चेतन ज्योंही आप बतावत जोरी। सम्यक दर्शन ज्ञान चरण तप इन सत्संग रचोरी ॥ सदा विलसौ शिव गोरी ॥ २ ॥ सुखिया भये सदा जे नर

जासों ममता टोरी । 'दौल' हिये अब लीजे पीजे ज्ञान पियूष कटोरी ॥ मिटैं भव व्याधि कठोरी ॥३॥

४८—इंग्लिश शिक्षापर होली ।

छैल मिडिल कैसो हांरी मचाई ॥टेक॥ देशी रीति लिवास छांड़िके कोट लिये सिलवाई । खुले अगाड़ो कटे पिछाड़ी टोपी गोल जमाई । घड़ी आगे लटकाई ॥ छेल मिडिल कैसो० ॥ १ ॥ बूट देवको पहिन पांवमें तनियां खूब कसाई । बैठन नहिं पत-लुन देत है टाड़े करत मुताई । धन्य अंगरेजो आई । छैल० ॥ २ ॥ टेढ़ा डंडा हाथ साथमें वंडास्वान सुहाई । ऐले गुलूबन्द कालर डटके मुखमें चुरट दबाई । धुआं फक फक उड़ाई छैल० ॥ ३ ॥ घरमें जा अंगरेजो बोलें समझत नाहिं लुगाई । मागे वाटर देती है रोटी बोल उठे भुंझलाई । डेम यू क्या ले आई ॥ छैल० ॥ ४ ॥ कौन बनावे रंग वसन्ती कौन गुलाल उड़ाई । स्याहीकी डबिया हाथ बुरुस है करते हैं बूट सफाई । छोड़के सलेमसाई ॥ छैल० ॥ ५ ॥ सातों जति मिडिलकर बैठे दूर भई पण्डि-ताइ । गिट पिट मिस्टर होटर जावें मदिरा मटन ...... आंख लडाई ॥ छैल० ॥ ६ ॥

सातवां अध्याय ।

कथा संग्रह ।

४६—सुगंधदशमी व्रत कथा ।

चौपाई—वर्द्धमान बन्दो जिनराय । गुरु गौतम बन्दो सुखदाय ॥ सुगन्ध दशमीव्रतकी कथा । वर्द्ध-मान सुप्रकाशी यथा ॥१॥ मगधदेश राजगृह नाम । श्रेणिक राज करै अभिराम ॥ नाम चेतना गृह पट-रानि । चन्द्ररोहिणी रूप समान ॥ २ ॥ नृप बैठो सिंहासन परे । बनमाली फल लायो हरे ॥ कर प्रणाम वच नृपसे कहो । चित प्रमोदसे ठाड़ो रहो ॥ ३ ॥ वर्द्धमान आये जिन स्वामि । जिन जीतो उद्यम अरि काम ॥ इतनी सुनत नृपति उठ चलो । पुरजन युत दलबलसै भलो ॥ ४ ॥ समोशरण बन्दे भगवान । पूजा भक्ति धार बहुमान ॥ नर कोठा बैठो नृप जाय । हाथ जोड़ पूछे शिर जाय ॥ ५ ॥ सुगन्ध दशमी व्रत भल भाषि । ता नरकी कहिये अब साखि ॥ गणधर कहैं सुनो मगधेश । जम्बूद्वीप विजयार्द्ध देश ॥ ६ ॥ शिवमन्दिर पुर उत्तरश्रेणी । विद्याधर प्रीतकर

]

जनी॥ कमलावती नारि अति रूप। सुरकान्तासे अधिक अनूप॥ सागरदत्त बसे तहां साह। जाके जिनव्रतमें उत्साह॥ धनदत्त वनिता गृह कही मनोरमा ता पुत्री सही॥ ८॥ सुगुप्तचार्य गृह आइयो। देख मुनीन्द्र दुःख पाइयो॥ कन्या मुनिकी निन्दा करी। कुछ मनमें नहिं शङ्का धरी॥ ९॥ नग्न गात दुर्गंध शरीर। प्रगट पने देहो नहिं चीर॥ मुख ताम्बूल हतो मुनि अङ्ग। मानो सुखको कीनो भङ्ग॥ १०॥ भो अन्तराय जब भयो। मुनि उठ जाय ध्यान वन दियो॥ समताभाव धरै उर माहिं। किञ्चित खेद चित्तमें नाहिं॥ ११॥ जीत अवधि समय कछु गयो। मनोरमाका काल सु भयो॥ भई गधीपुनि कुकरी ग्राम। अपर ग्राम भई सूकरी नाम॥ १२॥ मगध सुदेश तिलकपुर जान। विजयसेन तहंका नृप मान॥ चित्ररेखा ता रानी कही। ता पुत्री दुगन्धा भई॥१३॥ एक समय गुरुबन्दन गयो। पूजा कर विनतीको ठयो॥ मो पुत्री दुर्गन्ध शरीर। कहो भवान्तर गुण गंभीर॥ १४॥ राजावचन मुनिवर सुने। मुनि वृतान्त रायसे भने॥ सब वृत्तान्त

हाल जो जान। मुनिराजाको कहो बखान ॥ १५ ॥
सुन दुर्गन्धा जोड़े हाथ। मोपर कृपा करो मुनिनाथ!
ऐसाव्रत उपदेशो मोहि। यासे तनु निरोग अब होहि
॥१६॥ दयावन्त बोले मुनिराय। सुन पुत्री व्रत चित्त
लगाय॥ समता भाव चित्तमें धरो। तुम सुगन्ध
दशमी व्रत करो ॥१७॥ यह व्रत कीजै मनवचकाय।
यासे रोग शोक सब जाय॥ दुर्गंधा विनवे तिनुपाय
कहिये सविधि महा मुनिराय ॥ १८ ॥ ऐसे वचन
सुने मुनि जबै। तब बोले पुत्री सुन अबै॥ भादों
शुक्ल पक्ष जब होय। दशमो दिन आराधोसोय ॥१९॥
चारों रसकी धारा देव। मनमें राखो श्रीजिनदेव॥
शीतलनाथकी पूजा करो। मिथ्या मोह दूर परिहरो
॥२०॥ व्रतके दिन छोड़ो आरम्भ। यासे मिटै कर्मका
दंभ॥ याकेकरत पाप क्षय जाय। सो दश वर्ष करो
मन लाय ॥२१॥ जब यह व्रत सम्पूर्ण होय। उद्या-
पन कीजे चित जोय॥ दश श्री फल अमृत फल
जान। नीबू सरस सदा फल आन॥२२॥ दश दीजे
पुस्तक लिखवाय। यह विधि सब मुनि दई बताय॥
विधि सुन दुर्गन्धा व्रत लयो। सब दुर्गन्ध ततृक्षण

गयो ॥ २३ ॥ व्रतकर आयु जो पूरण करी। दशवें स्वर्ग भई अप्सरी ॥ जिन चैत्यालय बंदन करे। सम्यक्भाव सदा उर धरे ॥२४॥ भरतक्षेत्र तहं मगध सुदेश। भूति तिलकपुर वसे अशेष ॥ राजा महीपाल तहां जान । मदन सुन्दरी त्रिया बखान ॥२५॥ दशवें दिवसे देवी आन। ताके पुत्री भई निदान ॥ मदनावती नाम धर तास। अति सुरूप तनु सकल सुवास ॥२६॥ बहुत बातको करे बखान। सुर कन्या मानों उन्मान ॥ कोसांबीपुर मदन नरेन्द्र। रानी सती करे आनन्द ॥२७॥ पुरुषोत्तम सुत सुन्दर जान। विद्यावन्त सुगुणकी खान॥ जो सुगन्ध मदनावलि जाय। सो पुरुषोत्तमको परनाय ॥ २८ ॥ राजा मदन सुन्दरी बाल। सुखसे जात न जानो काल ॥ एक दिवस मुनिवर वंदियो। धर्म श्रवण मुनिवरपर कियो ॥२९॥ हाथ जोड़ पूछे तब राय। महा मुनीन्द्र कहो समझाय ॥ मो गृह रानी मदनावली। ता शरीर शौरभता भली ॥ ३० ॥ कौन पुन्यसे सुभग सुरूप। सुरवनितासे अधिक अनूप ॥ राजा बचन मुनीश्वर सुने। सब वृत्तान्त रायसे भने ॥ ३१ ॥ जैसे दुर्गन्धा व्रत

लहो। जैसी विधि नरपतिसे कहो॥ सुने भवांतर जोड़े हाथ। दिक्षाव्रत दीजे मुनिनाथ ॥३२॥ राजाने जब दिक्षा लई। रानी तबे अर्जिका भई॥ तपकर अन्त स्वर्गको गई। सोलम स्वर्ग प्रतेन्द्र सो भई ॥ ३३ ॥ बाईस सागर काल जो गयो। अन्तकाल ता दिवससे चयो। भरत सुक्षेत्र मगध तहं देश। वसुधा अमर केतुपुर वेश ॥ ३४ ॥ ता नृप गेह जन्म उन लहो। जो प्रतेन्द्र अच्युत दिव कहो ॥ कनककेतु कञ्चन द्युति देह। बनिता भोग करे शुभगेह ॥३५॥ अमरकेतु मुनि आगम भयो। कनककेतु तहं बन्दन गयो॥ सुनो सुधर्म श्रवण संयोग। तजे परिग्रह अरु भव भोग ॥ ३६ । घाति घातिया केवल लयो। पुनि अघाति हनि शिवपुर गयो॥ व्रत सुगन्ध दशमी विख्यात। ता फल भयो सुरभि युत गात॥ ३७॥ यह व्रत पुरुष नारि जो करे। सो दुख संकट भूल न परे॥ शहर गहेली उत्तम वास। जैनधर्मका जहां प्रकाश॥ ३८॥ सब श्रावक व्रत संयम धरे। पूजा दानसे पातक हरें॥ उपदेशी विश्व भूषण सही। हेमराज पंडितने कही॥ ३९॥ मन बच पढ़े सुनो

जो कोय। ताको अजर अमर पद होय॥ यासे भविजन पढ़ो त्रिकाल। जो छूटे विधिके भ्रम जाल॥

५०—अनन्त चौदहस व्रत कथा।

दोहा—अनन्तनाथ बन्दों सदा, मनमें कर बहु भाव।
सुर असुर सेवत जिन्हैं, होय मुक्ति पर चाव॥१॥

जम्बूद्वीप द्वीपनमें सार। लख जोजन ताको विस्तार॥ मध्य सुदर्शन मेरु बखान। भरत क्षेत्र ता दक्षिण जान॥ २॥ मगध देश देशों शिरमणी। राजगृह नगरी अति बनी॥ श्रेणिक महाराज गुण वन्त। रानी चेलना गृह शोभन्त॥ ३॥ धर्मवन्त गुण तेज अपार। राजा राय महा गुणसार॥ एक दिवस विपुलाचल वीर। आये जिनवर गुण गम्भीर॥ ४॥ चार ज्ञानके धारक कहे। गौतम गणधर सो संग रहे॥ छह ऋतुके फल देखे नयन। बनमाली लेचालो ऐन॥ ५॥ हर्ष सहित बन माली गयो। पुष्प सहित राजा पर गयो। नमस्कार कर जोड़े हाथ। मो पर कृपा करो नरनाथ॥ ६॥ विपुलाचल उद्यान कहन्त। महा मुनीश्वर तहां वसन्त॥ सुन राजा अति हर्षित भयो। बहुत दान मालीको दयो॥ ७॥ सत ध्वनि

बाजे बाजन्त । प्रजा सहित राजा चालन्त ॥ दे प्रद-क्षिणा बैठो राव । जिनवर देख करो चित चाव ॥ ८ ॥ द्वै विधि धर्म कह्यो समुझाय । जासों पाप सर्व जर जाय ॥ खग तहां आयो एक तुरन्त । सुंदर रूप महा गुणवन्त ॥ ६ ॥ नमस्कार जिनवरको करो । जय जयकार शब्द उच्चरो ॥ ताहि देख आश्चर्यित भयो । राजा श्रेणिक पूछतभयो ॥ १० ॥ सेना सहित महागुण खानि । को यह आयो सुन्दर वाणि ॥ याकी बात कहो समुझाय । ज्ञानवन्त मुनिवर तुम आय ॥ ११ ॥ गौतम बोले बुद्धि अपार । विजय नगर कहो अतिसार ॥ मनो कुम्भ राजा राजन्त । श्रीमती रानीको कन्त ॥ १२ ॥ ताका पुत्र अरिंजय नाम । पुन्यवन्त सुन्दर गुणधाम ॥ पूरब तप कीनो इन जोय । ताका फल भुगते शुभ सोय ॥ १३ ॥ ताकी कथा कहूं विस्तार । जम्बूद्वीप द्वीपमें सार ॥ भरतक्षेत्र तामें सुखकार । कौशल देश बिराजे सार ॥ १४ ॥ परम सुखद नगरी तहं जान । विप्र सोम शर्म्मा गुण खान ॥ सोमिल्या भामिन ता कही । दुख दरिद्रकी पूरित मही ॥१५॥ पूरब पाप किये अति घने । ताके दुख

भुगतेही बने ॥ सुन राजायाको वृतांत । नगर नगर सों भ्रमें दुखान्त ॥१६॥ देश विदेष फिरे सुखआश । तोहु न पावे सुक्ख निवास ॥ भ्रमत भ्रमत सो आयो तहां । समोशरण जिनवरको जहां ॥ १७ ॥

दोहा—अनन्तनाथ जिनराजका, समोशरण तिहि बार ।
सुर नर अति हर्षित भये, देख महा द्युति सार ॥१८॥

विप्र देख अति हर्षित भयो । समोशरण बन्दनको गयो ॥ बन्दि जिनेश्वर पूछे सोई । कहा पाप मैं कीनो होई ॥ १६ ॥ दरिद्र पीड़ा रहै शरीर । सोती व्याधि हरो गम्भीर ॥ गणधर कहैं सुनो द्विजराय । अनन्तव्रत कीजे सुखदाय ॥ २० ॥ तब विप्र बोलाकर भाय । किस विधि होई सो देहु बताय ॥ किस प्रकार या व्रतको करो । कहा विधान चित्तमें धरों ॥ २१ ॥ भादों मास सुक्खकी खान । चौदश शुक्ल कहो सुख दान ॥ कर स्नान शुद्ध हो जाय । तब पूजे जिनवर सुखदाय ॥ २२ ॥ गुरु बन्दना करे चित लाय, या विधसे व्रत लेह बनाय ॥ त्रिकाल पूजे श्रीजिनदेव । रात्रि जागरण कर सुख लेव ॥२३॥ गीत रु नृत्य महोत्सव जान । धारा जिनवर करो बखान ॥

वर्ष चतुर्दश विधिसों धरे । ता पीछे उद्यापन करे ॥२४॥
करै प्रतिष्ठा चौदह सार । या से पाप होइ जर छार ॥
झारी धारी अधिक अनूप । चरण कलश देवे शुभ
रूप ॥२५॥ दीवट झालर सङ्कल माल । और चंदोवे
उत्तम जाल ॥ छत्र सिंघासन विधि से करे । तातें
सर्व पाप परिहरे ॥ २६ ॥ चार प्रकार दान दीजिये ।
याते अतुल सुक्ख लीजिये ॥ अन्तावस्था ले सन्यास
ताते मिले स्वर्गका वास ॥ २७ ॥ उद्यापनकी शक्ति
न होय । कीजे व्रत दूनों भवि लोय ॥ विप्र कियो व्रत
विधिसों आय । सब दुख ताके गये विलाय ॥ २८ ॥
अन्तकाल धरके सन्यास । तासे पायो स्वर्ग निवास ॥
चौथे स्वर्ग देव सो जान । महा ऋद्धिताके सो बखान
॥२९॥ विजयार्द्ध गिरी उत्तम ठौर । कांचीपुर पत्तन
शिर मौर । राजा तहं अपराजित वीर । विजया तासु
प्रिया गम्भीर ॥३०॥ ताको पुत्र अरिञ्जह नाम । तिन
यह आय कियो परणाम ॥ कञ्चनमय सिंहासन
आन ॥ ता पर नृप बैठो सुख खान ॥ ३१ ॥ व्योम
पटल विनशत लख सन्त । उपजो चित वैराग महंत ॥
राज पुत्रको दयो बुलाय । आप लई दीक्षा शुभ भाय

॥३२॥ सही परीषह दृढ़ चित धार। तातें कर्म भये अति च्चार ॥ घाति घातिया केवल भयो। सिद्धि बुद्धि सो पद निर्भयौ ॥ ३३ ॥ रानीने व्रत कीनो सही। देव देह दिव अच्युत लही ॥ तहां सु सुख भुगते अधि-काय। तहांसे आय भयो नर राय ॥३४॥ राज ऋद्धि पाई शुभ सार। फिर तप कर विधि कीने क्षार॥ तहांसों मुक्ति दूरको गयो। ऐसो तिन व्रतको फल लयो ॥ ३५ ॥ ऐसा व्रत पाले जो कोई। स्वर्ग मुक्ति पद पावे सोई ॥ बिनय सागर गुरु आज्ञा करी। हरि किल पाठ चित्तमें धरी ॥ ३६ ॥ तब यह कथा करी मन ल्याय। यथा शास्त्र मैं वरणी आय॥ विधि पूर्वक पाले जो कोय। ताको अजर अमर पद होय ॥३७॥

५१—श्रीरविव्रत कथा।

चौपाई—श्रीसुखदायक पार्श्वजिनेश। सुमति सुगति दाता परमेश ॥ सुमिरों शारद पद अरविन्द। तिनकर व्रत प्रगटो सानन्द ॥ १ ॥ बाणारस नगरी सुविशाल। प्रजापाल प्रगटो भूपाल॥ मति सागर सेठ सुजान, ताको भूप करे सन्मान ॥ तासु त्रिया गुणसुन्दरि नाम। सात पुत्र ताके अभिराम। षट् सुत

भोग करे परणीत। बाल रूप गुण धर सुविनीत ॥३॥ सहस्र कूट शोभित जिन धाम। आये यदि पति खण्डित काम॥ सुनि मुनि आगम हर्षित भये। सर्व लोग बन्दनको गये ॥३॥ गुरुवाणी सुनिके गुणवती सेठिन तब जो करी बिनती ॥ ५ ॥ करुणा निधि भाषै मुनिराय। सुनो भव्य तुम चित्त लगाय॥ जब अषाढ़ सुदि पक्ष विचार। तब कीजै अन्तिम रविवार ॥६॥ अनशन अथवा लघु आहार। लवणादिक जो करे परिहार॥ नवफल युत पञ्चामृत धार। वसु प्रकार पूजो भवहार ॥ ७ ॥ उत्तम फल इक्यासी जान। नवश्रावक घर दीजे आन॥ या विधि करो नव वर्ष प्रमाण। याते होय सर्व कल्याण ॥ ८ ॥ अथवा एक वर्ष एक सार। कीजै रवीव्रत मनहिं विचार॥ सुन साहुन निज घरको गई। व्रत निंदासे निन्दित भई ॥ ९ ॥ व्रत निन्दासे निर्धन भये। सात पुत्र अयोध्यापुर गये॥ तहां जिनदत्त सेठ गृह रहे। पूर्व दुःकृतका फल लहें ॥ १० ॥ मात पिता गृह दुःखित सदा। अवधि सहित मुनि पूछे तदा॥ दयाबन्त मुनि ऐसे कहो। व्रत निन्दासे तुम दुख लहो ॥ ११ ॥

सुनगुरु वचन बहुर व्रत लीयो । पुण्य कियो घरमें धन भयो ॥ भविजन सुनो कथा सम्बन्ध । जहां रहते थे वे सब नन्द ॥ १२ ॥ एक दिवस गुणधर सुकुमार । घास ले आये गृह द्वार ॥ क्षुधावन्त भावज पे गयो । दन्त विना नहीं भोजन दयो ॥ १३ । बहुरि गये जहां भूलों दन्त । देखो तासे अहि लिपटन्त ॥ फणि-पतिकी तहां विनती करी । पद्मावति प्रगटी सुन्दरी ॥ १४ ॥ सुंदर मणिमय पारसनाथ । प्रतिमा पञ्च-रत्न शुभ हाथ ॥ देकर कहो कुंवर कर भोग । करो क्षणक पूजा संयोग ॥ १५ ॥ आनबिंब निज घरमें धरो । तिहकर तिनको दारिद हरो ॥ सुख विलास सेवे सब नंद । तिन प्रति पूजों पार्श्व जिनेंद्र ॥ १६ ॥ साकेत नगरी अभिराम । जिन प्रसाद राचा शुभ धाम ॥ करी प्रतिष्ठा पुण्य संयोग । आये भविजन संग सो लोग ॥ १७ ॥ सङ्घ चतुर्विधिको सन्मान किये। दिये। मन वांछित दान ॥ देख सेठ सम्पदा । जाय कहो भूपतिसे तदा ॥ १८ ॥ तब पूछो वृत्तांत । सत्य कहो गुणधर गुणवंत ॥ सुलक्षणताको रूप । अत्यानंद भयो सो भूप ॥१

भूपति गृह तनुजा सुंदरी। गुणधरको दीनी गुण भरी॥ कर विवाह मङ्गल सानंद। हय गय पुरजन परमानंद॥ २०॥ मन वांछित पाये सुख भोग। विस्मित भये सकल पुर लोग॥ सुखसे रहित बहुत दिन भये। जब सब बंधु बनारस गये॥ २१॥ मात पिताके परसे पांय। अत्यानन्द हृदय न समाय॥ बिघटो विषम विषम वियोग। भया सकल पुरजन संयोग॥ २२॥ आठ सात सोलहके अङ्क। रविव्रत कथा रची अकलङ्क॥ थोड़े अर्थ ग्रन्थ विस्तार। कहें कवीश्वर जो गुणसार॥ २३॥ यह व्रत जो नर नारी करे। जो कबहूं दुर्गति नहिं परे॥ भाव सहित सो शिव सुख लहैं। भानुकीर्त्ति मुनिवर इमि कहैं॥२४॥

५२—ज्येष्ठजिनवर कथा।

चौपाई—बंदौ ऋषभदेव जिनराज। पुनि सादर बन्दौ सुख साज॥ गोतम बन्दौ शुभमति लहौं। कथा जेठ जिनवरकी कहौं॥ १॥ आरज खण्ड देश गुजरात। खंभपुरी नगरी सुविख्यात॥ चन्द्र शिखर राजा गुनवन्त। रानी चन्द्रमतीको कन्त॥ २॥ विप्र सोमशर्मा इक बसै। सौमिल्या वनिता तस लसै।

जज्ञ बालक जाको सुतजान। सोमश्री ता त्रिया बखान ॥ ३ ॥ सोम विप्रको मरन जु भयो। जज्ञ बालकको अति दुख थयो॥ सोमश्रीसो सासू कही। नूतनकलस भरनको दई ॥ ४ ॥ विप्रनके घर देहु पठाय। अरु पीपरको सींचउ जाय ॥ आज्ञालै पनिघट पै गई। मिली सखी तहं ठाढ़ी भई ॥ ५ ॥ तापे जेठ जिनाली वर्त। आज सखी नगरी सब कर्त॥ सुनि कर सोमश्री सुधिभई। भरिलै घट चैत्यालय गई ॥ ६ ॥ तिन गुरु पास लियो व्रत सही। जैसी विध ग्रन्थनमें कही॥ उत्तम विध चौबिस जो बर्ष। मध्यम बारह लेखन हर्ष ॥ ७ ॥ लै व्रत पूजा जिनकी करी। मिथ्या वुद्धि सकल परिहरी॥ काहु दुष्ट सासू सों कही। बहू गई चैत्या-लय सही ॥ ८ ॥ वह कलसा जिनवर पर ढस्यो। सुनते ब्राह्मनि कोप जो कस्यो॥ सोमश्री घरमें जब गई। सासु वचन कटु बोलत भई ॥ ९ ॥ तू घरमें आवैगी तबै। मेरो घट ल्यावैगी जवै॥ ऐसे वचन सासुके सुने। सोमश्री तब मस्तक धुनै॥ १० ॥ तब वह गई जहां हतो कुम्हार। भैया मेरो वचन सम्हार। सोनेक तू कङ्कन लेहु। कलस तीस दिन

हमको देहु ॥ ११ ॥ तव कुम्हार कंकन नहिं लयो । तिन कलसा लै ताको दयो ॥ धनि पुत्री तू करि वृत अबै । मेरे ते घट लीजै सबै ॥ १२ ॥ मास जेष्ठ तौ यह व्रत करौ । कछुक पुन्य मेरो अनुसरौ । तव तिन तापे लै घट लियौ । भरि जल जाय सासुको दयौ ॥ १३ ॥ वृत अनमोद कुम्हार जो मरयौ । श्रीधर राजा सो अवतरयो ॥ करि वृत सोमश्री जो मरी । श्रीधरके पुत्री अवतरी ॥ १४ ॥ कुम्भश्री है ताको नाम । रखे चित्त जिनेश्वर धाम ॥ ऐसे करत वहुत दिन गये । मुनिस्वरनमें आये नये ॥ १५ ॥ परिजन सहित राय संग गयौ । नगर लोग अनन्दित भयौ ॥ द्वै विध कर्म किया परकास । सुनिकर गयो चित्तको त्रास ॥ १६ ॥ तहां सोमल्या देखी दुखी । तन कुचील अरु नेक न सुखी । पूछै राय कहा इन कीन । जाते भई महा आधीन ॥ १७ ॥ सुनि मुनि अवधि ज्ञान परकास । यह है सोमश्रीको सासु ॥ निंदो वृत जिन-वरको तबै । ताको दुख भुगतत है अबै ॥ १८ ॥ कुम्भ राग भाथेमें भयो। पूरब पावनको फल लयो । सोमश्री मर उपजी सुता । सो यह कुम्भश्री गुण युता ॥१९॥

सुनि कुम्भश्री जोड़े हाथ। मो पर कृपा करौ मुनि-नाथ॥ यह मेरी सासूको जीव। दीखत दुखित रु बिकल शरीर॥ २०॥ ऐसी विध उपदेशो अबै। जाते जाइ दुक्ख भजि सबै। मुनिवर कहैं याहि तू छुवै। अरु गन्धोदक ऊपर चुवै॥ २१॥ अरु सेवौ जिनवरके पांय। सब दरिद्र दुख वेग मिटांय॥ तब कुम्भश्री कियो उपगार। दुर्गन्धाको गयो विकार॥ २२॥ सोमिल्या रु अर्जिका भई। तप करि प्रथम स्वर्गमें गई॥ कुम्भश्री फिर यह वृत कर्‌यौ। दूजे स्वर्ग देव अवतर्‌यौ॥२३॥ परम्परा वह जे हैं मुक्ति। भविजन करौ सबे वृत युक्ति॥ सत्रहपर अट्ठावन जान। पण्डित जन संवत्सर मान॥ २४॥ जेष्ठ शुक्ल गुरु एकादसी। नगर गहेली शुभ नति वसी॥ जो यह करै भव्य वृत कोय। सो नर नारि अमर-पति होय॥ २५॥ रोग सोग दुख संकट जाय। ताकी जिनवर करी सहाय॥ जो नर नारी इक चित करै। मन वांछित सुख संपति वरै॥ २६॥

५३—दशलक्षण व्रत कथा।

दोहा—प्रथम वन्दि जिनराजके, शारद गणधर पांय।

दश लचण व्रतकी कथा, कहूं अगम सुखदाय ॥१॥

चौपाई—विपुलाचल श्रीबीर कुमार। आये भव-भंजन भरतार॥ सुन भूपति तहां बंदन गयो। सकल लोक मिलि आनन्द भयो॥ २॥ श्रीजिन पूजे मन-धर चाव। स्तुति करी जोड़कर भाव॥ धर्मकथा तहां सुनि विचार। दान शील तप भेद अपार ॥३॥ भव दुख चायक दायक शर्म। भाषो प्रभु दश लक्षण धर्म॥ ताको सुनि श्रेणिक रुचि धरी। गुरू गौतमसे बिनती करी॥ ४॥ दशलचण व्रत कथा विशाल। मुझसे भाषो दीनदयाल॥ बोले गुरु सुन श्रेणिक चंद। दिव्य ध्वनि कहो वीर जिनेन्द्र॥ ५॥ खगड धातुकी पूरब भाग। मेरु थकी दच्चिण अनुराग॥ सीतो दाउ पकंठी सही। नगरोविशालच शुभ कही॥ ६॥ नाम प्रीतकर भूपति बसे। प्रीय करी रानी सुत लसै। मृगांकरेखा सुता सुजान। मति शेखर नामा सो प्रधान॥ ७॥ शशिप्रभा ताकीवर नार। सुता कामसेना निर-धार॥ राजजेठ गुणसागर जान। शील सुभद्रा नारि बखान॥ ८॥ सुता मदनरेखा तसु खरी। रूपकला लक्षण गुणभरी॥ लचण भद्र नामा कुतवाल। शशि-

रेखा नारी गुणमाल ॥ ६ ॥ कन्या तास घरे रोहनी।
ये चारों वरणी गुरु तनी ॥ शास्त्र पढ़े गुरु पास
विचार। स्नेह परस्पर बढ़ा अपार ॥ १० ॥ मास
वसन्त भयो निरधार। कन्या चारो वनहि मंझार ॥
गई मुनिश्वर देखे तहां। तिनको वन्दन कीनो वहां
॥ ११ ॥ चारों कन्या मुनिसे कही त्रिया लिङ्ग ज्यों
छूटै सही ॥ ऐसा व्रत उपदेशो अबै। यासे नर तनु
पावे सबै ॥ १२ ॥ बोले मुनि दशलक्षण सार। चारों
करो होहु भवपार ॥ कन्या बोली किमि किजिये।
किस दिनसे वृतको लीजिये ॥ १३ ॥ तब गुरु बोले
वचन रसाल। भादों मास कही गुणमाल ॥ धवल
पंचमी दिनसे सार। पंचामृत अभिषेक उतार ॥१४॥
पूजार्चन कीजे गुणमाल। जिन चौबीस तनी शु
साल। उत्तम क्षमा आदि अति सार। दशमी ब्रह्म
चर्य गुणधार ॥ १५ ॥ पुष्पांजलि इस विधि दीजिये
तीनों काल भक्ति कीजिये ॥ इस विधि दस पार
आचरो। नियमित व्रत शुभ कार्या करो ॥ १६
उत्तम दश अनशन कर योग। मध्यम व्रत कांजी
भोग ॥ भूमि शयन कीजे दश राति। ब्रह्मच

पालो सुख पांति ॥ १७ ॥ इस विधि दश वर्ष जब
तांय । तबतक व्रत कीजे धर भाय ॥ फिर व्रत उद्या-
न कीजिये । दान सुपात्रीको दीजिये ॥ १८ ॥
प्रौषधि अभय शास्त्र आहार । पञ्चामृत अभिषेकहि
नार ॥ माडनो रचि पूजा कीजिये । छत्र चमर
प्रादिक दीजिये ॥ १९ ॥ उद्यापनकी शक्ति न होय ।
तो दूनो व्रत कीजे खोय ॥ पुण्य तनो संचय भंडार ।
परभव पावे मोक्षसो द्वार ॥ २० ॥ तब चारों कन्या
व्रत लियो । मुनिवर भक्ति भाव लखि दियो ॥ यथा-
शक्ति व्रत पूरण करो । उद्यापन विधिसे आचरो
। २१ ॥ अन्त काल वे कन्या चार । सुमिरण करो
पञ्च नवकार ॥ चारों मरण समाधि सु कियो । दशवें
स्वर्ग जन्म तिन लियो ॥ २२ ॥ षोड़स सागर
आयु प्रमाण । धर्म ध्यान सेवें तहां जाम ॥ सिद्ध-
क्षेत्रमें करे विहार । क्षायक सम्यक उदय अपार ॥२३॥
सुभग अवन्तीदेश विशाल । उज्जैनी नगरी गुणमाल ॥
[illegible] भद्रनामा नरपती । रानी चार सो अति गुणवती
॥ २४ ॥ देव गर्भमें आये चार । ता रानीके उदर
मझार ॥ प्रथम सुपुत्र देवप्रभु भयो । दूजो सुत

गुणचन्द्र भाषियो ॥ २५ ॥ पद्मप्रभा तीनों बलवीर । पद्मस्वारथी चौथोधीर ॥ जन्ममहोत्सव तिनको करो । अशुभ दोष ग्रह दोनों हरो ॥ २६ ॥ निकल प्रभा राजाकी सुता । ते चारों परणी गुणयुता ॥ प्रथम सुता सो ब्राह्मी नाम । दुतिय कुमारी सो गुण-धाम ॥२७॥ रूपवती तीजी सुकुमाल । मृगाक्ष चौथी सो गुणमाल ॥ करो व्याह घरको आइयो । सकल लोक घर आनन्द कियो ॥ २८ ॥ स्थूलभद्र राजा इक दिना । भोग विरक्त भयो भव तना ॥ राज-पुत्रको दीनो सार । बनमें जाय योग्य शुभधार ॥२९॥ तपकर उपजो केवल ज्ञान । बसु विधि हनिपायो निर्वाण ॥ अब वे पुत्र राजको करैं । पुण्यका फल पावैं ते धरें ॥३०॥ चारों बांधव चतुर सुजान । अहि निशि धर्म तनो फल मान ॥ एक समय विरक्त सो भये । आतम कार्य चिन्तवत ठये ॥३१॥ चारों बांधव दिक्षालई । बनमें जाय तपस्या ठई ॥ निज मनमें चिद्रूप आराधि । शुक्ल ध्यानको पायो साधि ॥३२॥ सर्व विमल केवल ऊपनो । सुख अनन्त तबही सो ठनो ॥ करैं महोत्सव देव कुमार । जय जय शब्द भयो तिहिवार ॥

॥ ३३ ॥ शेष कर्म निर्बल तिन करे। पहुंचे मुक्तिपुरीमें खरे। आगम अगोचर भवजल पार। दश लक्षण व्रतके फल सार ॥३४॥ वीर जिनेश्वर कही सुजान। शीतल जिनके बाड़े मान। गौतम गणधर भाषी सार। सुनि श्रेणिक आये दरबार ॥३५॥ जो यह व्रत नरनारी करे। ताके गृह सम्पति अनुसरे ॥ भट्टारक श्री भूषण वीर। तिनके चेला गुण गम्भीर ॥३६॥ ब्रह्मज्ञान सागर सुविचार। कही कथा दशलक्षण सार ॥ मनवचतन व्रतपाले जोइ। मुक्तिबारांगणा भोगे सोइ ॥

५४—पुष्पांजलि व्रत कथा।

दोहा—वीर देवको प्रणमिकर, अर्चा करो त्रिकाल।
पुष्पांजलि व्रतकी कथा, सुनो भव्य अघटाल ॥

चौपाई—पर्वत विपुलाचलपर आय। समोशरण जिनवरका पाय। ता सुन राजा श्रेणिकराय। बन्दन चले प्रियायुत भाय ॥ २ ॥ बन्दनकर पूछे नृप तबे। हे प्रभु पुष्पांजलि व्रत अबे। मोसे कहो करो चित लाय। कोने करो कहा भई आय ॥ ३ ॥ बोले गौतम बचन रसाल। जम्बू द्वीप मध्य सो विशाल। सीता नदी दक्षिण दिशि सार। मंगलावती सुदेश अपार ॥

दोहा—रत्न संचयपुर तहां, वज्रसेन नृप आय।
जयवंती वनिता लसे, पुत्र बिहानो थाय ॥ ५ ॥

चौपाई—पुत्र चाह जिन मन्दिर गई। ज्ञानोदधि मुनि वन्दित भई ॥ हे मुनिनाथ कहो समझाय। मेरे पुत्र होइके नाय ॥ ६ ॥

दोहा—मुनि बोले हे बालकी, पुत्र होय शुभ सार। भूमि छह खंड सुसाधि है, मुक्ति तनो भरतार ॥ ७ ॥ सुनके मुनिके वचन तब, उपजो हर्ष अपार। क्रमसे परे मास नव, पुत्र भयो शुभ सार ॥ ८ ॥ यौवन वयस सो पायके, क्रीडा मण्डप सार। तहां व्योमसे आइयो खग भूपति सवार ॥ ९ ॥ रत्नशेखरको देखकर, बहुत प्रीति उर मांहि। मेघवाहनने पांच सो, विद्या दीनी ताहि ॥ १० ॥

चौपाई—दोनों मित्र परस्पर प्रीति। गये मेरु वन्दन तज भीत ॥ सिद्धकूट चैत्यालय बन्दि। आये पंचपिता आनन्दि ॥११॥ ताकी सखी जनाई सार। वेग स्वयम्वर करो तयार ॥ भूरि भूप आये तत्काल माल रत्नशेखर गल डाल ॥ १२ ॥ धूपकेत विद्याधर देख। क्रोध कियो मन मांहि विशेष ॥ कन्या काज

दुष्टता धरी। विद्या बल बहुमाया करी॥ १३ ॥ रत्न-शेखरसे युद्ध सो करो। बहुत परस्पर विद्याधरो। जीतो रत्नशेखर तिसवार। पाणिग्रहण कियो व्यवहार॥१४॥ मदन मजूषा रानी सङ्ग। आयो अपने गृह असङ्ग वज्रसेनको कर नमस्कार। मात तात मन सुक्ख अपार॥ १५॥ एक दिना मंदिर गिर योग। पहुंचे मित्र सहित सब लोग॥ चारण मुनि बंदे तिहि वार। सुनो धर्म चित भयो उदार॥ हे मुनि पूर्व जन्म सम्बन्ध तीनोंके तुम कहो निबन्ध॥ तब मुनि कहैं सुनो चित धार। एक मृणालनगर सुखकार॥ नृप मंत्री एक तहां श्रुतिकीर्ति। बन्धु मती बनिता अति प्रीति॥ एक दिना वन क्रीडा गयो। नारी संग रमत सों भयौ॥पापी सर्प सो भक्षण करी। मंत्री मृतक लखी निज नरी॥ भयो विरक्त जिनालय जाय। दीक्षा लीनी मन हर्षाय॥ यथाशक्ति तप कुछ दिन करो। पीछै भृष्ट भयो तप टरो॥ गृह आरम्भ करन चित ठनो। तब पुत्री मुख ऐसे भनो॥ तात जो मेरु चढ़ो किहि काज। फिर भव सिंधु पड़े तज लाज॥ यों सुन प्रभावती बच सार। मंत्री कोप कियो अघि-

कार ॥ तब विद्याको आज्ञा करी । पुत्रीको ले वनमें धरो ॥ विद्या सब बनमें ले गई । प्रभावती मन चिंता भई ॥ अरहंत भक्ति चित्तमें धरी । तब विद्या फिर आई खरी ॥ हे पुत्री तेरा चित जहां । वेग बोल पहुंचाऊं तहां ॥ पुत्री कही कैलाशके भाव । जिन दर्शनको अधिक ही चाव ॥ पूजा करके बैठो वहां । पद्मावती आई सोतहां ॥ इतने मध्य देव आइयो । प्रभावतो से पूछत भयो ॥ हे देवी कहिये किस काल । आये देवी देव सो आज ॥ पद्मावती बोली बच सार । पुष्पांजलि व्रत हैं सुखवार ॥ भादों मास शुक्ल पंचमी । पंच दिवस आरम्भ न श्रमी ॥ प्रोषध यथा शक्ति व्यवहार । पूजो जिन चौविसो सार ॥ नाना विधिके पुष्प जो लाय । करी एक माला जो बनाय ॥ तीन काल वह माला देय ॥ बहुत भक्तिसे विनय करेय । जपो जाप शुभ मंत्र बिचार । या विधि पंच वर्ष अवधार ॥ उद्यापन कीजे पुनि सार । चारप्रकार दान अधिकार ॥ उद्यापनकी शक्ति न होय । तो दूनो व्रत कीजे लोय ॥ यह सुन प्रभावती व्रत लयो । पद्मावती कृपाकर दयो ॥ स्वर्ग मुक्ति फलका दातार । है यह पुष्पांजलि व्रत सार ।

दोहा—पद्मावती उपदेशसे, लीना व्रत शुभ सार।
पृथ्वी परसो प्रकाशिके, कियो भक्ति चित धार॥
तप विद्याश्रुत कीर्तिने, पाई अति जो प्रचंड।
पद्मावती व्रत खण्डने, आई सो बलबण्ड॥

चौपाई—बासर तीन व्यतीते जबे। पद्मावती पुनि आई तबे। विद्या सब भागी तत्काल। करो सन्यास मरण तिस बाल॥ कल्प सोल्हवें मुख्य सो जान। देव भयो सो पुण्य प्रमाण॥ तहां देवने कियो विचार। मेरा तात भ्रष्ट आचार॥ मैं सम्बोधो वाकों आवे। उत्तम गति वय पावे तबे॥ यही विचार देव आइये। मरण सन्यास तातको कियो॥ वाही स्वर्ग भयो सो देव। पुण्य प्रभाव लयो फल एव॥ बन्धुमती माताका जीव। उपजा ताही स्वर्ग अतीव॥

दोहा—प्रभावतीका जीव तू, रत्नशेखर भयो आय।
माताका जो जीव हैं, मदन मजूषा थाय॥

श्रुतिकीर्तिको जीव जो तहां। मन्त्री मेघ बाहन है यहां॥ ये तीनोंके सुन पार्याय। भई सो चिन्ता अङ्ग न माय॥ सुन व्रत फल अस गुरुकी वानि। भई सुचित व्रत लीनों जानि॥ अपने थान बहुरि

जम्बूद्वीप अलंकृत हेर। रहौ ताहि लवणोदधि घेर॥ मेरु सु दक्षिण दिश है सार। है सो विदेह धर्म अवतार॥ कच्छ वतो सुदेश यहां बसे। बीत-शोकपुर तामें लसे॥ वस्त्रिव नाम तहांका राय, करे राज सुरपति सम भाय॥ मालीने आय जनावो दयो। विपुल बुद्धि प्रभू बनमें ठयो॥ इतनी सुन-नृप बन्दन गयो। दान बहुत माली को दयो॥ हे स्वामी रत्नत्रय धर्म। मोसों कहौ मिटै सब भर्म॥ तब स्वामीने सब विध कही। जो पहिले सो प्रकाशी सही॥ पंचामृत अभिषेक सु ठयो। पूजाप्रभुकी कर सुख लयो॥ जागिरनादि ठयो बहुभाय। इस विधि व्रत कर बिस्त्रिव राय॥ भाव सहित राजा व्रत करो। धर्म प्रतीत चित्त अनुसरो॥ षोडश भावना भावत भयो। अन्त समाधि मरण तिन करो॥ गोत्र तीर्थंकर बांधो सार। जो त्रिभुवनमें पूज्य अपार॥ सर्वार्थ सिद्धि पहुंचो जाय। भयो तहां अहमेन्द्र सुभाय॥ हस्त मात्र तन ऊंचो भयो। तेतिस सागर आयु सो लयो॥ दिव्य रूप सुखको भण्डार। सत्य निरूपण अवधिविचार " ". विचारी घरी। यच्छेश्वरको

सप्तव्यसन चित्रावली

चोरी का फल।

आज्ञा करी॥ बेग देश निर्माप्यो जाय। थापो सूथरा-पुर अधिकाय॥ कुम्भपुर राजा तहां वसे। देवी प्रजा-वती तिस लसे॥ श्रीआदिक तहां देवी आय। गर्भसे सोधना कीनी जाय॥ रत्नवृष्टि नृप आंगनभई। पन्द्रह मास लो बरसत गई॥ सर्वार्थ-सिद्धिसे सुर आय। प्रजावती सुकुच्छ उपजाय॥ मल्लिनाथ सो नामको पाय। दूज चन्द्रसम बढ़त सुभाय॥ जब विवाह मंगलविधि भई। तब प्रभु चित विरागता लई॥ दीक्षा धर बनमें प्रभु गये। घाति कर्म हनि निर्मल ठये॥ केवल ले निर्वाण सो जाय। पूजा करो सुरे सो आय॥ यह विधान श्रेणिकले सुनो। व्रत लीने चित अपने गुणो॥ भक्ति विनयकर उत्तम भाय। पहुंचे अपने गृहको आय॥ या विधि जो नरनारी कहो। ब्रह्मज्ञान भाषा निर्मोहो॥

सूचना।

प्रथम सर्गकी पृष्ठ संख्या २२४ और द्वितीय सर्गकी पृष्ठ संख्या ९७ कुल ३२१ हुई अतएव आगेसे पृष्ठसंख्या ३२२ दी जायगी।

इसी तरह ग्रन्थसंख्या प्रथम सर्गकी ९५ द्वितीयकी ५५ हुई है दोनोंका योग १५० हुआ अतएव १५१ नं० आगेसे दिया जायगा।

आठवां अध्याय ।

१५१—चौवीस दंडक ।

दोहा—वंदों वीर सुधीरको, महावीर गंभीर ।
वर्द्धमान सन्मति महा, देवदेव अतिवीर ॥

गत्यागत्य प्रकाश जो, गत्यागत्य वितीत । अद-भुत अतिगत सुगति जो, जैनेश्वर जगतीत ॥ २ ॥ जाकी भक्ति विना विफल, गये अनंते काल । अगि-नत गत्यागति धरों घट्यो न जगजंजाल ॥ ३ ॥ चौवीसौं दंडकविषै, धरो अनंती देह । लख्यो न निजपद ज्ञानविन, शुद्ध स्वरूप विदेह ॥ ४ ॥ जिन-वाणी परसादतैं, लहिये आतमज्ञान । दहिये गत्या-गति सबै, गहिये पद निर्वान ॥ ५ ॥ चौबीसौं दंडक तनी, गत्यागति सुनि लेहु । सुनकर विरकत भाव धर, चहुंगति पानी देहु ॥ ६ ॥

चौपाई—पहिलो दंडक नारकितनो । भवन पती दस दंडक भनो ॥ ज्योतिष व्यंतरस्वर्ग निवास । थावर पंच महा दुखरास ॥ ७ ॥ विकलत्रय अरु नर तिर्यंच । पंचेंद्री धारक परपंच ॥ यह चौबीस जु दंडक

कहे। अब सुन इनमें भेद जु लहे ॥ ८ ॥ नारककी गति आगति दोय। नर तिर्यंच पंचेंद्री जोय ॥ जाय असैनी पहलो लगैं। मनबिन हिंसाकर्म न पगैं ॥ सरीसर्प दूजे लौं जाय। अरु पक्षी तीजैलौं थाय ॥ सर्प जाय चौथे लौं सही। नाहर पंचम आगैं नहीं ॥ १० ॥ नारी छट्ठे लगही जाय। नर अरु मच्छ सातवें थाय॥ एतौ नारक आगति कही। अब सुन नारककी गति सही ॥ ११ ॥ नरक सातवेंको जो जीव। पशुगति ही पावै दुखदीव ॥ अरु सब नारक मर नर पशू। दोउं गति आवैं परवसू॥ १२ ॥ छट्टेको निकस्यो जु कदापि। सम्यक सह श्रावक निष्पाप। पंचम-निकस्यो मुनि हू होय। चौथेको केवलि हु कोय ॥ १३ ॥ तृतिय नरकको निकस्यो जीव। तीर्थंकर भी हो जगपीव ॥ यह नारककी गत्यागती। भाषी जिनवाणीमें सती ॥ १४ ॥ तेरह दंडक देवनिकाय तिनको भेद सुनो मनलाय ॥ नर तिर्यंच पंचेंद्री विना। औरनको नहिं सुरपद गिना ॥ १५ ॥ देव मरैं गति पांच लहांहिं। भू जल तरुवर नर तिर माहिं ॥ दूजे सुरग उपरले देव। थावर ह्वै न कह्यो जिनदेव ॥ १६॥

सहस्रारतैं ऊंचे खिरा। मरकर होवैं निश्चय नरा
भागभूमिके तिर्यंच नरा। दूजे देवलोकतैं परा ॥१७
जाय नहीं यह निश्चय कही। देवन भोगभूमि नहि
गही ॥ कर्म भूमियां नर अरु ढोर। इन विन भोग-
भूमि की ठौर ॥१८॥ जाइ न तातैं आगति दोइ ॥
गति इनकी देवनकी होइ ॥ कर्मभूमिया तिर्यंग
बुद्ध। श्रावकव्रत धर बारम शुद्ध ॥ १९ ॥ सहस्रार
ऊपर तिर्यंच । जाय नहीं तज ह्वै परपंच ॥ अव्रत
सम्यकदृष्टी नरा ॥ बारमतैं ऊपर नहिं धरा ॥२०॥
अन्यमती पंचागिनि साध । भवनत्रिकतैं जाइ न
बाद। परिव्राजक तिरदंडी देह। पंचम परै न उपजैं
जेह ॥ २१ ॥ परमहंस नामें परमती। सहस्रार उपर
नहिं गती ॥ मोक्ष न पावै परमति माहिं । जैन
बिना नहिं कर्म नसाहिं ॥२२॥ श्रावक आर्य अणुव्रत
धार। बहुरि श्राविकागण अविकार ॥ सोलह स्वर्ग
परैं नहिं जाय। ऐसो भेद कह्यो जिनराय ॥ २३ ॥
द्रव्यलिंगधारी जे जती। नवग्रीवक ऊपर नहिं गती॥
नवहिं अनुत्तर पंचोत्तरा ॥ महामुनी विन और न
धरा ॥ २४ ॥ केई [illegible]

नाहीं गहा ॥ इंद्र भयो न शचीहू भयो । लोकपाल
बहू नहिं थयो ॥ २५ ॥ लौकांतिक हूवो न कदाप ।
हीं अनुत्तर पहुंच्यो आप ॥ ए पद धर बहु भव
हिं धरै । अलपकालमैं मुक्तिहि वरै ॥ २६ ॥ हैं वि-
ान सरवारथ सिद्ध । सबतैं ऊंचो अतुल सुरिद्ध ॥
ाके सिरपर हैं शिवलोक । परैं अनंतानंत अलोक
। २७ ॥ गत्यागत्य देवगति भनी । अब सुन भ्रात
नुषगति तनी । चौवीसों दंडकके मांहि । मनुष
ांहि यामें शक नांहि ॥ २८ ॥ मोक्षहुं पावें मनुष
मुनीश । सकल धराको जो अवनीश ॥ मुनि बिन
मोक्ष नहीं कोउ बरै । मनुष विना नहिं मुनि ह्वै
तरै ॥ २९ ॥ सम्यकदृष्टी जे मुनिराय । भवजल उतरै
शिवपुर जाय । तहां जाय अविनाशी होय ॥ फिर
पीछे आवै नहिं कोय ॥ ॥ ३० ॥ रहै शाश्वते शिव-
पुरमाहिं । आतमराम भयो स्क नाहिं ॥ गति पचीस
कही नरतनी । आगति फुनि बाईसहि भनी ॥ ३१ ॥
तेजकाय अरु वायु जु काय । इन बिन और सबै नर
थाय ॥ गति पचीस आगति बाईस । मनुषतनी जो
भाखी ईश ॥३२॥ ताहि सुरासुर आतमरूप । ध्यावै

चिदानंद चिद्रूप ॥ तौ उतरो भवसागर जिया । और न शिवपुर मारग लिया ॥ ३३ ॥ यह सामान्य मनुषकी कही । अब सुन पदवोधरकी सही ॥ तीर्थंकरकी दो आगती । स्वर्ग नरकतैं आवै सती ॥ ३४ ॥ फेरि न गति धारै जगदीस । जाय विराजैं जगके शीस ॥ चक्री अर्द्धचक्रि अरु हली । सुरग लोकतैं आव वली ॥ २५ ॥ इनकी आगति एकहि जान । गतिकी रीति कहं जु बखानि ॥ चक्रीकी गति तीन जु होय । सुरग नरक अरु शिवपुर जोय ॥ ३६ ॥ तप धारैं तौ शिवपुर जांय मरैं राजमैं नरकहिं ठांय ॥ आखरिमैं ह्वै पद निर्वान । पदवी धारक बड़े प्रधान ॥ ३७ ॥ बलभद्रनकी दोयहि गती । सुरग जांहि कै ह्वै शिवपती ॥ तप धारैं ये निश्चय भया । मुक्तिपात्र ये श्रुत मैं कह्या ॥ ३८ ॥ अर्द्धचक्रिको एकहि भेद । नारक होय लहै अति खेद ॥ राजमांहि ये निश्चय मर । तदभवमुक्ति पंथ नहिं धरैं ॥ ३९ ॥ आखिर पावै जिनवर लोक । पुरुष शलाका शिवके थोक ॥ ये पद कबहुं न पाये जीव ॥ ये पदपाय होय शिवपीव ॥ ४० ॥ औरहु पद कइयक नहिं गहे । कुलकर नार-

दपदहु न लहे ॥ रुद्र भये ना मदन ना भये । जिन-
वर मात पिता नहिं थये ॥ ४१ ॥ ये पद पाय जीव
नहिं रुलै । थोड़ेहि दिनमैं जिन सम तुलै ॥ इनको
आगति श्रुतमैं जानि । गतिको भेद कहूं जो बखानि
॥ ४२ ॥ कुलकर देवलोक ही गहै । मदन सुरग शिव-
पुरको लहै ॥ नारद रुद्र अधोगति जाय । सहै कलेश
महा दुखदाय ॥ ४३ ॥ जन्मांतर पावैं निरवान ।
बड़े पुरुष जे सूत्र प्रमान ॥ तीर्थंकरके पिता प्रसिद्ध ।
स्वर्ग जांय कै हो हैं सिद्ध ॥ ४४ ॥ माता स्वर्ग लोक
ही जाय । आखिर शिवपुर लोक लहाय ॥ ये सब
रीति मनुषकी कही । अब सुन तिर्यंचन गति सही
॥ ४५ ॥ पंचेंद्री पशु मरण कराय । चौवीसों दंडकमैं
जाय ॥ चौबीसों दंडकतैं मरै । पशु होय तौ नाहि
न करै ॥ ४६ ॥ गति आगती कही चौबीस । पंचेंद्री
पशुकी निज ईश । तौ परमेश्वरको पथ गहौ ॥
चौबिस दंडक नाहीं लहौ ॥ ४७ ॥ विकलत्रयकी दश
ही गती । दस आगती कहीं जगपती ॥ पांचों थावर
विकल जु तीन । नर तिर्यंच पंचेंद्री लीन ॥ ४८ ॥
इनहीं दशमैं उपजैं जाय । पृथिवी पानी तरवरकाय ॥

इनहीतैं विकलत्रय आय। इन ही दसमैं जन्म कराय ॥ ४६ ॥ नारक बिन सब दंडक जोय पृथ्वी पानी तरुवर सोय। तेज वायु मरि नवमैं जाय। मनुष होय नहिं सूत्र कहाय ॥ ५० ॥ थावर पच त्रिकलत्रय ठौर। ये नवगति भाखो मदमोर ॥ दसतैं आवै तेज अरुवाय। होय सही गावै जिनराय ॥५१॥ ये चौईस दंड के कहे। इनकूं त्याग परम पद लहे॥ इनमैं रुलै सु जगको जीव। इनतैं रहित सु त्रिभुवनपीव ॥ ५२ ॥ जीवईसमैं और न भेद। ए करमी वे कर्म उछेद॥ कर्म बंध जोलों जगजीव। नाशे कर्म होय शिव-पोव ॥ ५३ ॥

दोहा—मिथ्या अव्रत योग अर, मद परमाद कषाय। इंद्रियविषयजु त्याग ये, भ्रमन दूरि ह्वै जाय॥ जिन विनगति भवतैं धरी, भयो नहीं सुरझार। जिनमाग उर धारिये, हो हैं भवदधि पार॥ ५५॥ जिन भज सब परपच तज, बड़ी बात है येह। पंच महाव्रत धारिकै, भवजलकों जल देह ॥ ५६ ॥ अंतर करण जु शुद्ध ह्वै, जिनधर्मी अभिराम। भाषा कारण कर सकूं भाषी दौलतराम॥ ५७ ॥ इति ॥

१५२—सामायिक पाठ (संस्कृत)

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं। माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव॥ १॥ शरीरतः कर्त्तुमनंतशक्तिं विभिन्नमात्मानमपास्तदोषं। जिनेन्द्र कोषादिव खड्गयष्टिं तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः॥ २॥ दुःखे सुखे वैरिणि बंधुवर्गे योगे वियोगे भुवने वने वा। निराकृताशेषममत्वबुद्धेः समं मनो मेस्तु सदापि नाथ॥ ३॥ मुनीश लीनाविव कीलिताविव स्थिरौ निषाताविव बिंबिताविव। पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव॥ ४॥ एकेंद्रियाद्या यदि देव! देहिनःप्रमादतः संचरता इतस्ततः। क्षता विभिन्ना मिलिता निपीड़ितास्तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा॥ ५॥ विमुक्तिमार्गप्रतिकूल वर्त्तिना मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया। चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो॥ ६॥ विनिंदनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचःकायकषायनिर्मितं। निहन्मि पापं भवदुःखकारणं भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलं॥ ७॥ अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः। व्यधामनाचारमपि प्रमादतः प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये॥ ८॥ क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनं। प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदंत्यनाचारमिहातिसक्ततां॥९॥

यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं मया प्रमादाद्यदि किंचनोक्तं। तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥ १० ॥ बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः। चिंतामणिं चिंतितवस्तुदाने त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥ ११ ॥ यः स्मर्यते सर्वमुनींद्र-वृन्दैर्यः स्तूयते सर्वनरामरेंद्रैः। यो गीयते वेदपुराणशा-स्त्रैः स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १२ ॥ यो दर्शनज्ञान-सुखस्वभावः समस्तसंसारविकारबाह्यः। समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १३ ॥ निषू-दते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदंतरालं। योऽन्त-र्गतो योगिनिरीक्षणीयः स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥१४॥ विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो,यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः। त्रिलोकलोकी विकलोऽकलंकः स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १५ ॥ क्रोड़ीकृताशेषशरीरिवर्गाः, रागादयो यस्य न संति दोषाः निरिंद्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १६ ॥ यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबंधः। ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १७ ॥ न स्पृश्यते कर्मकलं-कदोषैः यो ध्वांतसंघैरिव तिग्मरश्मिः। निरंजनं नित्य-म नेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥ विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासि। स्वात्म-स्थितं बोधमयप्रकाशं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १९ ॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तं। शुद्धं शिवं शांतमनाद्यनंतं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २० ॥ येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषादनिद्राभयशोकचिंता। क्षयोनलेनेव तरुप्रपंचस्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥ न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी विधानतो नो फलको विनिर्मितः। यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥२२॥ न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनं। यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वा मपि बाह्यवासनां ॥२३॥ न संति बाह्या मम केचनार्था भवामि तेषां न कदाचनाहं। इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं। स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै ॥ २४ ॥ आत्मानमात्मन्यवलोक्यमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः। एकाग्रचितः खलु यत्र तत्र स्थितोपि साधुर्लभते समाधिं ॥ २५ ॥ एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा विनिर्मलः साधिगमस्वभावः। बहिर्भवाःसंत्यपरे समस्ता न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥२६॥ यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः कुतो हि तिष्ठंति शरीरमध्ये ॥ २७ ॥ संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी। ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनां ॥ २८ ॥ सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं

संसारकांतारनिपातहेतुं । विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥ स्वयं कृतं कर्म यदा-त्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभं । परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥ निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो न कोपि कस्यापि ददाति किंचन । विचारयन्नेवमनन्यमानसः परो ददातीति विमुच्य शेमुषीं ॥ ३१ ॥ यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः । शश्वदधीतो मनसि लभंते, मुक्तिनिकेतं विभववरंते ॥३२॥ इति द्वात्रिंशति-वृत्तैः, परमात्मानमीक्षते । योऽनन्यगतचेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययं ॥ ३३ ॥

१५३—सामायिक पाठ भाषा ।

१ प्रतिक्रमण कर्म ।

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिये दुख भारी । जन्म-मरण नित किए पापको ह्वै अधिकारी । कोट भवांतरमांहि मिलन दुर्लभ सामायिक । धन्य आज मैं भयो योग मिलि-यो सुखदायक ॥ हे सर्वज्ञ जिनेश ! किये जे पाप जु मैं अब । ते सब मन-वच-काय योगकी गुप्ति विना लभ ॥ आप समीप हजूर माहिं मैं खड़ो खड़ो सब । दोष कहूँ सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब ॥२॥ क्रोधमानमदलो-भमोहमायावशि प्रानी । दुःख सहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी ॥ विना प्रयोजन एकेन्द्रिय वितिचउपंचेंद्रिय

आप प्रसादहिं मिटै दोष जो लग्यो मोह जिय ॥ ३ ॥ आपसमें इकठौर थापकरि जे दुख दीने। पेलि दिये पग-तलैं दाबि करि प्राण हरीने ॥ आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक। अरज करूं मैं सुनो दोष मेटो दुख-दायक ॥४॥ अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय। तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय ॥ मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि। यह पडिकोणो कियो आदि पठकर्म माहिं विधि ॥५॥

२। द्वितीय प्रत्याख्यान कर्म।

इसके आदि वा अन्तमें आलोचना पाठ बोलकर फिर तीसरे सामायिककर्मका पाठ करना चाहिये।

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे। तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे ॥ सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादै। जा प्रसादतैं मिलै सर्व सुख दुःख न लाधैं ॥६॥ मैं पापी निर्लज्ज दया करि हीन महाशठ। किये पाप अघढेर पापमति होय चित्त दुठ ॥ निंदूं हूं मैं बार बार निज जियको गरहूं। सब विधि धर्म उपाय पाय फिर पापहि करहूं ॥७॥ दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावक-कुल भारी। सतसंगति संयोग धर्मजिनश्रद्धा, धारी ॥ जिनवचनामृत धार समावर्तैं जिनवानी। तोहू जीव संघारे धिक धिक धिक हम जानी ॥८॥ इन्द्रियलंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब। अज्ञानी जिमि करै तिसी विधि हिंसक ह्वै अब ॥ गमनागमन करंतो जीव विराधे

भोले। ते सब दोष किये निंदूं अब मन वच तोले ॥९॥
आलोचनविधिथकी दोष लागे जु घनेरे। ते सब दोष
बिनाश होउ तुम तैं जिन मेरे ॥ बारबार इसभांत मोहमद
दोष कुटिलता। ईर्षादिकनैं भये निंदिये जे भयभीता ॥

३ । तृतीय सामायिक भावकर्म ।

सब जीवनमें मेरे समता भाव जग्यो है । सब जिय
मोसम समता राखो भाव लग्यो है ॥ आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान
छांड़ि करिहूँ सामायिक । संजम मो कब शुद्ध होय यह
भाव बधायक ॥११॥ पृथ्वी जल अरु अग्नि वायु चउ-
काय वनस्पति । पंचहि थावरमांहिं तथा त्रस जीव बसैं
जिन ॥ बेइंद्रिय तिय चउ पंचेंद्रियमांहि जीव सब । तिन
तैं क्षमा कराऊं मुझपर छिमा करो अब ॥१२॥ इस अव-
सरमें मेरे सब सम कंचन अरु तृण। महल मसान समा-
न शत्रु अरु मित्रहिं सम गण ॥ जामन मरण समान
जानि हम समता कीनी । सामायिकका काल जितै यह
भाव नवीनी ॥१३॥ मेरो है इक आतम तामें ममत जु
कीनो । और सबैं मम भिन्न जानि समतारसभीनो ॥
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह । मोतैं
न्यारे जानि जथारथ रूप कर्यो गह ॥१४॥ मैं अनादि
जगजालमांहि फसि रूप न जाण्यो । एकेंद्रिय दे आदि
जंतुको प्राण हराण्यो ॥ ते सब जीवसमूह सुनो मेरी यह
[illegible] कर मरजी ॥१५॥

४ । चतुर्थ स्तवनकर्म ।

नमों ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्मको । संभव भवदुखहरण करण अभिनन्द शर्मको ॥ सुमति सुमति दातार तार भवसिंन्धु पार कर । पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीति धर ॥ १६ ॥ श्रीसुपार्श्व कृत-पास नाश भव जास शुद्धकर । श्रीचंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांतिधर ॥ पुष्पदन्त दमि दोषकोश भविपोष रोषहर । शीतल शीतल करण हरण भवताप दोषकर ॥ १७ ॥ श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन । वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभयहन ॥ बिमल २ मति देन अंतगत है अनन्त जिन । धर्मशर्मशिवकरण शांतिजिन शांतिविधायिन ॥ १८ ॥ कुंथ कुन्थसुख जीवपाल अर-नाथ जालहर । मल्लि मल्लसम मोहमल्ल मारनप्रचार धर । मुनिसुब्रत व्रतकरण नमत सुरसंघहिं नमि जिन । नेमि-नाथ जिन नेमि धर्मरथ मांहिं ज्ञानघन ॥१६॥ पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्ष रमापति । वर्द्धमान जिन नमूं वमूं भवदुःख कर्मकृत ॥ या विधि मैं जिन संघरूप चउवीस संख्यधर । स्तवूं नमूं हूँ बार बार बन्दू शिव सुखकर ॥ २० ॥

५ । पञ्चम बंदना कर्म ।

बंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सु सनमति । वर्द्ध-मान अतिवीर बंदि हूँ मनवचतनकृत ॥ त्रिशलातनुज

हे . धीश विद्यापति वंदूं । बंदौं नितप्रति
तनु पापनिकंदूं ॥२१॥ सिद्धारथ नृपनंदद्वन्दद्
मिटावन,दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीव उ
कुंडलपुर करि जन्म जगत जिय आनंदकारन। वर्ष
आयु पाय सब ही दुख टारन ॥ २२ ॥ ससहस्त
तुंग भंगकृतजन्ममरणभय । बालब्रह्ममय ज्ञेय
आदेय ज्ञानमय ॥ दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु ज
धन । आप वसे शिवमांहि ताहि बंदौं मन वचतन ॥२
जाके बंदनथकी दोष दुखदूरिहि जावै । जाके वंदनथ
सुक्तितिय सन्मुख आवै ॥ जाके वंदनथकी वंद्य हो
सुरगनके । ऐसे वीर जिनेश बन्दि हूँ क्रमयुग तिनके
॥ २४ ॥ सामायिक षटकममांहि वंदन यह पंचम । बंदौं
वीरजिनेन्द्र इन्द्रशतवंद्य वंद्य मम ॥ जन्म मरणभय
हरो करो अघशांति शांतिमय । मैं अघकोष सुपोश
दोषको दोष विनाशय ॥ २५ ॥

६ । छठा कायोत्सर्ग कर्म ।

कायो सर्ग विधान करूं अंतिम सुखदाई । काय य-
जनमय होय काय सबको दुखदाई ॥ पूरव दक्षिण नमूं
दिशा पश्चिम उत्तर मैं । जिनगृह बंदन करूं हरूं भव-
पापतिमिर मैं ॥ २६ ॥ शिरोनती मैं करूं नमूं मस्तक
कर धरिकै। आवर्तादिक क्रिया करूं ...

हैं द्रय अर्द्ध द्वीप माहीं बन्दों जिमि ॥ आठकोडि परि छप्पन लाख जु सहस सत्यानूं । च्यारि शतकपरि असी एक जिनमंदिर जानूं ॥ व्यंतर ज्योतिषिमांहि संख्यरहिते जिनमन्दिर । ते सब बन्दन करूं हरहु मम पाप संघकर ॥ २८ ॥ सामायिकसम नाहिं और कोउ बैर मिटायक। सामायिकसम नाहिं और कोउ मैत्रीदायक ॥ श्रावक अणुव्रत आदि अन्त सप्तम गुणथानक । यह आवश्यक किये होय निश्चय दुखहानक ॥२९॥ जे भवि आतमकाजकरण उद्यमके धारी । ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी । राग रोष मदमोहक्रोध लोभादिक जे सब । बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातैं कीज्यों अब ॥ ३० ॥ इति ॥

१५४—श्रीजिनसहस्रनामस्तत्र ।

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि । स्वात्मनैव तथोद्भूतवृत्तये चिंत्यवृत्तये ॥ १ ॥ नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमो नमः । विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर ॥ २ ॥ कामशत्रुहणं देवमामनंति मनीषिणः । त्वामानमस्तुरेन्मौलिभामालाभ्यर्चितक्रमम् ॥ ३ ॥ ध्यानदुर्घणनिर्भिन्नघनघातिमहातरुः । अनंतभवसंतानजयोप्यासीरनंतजित् ॥४॥ त्रैलोक्यनिर्जया व्याप्तदुर्द्र्पमतिदुर्जयं । मृत्युराजं विजित्यासीज्जन्ममृत्युंजयो भवान् ॥५॥ विधूताशेषसंसारो बंधुर्नो भव्यबांधवः । त्रिपुरारिस्त्व-

मीशोसि जन्ममृत्युजरांतकृत् ॥६॥ त्रिकालविजयाशेषत-
त्त्वभेदात् त्रिविधोक्तिछद् । केवलाख्य दधचक्षु स्त्रिने-
त्रोसित्वमीशिता ॥७॥ त्वामंधकांतकं प्राहुर्मोहांधासुरम-
र्द्दनात् । अर्द्धन्ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोस्युत ॥ ८ ॥
शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरितारिहरो हरः । शंकरःकृतशं
लोके संभवस्त्वं भवन्मुखे ॥ ९ ॥ वृषभोसि जगज्ज्येष्ठः
गुरुर्गुरु गुणोदयैः ॥ नाभेयो नाभिसंभूतेरिक्ष्वाकुकुलनं-
दनः ॥ १० ॥ त्वमेकः पुरुषस्कंधस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने ।
त्वं त्रिधाबुधसन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञानधारकः॥११॥चतुर्मांगल्य-
मूर्तिस्त्वं शरणं चतुरः सुधीः । पंचब्रह्ममयो देवः पाव-
नस्त्वं पुनीहि मां ॥ १२ ॥ स्वर्गावतारिणे तुभ्यं सद्यो
जातात्मने नमः । जन्माभिषेकवामाय वामदेव नमोस्तुते
॥ १३ ॥ सुनिःक्रांताय घोराय परं प्रशममीयुषे । केवल-
ज्ञानसंसिद्धावीशानाय नमोस्तुते ॥१४॥ पुरुस्तत्पुरुषत्वेन
विमुक्तपदभागिने । नमस्तत्पुरुषावस्थां भावनार्णववि-
भ्रते ॥ १५ ॥ ज्ञानावरणनिर्ह्रास नमस्तेनंतचक्षुषे । दर्श-
नावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदर्शिने ॥ १६ ॥ नमो दर्श-
नमोहादिक्षायिकामलदृष्टये । नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय
महौजसे ॥ १७ ॥ नमस्तेनंतवीर्याय नमोनंतसुखाय ते ।
नमस्तेनंतलोकाय लोकालोकविलोकिने ॥१८॥ नमस्तेनं-
तदानाय नमस्तेनंतलब्धये । नमस्तेनंतभोगाय नमोनं-
ताय भोगिने ॥ १९ ॥ नमः परमयोगाय नमस्तुभ्यमयो-

नये । नमः परमपूतायनमस्ते परमर्षये ॥२०॥ नमः परम-
विद्याय नमः परमवच्छिदे । नमः परमतत्त्वाय नमस्ते पर-
मात्मने ॥ २१ ॥ नमः परमरूपाय नमः परमतेजसे ।
नमः परममार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥ २२ ॥ परमर्द्धि-
जुषे धाम्ने परमज्योतिषे नमः । नमः पारेतमः प्राप्तधाम्ने
ते परमात्मने ॥ २३ ॥ नमः क्षीणकलंकाय क्षीणबंध
नमोस्तु ते । नमस्ते क्षीणमोहाय क्षीणदोषाय ते नमः
॥ २४ ॥ नमः सुगतये तुभ्यं शोभनागतमीयुषे । नम-
स्तेतींद्रियज्ञानसुखायानिंद्रियात्मने ॥ २५ ॥ कायबंध-
ननिर्मोक्षादकायाय नमोस्तु ते । नमस्तुभ्यमयोगाय
योगिनामपि योगिने ॥२६॥ अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय
ते नमः । नमः परमयोगींद्रवंदितांघ्रिद्वयाय ते ॥२७॥ नमः
परमविज्ञान नमः परमसंयमः । नमः परमदृग्दृष्टपरमा-
र्थाय ते नमः ॥२८॥ नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांश-
स्पृशे । नमो भव्येतरावस्था व्यतीताय विमोक्षणे ॥२९॥
संज्ञासंज्ञिद्वयावस्थाव्यतिरिक्तामलात्मने । नमस्ते वीत-
संज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये ॥ ३० ॥ अनाहाराय तृप्ताय
नमः परमभाजुषे । व्यतीताशेषदोषाय भवाद्धेः पारमी-
युषे ॥३१॥ अजराय नमस्तुभ्यं नमस्तेतीतजन्मने । अमृ-
त्यवे नमस्तुभ्यमचलायाक्षरात्मने ॥३२॥ अलमास्तां गुण-
स्तोत्रमनंतास्तावकागुणाः । त्वन्नामस्मृतिमात्रेण परमं

शं प्रणमाम्महे ॥३३॥ एवंस्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः । पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पाप शांतये ॥ ३४ ॥

इति प्रस्तावना ।

प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्धलक्षणस्त्वं गिरां पतिः । नाम्नामष्टसहस्रेण त्वां स्तुमोभीष्टसिद्धये ॥ १ ॥ श्रीमान्स्वयंभूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः । स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥ २ ॥ विश्वात्माविश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः । विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरमीश्वरः ॥ ३ ॥ विश्वदृश्वाविभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः । विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥ ४ ॥ विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः । विश्वदृक् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥ ५ ॥ जिनो जिष्णुरमेयात्मा जगदीशो जगत्पतिः । अनन्तचिदचिंत्यात्मा भव्यबंधुरबंधनः ॥ ६ ॥ युगादिपुरुषो ब्रह्मा पंचब्रह्ममयः शिवः । परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥ ७ ॥ स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः । मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥ ८ ॥ प्रशांतारिरनंतात्मा योगी योगीश्वरार्चितः । ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥ ९ ॥ शुद्धोबुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः । सिद्धः सिद्धांतविद् ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥ सहिष्णुरच्युतोनंतः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः । प्रभूष्णुरजरोऽजयो भ्राजिष्णुर्धीश्व-

रोऽव्ययः ॥ ११ ॥ विभावसुरसंभूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः । परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीमदादिशतम् ॥१॥

(यहा उदकचंदनतंदुल. .आदि श्लोक पढ़कर अर्घ चढाना चाहिये)

दिव्यभाषापतिर्दिव्य पूतवाक्पूतशासनः । पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥१॥ श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजाविरजाः शुचिः । तीर्थकृत्केवली शांतः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥२॥ अनंतदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः । मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः॥३॥ निरंजनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिर्निरामयः । अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थःस्थाणुरक्षयः ॥४॥ अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत । शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥ ५ ॥ वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः । वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभांको वृषोद्भवः ॥ ६ ॥ हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद्भूतभावनः । प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवांतकः ॥७॥ हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोद्भवः । स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः ॥८॥ सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः । सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्व वित्सर्वलोकजित् ॥ ९ ॥ सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुक् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः । विश्रुतः विश्वतःपादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥ १० ॥ सहस्र-

शीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात् । भूतभव्यभवन्
विश्वविद्या महेश्वरः ॥ ११ ॥

इति दिव्यादिशतम् ॥ २ ॥ अर्घ ।

स्थविष्ठः स्थविरो जेष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठो निष्ठो गरिष्ठगीः ॥१॥
वश्वभृद्विश्वसृट् विश्वेट् विश्वभुग्विश्वनायकः । विश्वा-
शीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितांतकः ॥ २ ॥ विभवो
विभयोवीरो विशोको विजरो जरन् । विरागो विरतोऽ-
संगो बिविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥ विनेयजनताबंधुविली
नाशेषकल्मषः । वियोगो योग विद्विद्वान्विधातासुबिधिः
सुधीः ॥४॥ क्षांतिभाक्पृथिवीमूर्तिः शांतिभाक्सलिलो-
त्मकः । वायुमूर्तिरसंगात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधृक् ॥५॥ सुय
ज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्रामपूजितः । ऋत्विग्य-
ज्ञपतिर्याज्ञो यज्ञांगममृतं हविः ॥ ६ ॥ व्योममूर्त्तिर-
मूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः । सोममूर्त्तिः सुसौम्या-
त्मा सूर्यमूर्त्तिर्महाप्रभः ॥७॥ मंत्रविन्मंत्रकृन्मन्त्रीमंत्रमू-
र्तिरनंतकः । स्वतंत्रस्तंत्रकृत्स्वांतः कृतांतांतः कृतांतकृत्
॥ ८ ॥ कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः ।
नित्यो मृत्युंजयो मृत्युरमृतात्मामृतोद्भवः ॥ ९ ॥ ब्रह्म
निष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसंभवः । महाब्रह्मपति-
र्ब्रह्मेट् महाब्रह्मपदेश्वरः ॥१०॥ सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा

ज्ञानधर्मदमप्रभुः । प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥ ११ ॥

इति स्थविष्ठादिशतम् ॥ ३ ॥ अर्घं ।

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्रष्टापद्मविष्टरः । पद्मेशः पद्मसंभूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥ १ ॥ पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः । स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥ २ ॥ गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः । गुणाकरो गुणांभोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥ ३ ॥ गुणाकरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः । शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्नायकः ॥ ४ ॥ अगण्यः पुण्यधीर्गण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः । धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥ ५ ॥ पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः । निर्द्वंद्वो निर्मदः शांतो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥ ६ ॥ निर्निमेषो निराहारो निःक्रियो निरुपप्लवः । निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतांगो निराश्रयः ॥ ७ ॥ विशालो विपुलज्योतिरतुलोचिंत्यवैभवः । सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुब्रत्सुनयतत्त्ववित् ॥ ८ ॥ एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः । धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतांतकः ॥ ९ ॥ पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः । त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥ १० ॥ कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः । प्रतिष्ठः प्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ॥ ११ ॥

इति महाशोकध्वजादिशतम् ॥ ४ ॥ अर्घं ।

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः । निरक्षः पुंडरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥ १ ॥ सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः सिद्धात्मा सिद्धिसाधनः । बुद्ध बोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिकः ॥ २ ॥ वेदांगो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः । वेदवेद्यः स्वयंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥ ३ ॥ अनादिनिधनो व्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः । युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥ ४ ॥ अतीन्द्रोऽतींद्रियो धींद्रो महेंद्रोऽतींद्रियार्थदृक् । अनिंद्रियोऽहमिंद्राच्यों महेन्द्रमहितो महान् ॥ ५ ॥ उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः । अग्राह्यो गहनं गुह्यं परार्घ्यं परमेश्वरः ॥ ६ ॥ अनंतर्द्धिरमेयर्द्धिरचिंत्यर्द्धिः समग्रधीः । प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्र्यः प्रत्यग्रोग्र्योग्रिमोग्रजः ॥ ७ ॥ महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः । महायशो महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥ ८ ॥ महाधैर्यो महावीर्यो महासंपन्महाबलः । महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥९॥ महामतिर्महानीतिर्महाक्षांतिर्महोदयः । महाप्राज्ञो महाभागो महानंदो महाकविः ॥ १० ॥ महामहामहाकीर्तिर्महाकांतिर्महावपुः । महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११॥ महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याणपंचकः । महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीवृक्षादिशतम ॥ ५ ॥ अर्घं ।

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः । महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥ १ ॥ महाव्रतपतिर्मह्यो महाकांतिधरोऽधिपः । महामैत्री मयोऽमेयो महोपायो महोदयः ॥ २ ॥ महाकारुण्यको मंता महामंत्रो महायतिः । महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ॥३॥ महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महेष्टवाक् । महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ॥ ४ ॥ महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपति र्गुरुः । महापराक्रमोऽनंतो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥ ५ ॥ महाभवाब्धिसंतारिर्महामोहाद्रिसूदनः । महागुणाकरः क्षांतो महायोगीश्वरः शमी ॥ ६ ॥ महाध्यानपतिर्ध्याता महाधर्मा महाव्रतः । महाकर्मारिहात्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥ ७ ॥ सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः । असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥ ८ ॥ सर्वयोगीश्वरोऽचिंत्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः । दांतात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥ ९ ॥ प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः । प्रक्षीणबंधः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥१०॥ प्रणवः प्रणयः प्राणः प्रणदः प्रणतेश्वरः । प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥ ११ ॥ आनंदो नंदनो नंदो वंद्योऽनिंद्योऽभिनंदनः । कामहाकामदः काम्यः कामधेनुररिंजयः ॥ १२ ॥

इति महामुन्यादिशतम् ॥ ६ ॥ अर्घ ।

असंस्कृतः सुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतांतकृत् । अंत-

कृत्कांतिगुः कांतश्चिंतामणिरभीष्टदः ॥ १ ॥ अजितो-जितकामारिरमितोऽमितशासनः । जितक्रोधो जिता-मित्रो जितक्लेशो जितांतकः ॥ २ जिनेंद्रः परमानंदो मुनींद्रः दुंदुभिस्वनः । महेंद्रवंद्यो योगींद्रो यतीन्द्रो नाभि-नंदनः ॥ ३ ॥ नाभेयो नाभिजो जातः सुव्रतो मनुरु त्तमः । अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधी॥४॥ सुमेधा विक्रमीस्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः । विशिष्टः शिष्ट-भुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥ ५ ॥ क्षेमी क्षेमं-करोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी । अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥ ६ ॥ सुकृती धातुरिज्यार्हः सुन-यश्चतुराननः । श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥ ७ ॥ सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः । सत्याशीः सत्यसंधानः सत्यः सत्यपरायणः ॥ ८ ॥ स्थे-यान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान्दूरदर्शनः। अणोरणीयानन-णुर्गुरुराद्योगरीयसां ॥ ९ ॥ सदायोगः सदाभोगः सदा-तृप्तः सदाशिवः । सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥ १० ॥ सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत् । सुगुप्तोगुप्तिभृद्गोप्ता लोकाध्यक्षो दमी-श्वरः ॥ ११ ॥

इति असंस्कृतादिशतम् ॥ ७ ॥ अर्घं ।

बृहन्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः । मनीषी धिषणो धीमाञ्छेमुशीषोः गिरांपतिः ॥ १ ॥ नैकरूपो

नयस्तुंगोनैकात्मा नैकधर्मकृत् । अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥ २ ॥ ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः । पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥ ३ ॥ लक्ष्मीवांस्त्रिदशाऽध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता । मनोहरो मनोज्ञांगो धीरो गंभीरशासनः ॥ ४ ॥ धर्मयूपोदयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः । धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥ ५ ॥ अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः । सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञःसमाहितः ॥६॥ सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो निरजस्को निरुद्धवः । अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥ ७ ॥ वश्येन्द्रियो नियुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः । प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मंगलं मलहानघः ॥ ८ ॥ अनीदृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगोचरः । अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥ ९ ॥ अध्यात्मगम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः । सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥ १० ॥ शंकरः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः । अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥ ११ ॥ त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मंगलोदयः त्रिजगत्पतिपूजांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥ १२ ॥

इति बृहदादिशतम् ॥ ८ ॥ अर्घ ।

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥ १ ॥ पुराणपुरुषः

कृत्पूर्वांगविस्तरः । आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥ २ ॥ युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः । कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥ ३ ॥ कल्याणः प्रकृतिर्दीप्तः कल्याणात्मा विकल्मषः । विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥ देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः । जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥ ५ ॥ चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः । सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥६॥ आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः । सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटि समप्रभः ॥ ७ ॥ तपनीयनिभस्तुंगो बालार्काभोऽनलप्रभः । संध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥८॥ निष्टप्तकनकच्छायः कनत्काञ्चनसन्निभः । हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥९॥ द्युम्नभाजातरूपाभो दीप्तजाम्बूनदद्युतिः । सुधौतकलधौत श्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥१०॥ शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरक्षमः। शत्रुघ्नोप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥ शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः । शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कांतिमान्कामितप्रदः॥१२॥ श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः । सुस्थितः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥ १३ ॥

इति त्रिकालदर्श्यादि शतम् ॥ ६ ॥ अर्घं ।

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः । निष्कि-

ञ्जनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥ १ ॥ तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः । तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपहः ॥ २ ॥ जगच्चूडामणिर्दीप्तः सर्वविघ्नविनायकः । कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥ ३ ॥ अनिद्रालुरतंद्रालुर्जागरूकः प्रभामयः । लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥४॥ मुमुक्षुर्बंधमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः । प्रशांतरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः ॥५॥ मूलकर्ताऽखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः । आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥६॥ प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभावविद् । सुतनुस्तनुर्निर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥७॥ श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयंकरः । उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥८॥ लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः । धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥९॥ प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः । भदंतो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥१०॥ समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः । कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः ॥ ११ ॥ अनन्तशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः । त्रिनेत्रस्त्र्यंबकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥१२॥ समंतभद्रः शांतारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः । सूक्ष्मदर्शी जितानंगः कृपालुर्धर्मदेशकः ॥ १३ ॥ शुभंयुः सुखसाद्भूत

पुण्यराशिरनामयः। धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्य-
नायकः ॥ १४ ॥

इति द्विचाशादि शतं ॥ १० ॥ इत्यष्टाधिकसहस्रनामावली समाप्ता। अर्थ।

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः। समुचि-
तान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥१॥ गोचरोऽपि गिरा-
मासांत्वमवाग्गोचरो मतः। स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तो-
ऽभीष्टफलं लभेत् ॥२॥ त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमऽतोसि
जगद्भिषक्। त्वमतोसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जग-
द्धितः ॥ ३ ॥ त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वंद्विरूपोपयोग-
भाक्। त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगं सोत्थानंतचतुष्टयः ॥४॥ त्वं
पंचब्रह्मतत्त्वात्मा पंचकल्याणनायकः। षड्भेदभावतत्त्व-
ज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥ ५ ॥ दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवके-
वललब्धिकः। दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वरः ।६।
युष्मन्नामावलीदृब्धाविलसत्स्तोत्रमालया। भवंतं वरिव-
स्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ॥७॥ इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो
भवति भाक्तिकः। यः सपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याण-
भाजनं ॥८॥ ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥९॥ स्तुत्वेति
मघवा देवं चराचरजगद्गुरुं। ततस्तीर्थविहारस्य व्यधा-
त्प्रस्तावनामिमां ॥१०॥ स्तुतिः पुण्यगुण
यः [illegible]धीः। निष्ठितार्थो भवांस्तुत्य

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचित् । ध्येयो योगि जनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयंकस्यचित् ॥ यो नेतृम् नयते नमस्कृतिमलं नंतव्य पक्षेक्षणः स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुः पावनः ।१२। तं देवं त्रिदशाधिपार्चित पदं घातिक्षयानंतरं । प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जनीनामिनं । मानस्तंभविलोकनानतजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं । प्रासाचिंत्यबहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवंदामहे ॥ १३ ॥

पुष्पाजलि क्षिपेत् । इति श्रीजिनसहस्रनामस्तवनं समाप्तम् ।

१५५—भक्तामर स्तोत्र ।

भक्तामरप्रणतमौलिमणि प्रभाणामुद्योतकंदलितपापतमोवितानं । सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-बालंबनं भवजले पततां जनानां ॥१॥ यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधादुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः । स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रं ।२। बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठस्तोतुं [illegible] द्यतमतिर्विगतत्रपोऽहं । बालं विहाय जलसंस्थि[illegible] विंबमन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुं ॥ [illegible] गुणान्गुणसमुद्र शशांककांतान्, कस्ते क्ष[illegible] मोऽपि बुद्ध्या । कल्पांतकालपवनोद्धत[illegible] तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्यां ॥ [illegible] भ[illegible]वशान्मुनीश, कर्तुं [illegible] फल ।

प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगोमृगेन्द्रं, नाभ्येति किं निज-
शिशोः परिपालनार्थं ॥५॥ अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास-
धाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्मां। यत्कोकिलः
किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु
॥ ६ ॥ त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं पापं क्षणात्क्ष-
यमुपैति शरीरभाजां। आक्रांतलोकमलिनीलमशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमंधकारं ॥ ७ ॥ मत्वेतिनाथ
तव संस्तवनं मयेद, मारभ्यते तनुधियापि तव
प्रभावात्। चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु, मुक्ता-
फलद्युतिमुपैति ननूदबिंदुः ॥८॥ आस्तां तव स्तवनम-
स्तसमस्तदोषं, त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हंति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव, पद्माकरेषु जलजानि
विकासभांजि ॥ ९ ॥ नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवंतः। तुल्या भवंति भवतो
ननु तेन किं वा, भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति
भवा॥ ॥ दृष्ट्वा भवंतमनिमेषविलोकनीयं, नान्यत्र तोष-
भाजनं ति जनस्यचक्षुः। पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदु-
पौरूहूतीं क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत्॥ ११ ॥
मघवा देवं वरा च्चिभिः परमाणुभिस्त्वं निर्मापितस्त्रिभुवनै-
त्प्रस्तावनामिमां ॥१ता एव खलु तेप्यणवः पृथिव्यां यत्ते
व्यः प्रसन्नधीः। निष्ठितानि ॥१२॥ वक्त्रं क ते सुरनरोर-
नगत्त्रितयोपमानं। बिंबं कलं-
वं ॥ ११ ॥

तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥ २९ ॥ कुंदावदात-
चलचामरचारुशोभं, विभ्राजते तव वपुः कलधौतकांतं ।
उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधारमुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव
शातकौंभं ॥ ३० ॥ छत्रत्रयं तव विभाति शशांककां-
तमुच्चैःस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापं । मुक्ताफलप्रकरजा-
लविवृद्धशोभं, प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वं ॥३१॥
गंभीरताररवपूरितदिग्विभागस्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभू-
तिदक्षः । सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्, खे दुन्दु-
भिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥ ३२ ॥ मंदारसुंदरनमे-
रुसुपारिजातसंतानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा । गंधोद-
बिंदुशुभमंदमरुत्प्रयाता, दिव्या दिवः पतति ते वचसां
ततिर्वा ॥ ३३ ॥ शुंभत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपंती । प्रोद्यद्दिवाकरनि-
रंतरभूरिसंख्या, दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्यां
॥ ३४ ॥ स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः, सद्धर्मतत्त्व-
कथनैकपटुस्त्रिलोक्याः । दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थ
सर्व भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥ ३५ ॥ उन्नि-
द्रहेमनवपंकजपुंजकांती, पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभि-
रामौ । पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र ! धत्तः पद्मानि
तत्र विबुधाः परिकल्पयंति । [illegible] पावे पार ॥
भूतिरभूज्जिनेंद्र, धर्मोपदेशन [illegible]
प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा, [illegible]

तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥ २९ ॥ कुंदावदात-
चलचामरचारुशोभं, विभ्राजते तव वपुः कलधौतकांतं ।
उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधारमुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव
शातकौंभं ॥ ३० ॥ छत्रत्रयं तव विभाति शशांककां-
तमुच्चैःस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापं । मुक्ताफलप्रकरजा-
लविवृद्धशोभं, प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वं ॥३१॥
गंभीरताररवपूरितदिग्विभागस्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभू-
तिदक्षः । सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्, खे दुन्दु-
भिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥ ३२ ॥ मंदारसुंदरनमे-
रुसुपारिजातसंतानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा । गंधोद-
बिंदुशुभमंदमरुत्प्रपाता, दिव्यादिवः पतति ते वचसां
ततिर्वा ॥ ३३ ॥ शुंभत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपंती । प्रोद्यद्दिवाकरनि-
रंतरभूरिसंख्या, दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्यां
॥ ३४ ॥ स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः, सद्धर्मतत्त्व-
कथनैकपटुस्त्रिलोक्याः । दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थ
सर्वभाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥ ३५ ॥ उन्नि-
द्रहेमनवपंकजपुंजकांती, पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभि-
रामौ । पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र ! धत्तः पद्मानि
तत्र विबुधाः परिकल्पयंति । [illegible] पावै पार ॥
इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेंद्र, धर्मोपदेशन [illegible]
[illegible] प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा [illegible]

॥ ४५ ॥ आपादकन्ठमुरुश्रृंखलवेष्टितांगा गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः। त्वन्नाममंत्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः; सद्यः स्वयं विगतबंधभया भवंति ॥ ४६ ॥ मत्तद्विपेंद्रमृगराजदवानलाहिसंग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम्। तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव, यस्तावकं स्तवमिमंमतिमानधीते ॥ ४७ ॥ स्तोत्रस्रजं तव जिनेंद्र गुणैर्निबद्धां, भक्त्या मयाविविधवर्णविचित्रपुष्पां। धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रम्, तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥ ४८ ॥ इति ॥

१५६—भक्तामर भाषा।

दोहा-आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार।
धरमधुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥ १ ॥

चौपाई—सुरनतमुकुट रतन छवि करैं। अन्तर पापतिमिर सब हरैं॥ जिनपद बन्दों मनवचकाय। भवजल पतित-उधरनसहाय ॥ १ ॥ श्रुतपारग इन्द्रादिक देव। जाकी थुति कीनी कर सेव ॥ शब्द मनोहर अरथ विशाल। तिस प्रभुकी बरनों गुनमाल ॥ २ ॥ विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन। हो निलज्ज थुति मनसा कीन ॥ जलप्रतिबिंब बुद्धको गहै। शशिमंडल बालकही चहै ॥३॥ [illegible] गुनसमुद्र तुमगुन अविकार। कहत न सुरगुरु पावैं पार॥ [illegible] प्रलयपवनउद्धत जलजंतु। जलधि तिरै को भुज बलवंतु ॥ ४ ॥ सो मैं शक्तिहीन थुति करूं। भक्तिभाव वश

कहु नहिं डरहूँ ॥ ज्यों मृगि निजसुतपालनहेत। मृगपतिसन्मुख जाय अचेत ॥५॥ मैं शठ सुधीहँसनको धाम। मुझ तुव भक्ति बुलावै राम ॥ ज्यों पिक अंबकलीपरभाव। मधुऋतु मधुर करै आराव ॥६॥ तुमजस जंपत जन छिनमांहिं। जनम जनमके पाप नशाहिं ॥ ज्यों रवि उगै फटै ततकाल। अलिवत नील निशातमजाल ॥७॥ तुव प्रभावतैं कहूं विचार। होसी यह थुति जनमनहार ॥ ज्यों जल कमलपत्रपै परै। मुक्ताफलकी दुति विस्तरै ॥८॥ तुम गुन महिमा हतदुखदोष। सो तो दूर रहो सुखपोष ॥ पापविनाशक है तुम नाम। कमलविकाशी ज्यों रविधाम ॥ ९ ॥ नहिं अचंभ जो होहिं तुरन्त। तुमसे तुमगुण बरनत संत ॥ जो अधीनको आपसमान। करै न सो निंदित धनवान ॥१०॥ इकटक जन तुमको अविलोय। औरविषै रति करै न सोय ॥ को करि छीरजलधिजलपान। क्षारनीर पीवै मतिमान ॥ ११ ॥ प्रभु तुम वीतराग गुनलीन। जिन परमानुदेह तुम कीन ॥ हैं तितने ही ते परमानु। यातैं तुमसम रूप न आनु ॥ १२ ॥ कहँ तुम मुख अनुपम अविकार। सुरनरनागनयनमनहार ॥ कहां चन्द्रमंडल सकलंक। दिनमें ढाकपत्र समरंक ॥१३॥ पूरनचन्द जोति छविवन्त। तुमगुन तीनजगत लंघंत ॥ एकनाथ त्रिभुवन आधार। तिन विचरतको करै निवार ॥१४॥ जो [illegible] तिय विभ्रम आरंभ। मन न डिग्यो तुम

तौ न अचंभ ॥ अचल चलावै प्रलय समीर । मेरुशिखर डगमगैं न धीर ॥१५॥ धूमरहित वाती गतनेह । परकाशै त्रिभुवन घर एह ॥ वातगम्य नाहीं परचंड । अपर दीप तुम बलो अखंड ॥१६॥ छिपहु न लुपहु राहुकी छांहिं। जगपरकाशक हो छिनमाहिं ॥ घन अनवर्त्त दाह विनिवार । रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥ १७ ॥ सदा उदित विदलित मनमोह । विघटित मेघराहु अविरोह ॥ तुम मुखकमल अपूरव चंद । जगतविकाशी जोति अमंद ॥१८॥ निश दिन शशि रविको नहिं काम । तुम मुखचन्द्र हरै तमधाम ॥ जो स्वभावतैं उपजै नाज । सजल मेघ तो कौनहु काज ॥१९॥ जो सुबोध सोहै तुममाहिं । हरि हर आदिकमें सो नाहिं ॥ जो द्युति महारतनमें होय । काचखंड पावै नहिं सोय ॥ २० ॥

नाराच छन्द—सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया । स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया ॥ कछू न ताहि देखके जहां तुही विशेखिया । मनोग चित्तचोर और भूलहू न पेखिया ॥२१॥ अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं । न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं ॥ दिशा धरन्त तारिका अनेक कोटिको गिनै। दिनेश तेजवन्त एक पूर्व ही दिशा जनै ॥२२॥ पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो । कहैं मुनीश अन्धकारनाशको सुभान हो ॥ महन्त तोहि जानिके न होय वश्यकालके ।

न और मोहि मोखपंथ देय तोहि टालके ॥२३॥ अनंत नित्य चित्तकी अगन्य रम्य आदि हो। असंख्य सर्व व्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो॥ महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो। अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥२४॥ तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धिके प्रमानतैं। तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रयी विधानतैं॥ तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं। नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ॥ २५ ॥ नमो करूँ जिनेश तोहि आपदा निवार हो। नमो करूँ सुभूरि भूमिलोकके सिंगार हो॥ नमो करूँ भवाब्धिनीरराशिशोषहेतु हो नमो करूँ महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ॥ २६ ॥

चौपाई—तुम जिन पूरनगुनगन भरे। दोष गर्वकरि तुम परिहरे॥ और देवगण आश्रय पाय। स्वप्न न देखे तुम फिर आय॥२७॥ तरुअशोकतर किरन उदार। तुमतन शोभित है अविकार॥ मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत। दिनकर दिपै तिमिरनिहनंत ॥ २८॥ सिंहासन मनिकिरन विचित्र। तापर कंचनवरन पवित्र॥ तुमतन-शोभित किरनविथार। ज्यों उदयाचलरवितमहार॥२९॥ कुन्दपुहुपसितचमर दुरंत। कनकवरन तुमतन शोभंत॥ ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति। झरना झरै नीर उमगांति ॥ ३० ॥ ऊंचे रहै सूर दुति लोप। तीन छत्र तुम दिपैं अगोप॥ तीनलोककी प्रभुता कहैं। मोती झालरसों

छबि लहैं ॥ ३१ ॥ दुन्दुभी शब्द गहर गम्भीर । चहुं-दिशि होय तुम्हारै धीर॥ त्रिभुवनजन शिवसंगम करै। मानूँ जय जय रव उच्चरै ॥३२॥ मन्द पवन गंधोदक इष्ट। विविध कल्पतरु पुहुपसुवृष्ट ॥ देव करैं विकसित दल सार। मानों द्विजपंकति अवतार॥३३॥ तुमतन-भामण्डल जिनचन्द। सब दुतिवन्त करत है मंद॥ कोटिशंख रवितेज छिपाय। शशिनिर्मलनिशि करै अछाय ॥३४॥ स्वर्गमोखमारगसंकेत। परमधरम उपदेशनहेत ॥ दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध। सब भाषागर्भित हितसाध ॥३५॥

दोहा-विकसितसुवरनकमलदुति, नखदुति मिलि चमकाहिं।
तुमपद पदवी जहँ धरो तहँ सुर कमल रचाहिं ॥३६॥
ऐसी महिमा तुमविषै, और धरै नहिं कोय।
सूरज में जो जोत है, नहिं तारागण होय ॥३७॥

षट्पद—मद अवलिप्त कपोल मूल अलिकुल झंकारैं। तिन सुन शब्द प्रचण्ड क्रोध उद्धत अति-धारैं ॥ कालवरन विकराल, कालवत सनमुख धावै। ऐरावत सो प्रबल, सकल जन भय उपजावै ॥ देखि गयन्द न भय करै तुम पदमहिमा लीन। विपतिरहित संपतिसहित, वरतैं भक्त अदीन ॥ ३८ ॥ अतिमदमत्तगयंद कुंभथल नखन विदारै। मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै ॥ बांकी दाढ विशाल, वदनमें रसना लोलै। भीमभयानकरूप देखि जन थरहर

डोलै ॥ ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर आयो होय। शरण गये तुम चरणकी, बाधा करै न सोय ॥ ३९ ॥ प्रलयपवनकर उठी आग जो तास पटंतर। वमैं फुलिंग शिखा उतंग परजलैं निरंतर ॥ जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानों। तड़तड़ाट दवअनल, जोर चहुं-दिशा उठानों ॥ सो इक छिनमें उपशमें, नामनीर तुम लेत। होय सरोवर परिनमै विकसित कमल समेत ॥ ॥ ४० ॥ कोकिलकंठसमान, श्याम तन क्रोध जलंता। रक्तनयनफुंकार, मारविषकण उगलन्ता ॥ फणको ऊंचो करै, वेग ही सन्मुख धाया। तव जन होय निःशंक, देख फणपतिको आया ॥ जो चांपै निज पगतलैं, व्यापै विष न लगार। नागदमनि तुम नामकी है. जिनके आधार ॥ ४१ ॥ जिस रनमांहिं भयानक शब्दकर रहे तुरंगम। घनसे गज गरजाहिं मत्त मानो गिरि जंगम ॥ अति कोलाहलमाहिं बात जहँ नाहिं सुनीजै। राजनको पर-चन्डे, देख बल धीरज छीजै ॥ नाथ तिहारे नामतैं अघ छिनमाहिं पलाय। ज्यों दिनकर परकाशतैं अंधकार विन-शाय ॥ ४२ ॥ मारै जहां गयंद कुंभ हथियार विदारैं। उमगै रुधिर प्रवाह वेग जलसम विस्तारै ॥ होय तिरन असमर्थ महा जोधा बलपूरे। तिस रनमें जिन तोय भक्त जे हैं नर सूरे। दुर्जय अरिकुल जीतके. जय पावें निकलंक। तुम पदपंकज मन वसै ते नर सदा

निशंक ॥ ४३ ॥ नक्र चक्र मगरादि मच्छकरि भय उपजावै । जामैं वडवा अग्निदाहतैं नीर जलावै ॥ पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी । गरजै अतिगंभीर, लहरकी गिनति न ताकी ॥ सुखसों तरें समुद्रको, जे तुमगुनसुमराहिं । लोलकलोलनके शिखर, पार यान ले जाहिं ॥ ४४ ॥ महाजलोदर रोग, भार पीडित नर जे हैं । वात पित्त कफ कुष्ठ आदि जो रोग गहे हैं ॥ सोचत रहैं उदास नाहिं जीवनकी आशा । अति घिनावनी देह, धरैं दुर्गंधि निवासा ॥ तुम पदपंकजधूलको, जो लावैं निज अंग । ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें होंय अनंग ॥ ४५ ॥ पांव कंठतैं जकर बांध सांकल अति भारी । गाढ़ी बेडी पैरमाहिं, जिन जांघ विदारी ॥ भूख प्यास चिंता शरीर दुख जे विललाने । सरन नाहिं जिन कोय भूपके बंदीखाने ॥ तुम सुमरत स्वयमेव ही बंधन सब खुल जाहिं । छिनमें ते संपति लहैं, चिंता भय विनसाहिं ॥ ४६ ॥ महामत्त गजराज और मृगराज दवानल । फणपति रणपरचन्ड नीरनिधि रोग महाबल ॥ बन्धन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै । तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै ॥ इस अपार संसारमें शरन नाहिं प्रभु कोय । यातैं तुम पदभक्तको भवित सहाई होय ॥ ४७ ॥ यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुननसँवारी । विविधवर्नमय पुहुप गूंथ मैं भक्ति

विचारी ॥ जे नर पढ़िहैं कंठ भावना मनसैं भावैं। मान-तुङ्ग तें निजाधीन शिवलक्ष्मी पावैं। भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हित हेत। जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिवखेत ॥ ४८ ॥ इति ॥

१५७—कल्याणमन्दिर स्तोत्र।

कल्याणमंदिरमुदारमवद्यभेदि भीताभयप्रदमनिंदि-तमंघ्रिपद्मं। संसार सागरनिमज्जदशेषजंतु पोतायमान-मभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥१॥ यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमांबु-राशेः स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुं। तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतोस्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥२॥ सामान्यतोपि तव वर्णयितुं स्वरूपमस्मादृशाः कथ-मधीश भवंत्यधीशाः। धृष्टोपि कौशिकशिशुर्यदि वा दिवांधो रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ॥ ३ ॥ मोह-क्षयादनुभवन्नपि नाथ मर्त्यो नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत्। कल्पांतवांतपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥४॥ अभ्युद्यतोस्मि तव नाथ जड़ा-शयोपि कर्तुं स्तवं लसद संख्य गुणाकरस्य। बालोपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य विस्तीर्णतां कथयति स्वधि-यांबुराशेः ॥ ५ ॥ ये योगिनामपि न यांति गुणास्तवेश वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः। जाता तदेवमसमी-क्षितकारितेयं जल्पंति वा निजगिरा ननु पक्षिणोपि ॥६ आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन संस्तवस्ते नामापि पा

भवतो भवतो जगंति । तीव्रातपोपहतपांथजनान्निदाघे प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥ हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिलीभवंति जंतोः क्षणेन निबिडा अपि कर्म-बंधाः । सद्यो भुजंगममया इव मध्यभागमभ्यागते वनशिखंडिनि चंदनस्य ॥८॥ मुच्यंत एव मनुजाः सहसा जिनेंद्र रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि । गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे चौरैरिवाशुपशवः प्रपलायमानैः ॥९॥ त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव त्वामुद्वहंति हृदयेन यदुत्तरन्तः । यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नूनमं-तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥ १० ॥ यस्मिन्हरप्रभृ-तयोऽपि हतप्रभावाः सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन । विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन ॥११॥ स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्नास्त्वां जंतवः कथमहो हृदये दधानाः । जन्मोदधिं लघु तरन्त्य-तिलाघवेन चिंत्यो न हंत महतां यदि वा प्रभावः ॥१२॥ क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो ध्वस्तास्तदा बत कथं किल कर्मचौराः । प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥ १३ ॥ त्वां योगिनो जिन सदा परमात्मरूपमन्वेषयंति हृद-यांबुजकोषदेशे । पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्य-दक्षस्य संभवपदं ननु कर्णिकायाः ॥ १४ ॥ ध्याना-ज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन देहं विहाय परमा-

त्मदशां व्रजंति । तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥ १५ ॥ अंतः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरं । एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि यद्विग्रहं प्रशमयंति महानुभावाः ॥ १६ ॥ आत्मा मनीषिभिरयं त्वद् भेदबुद्ध्या ध्यातो जिनेंद्र भवतीह भवत्प्रभावः । पानीयमप्यमृतमित्यनुचिंत्यमानं किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥ १७ ॥ त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि नूनं विभो हरिहरादिधिया प्रपन्नाः । किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शंखो नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥ १८ ॥ धर्मोपदेशसमये सविधानुभावादास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः । अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥ १९ ॥ चित्रं विभो कथमवाङ्मुखवृंतमेव विष्वक्पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः । त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश ! गच्छंति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥ २० ॥ स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति । पीत्वा यतः परमसम्मदसंगभाजो भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम् ॥ २१ ॥ स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः । येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुंगवाय ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥२२॥ श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्नसिंहासनस्थमिह भव्य-

शिखंडिनस्त्वां । आलोकयंति रभसेन नदंतमुच्चैश्चामी-
कराद्रिशिरसीव नवांबुवाहं ॥ २३ ॥ उद्गच्छता तव
शितिद्युतिमंडलेन लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्बभूव। सांनि-
ध्यतोपि यदि वा तव वीतराग ! नीरागतां व्रजति को
न सचेतनोपि ॥ २४ ॥ भो भोः प्रमादमवधूय भजध्व-
मेनमागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् । एतन्निवेदयति
देवजगत्त्रयाय मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुंदुभिस्ते ॥२५॥
उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ तारान्वितो विधुरयं
विहतांधकारः । मुक्ताकलापकलितोरुसितातपत्रव्याजा-
त्त्रिधा धृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥ २६ ॥ स्वेन प्रपूरितज-
गत्त्रयपिंडितेन कांतिप्रतापयशसामिव संचयेन । माणि-
क्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन सालत्रयेण भगवन्नभितो
विभासि ॥ २७ ॥ दिव्यस्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपा-
नामुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबंधान् । पादौ श्रयन्ति
भवता यदि वापरत्र त्वत्संगमे सुमनसो न रमंत एव
॥ २८ ॥ त्वं नाथ जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोपि यत्तारय-
स्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्। युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सत-
स्तवैव चित्रं विभो यदसि कर्मविपाकशून्यः ॥ २९ ॥
विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्वं किं वाक्षरप्रकृतिरप्य-
लिपिस्त्वमीश । अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव ज्ञानंत्व-
यि स्फुरति विश्वविकासहेतु ॥ ३० ॥ प्राग्भारसंभृतन-
भांसि रजांसि रोषादुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।

छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो ग्रस्तस्त्वमीभिर-
येमेव परं दुरात्मा ॥ ३१ ॥ यद्गुर्जदूर्जितघनौघमदभ्र-
भीमभ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारं । दैत्येन मुक्तमथ
दुस्तरवारि दध्रे तेनैव तस्य जिन दुस्तरवारिकृत्यम् ॥ ३२॥
ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुंडप्रालंबभृद्भयदवक्त्रवि-
निर्यदग्निः । प्रेतव्रजः प्रति भवंतमपीरितो यः सोऽस्या-
भवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥ ३३ ॥ धन्यास्त एव भुव-
नाधिप ये त्रिसंध्यमाराधयंति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः
भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः पादद्वयं तव विभो
भुविजन्मभाजः ॥ ३४ ॥ अस्मिन्नपारभववारिनिधौ
मुनीश मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि । आक-
र्णिते तु तव गोत्रपवित्रमंत्रे किं वा विपद्विषधरी सविधं
समेति ॥ ३५ ॥ जन्मांतरेऽपि तव पादयुगं न देव मन्ये
मया महितमीहितदानदक्षं । तेनेह जन्मनि मुनीश !
पराभवानां जातो निकेतनमहं मथिताशयानां ॥ ३६ ॥
नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन पूर्वं विभो सकृदपि प्रवि-
लोकितोसि । मर्माविधो विधुरयंति हि मामनर्थाः प्रोद्य-
त्प्रबंधगतयः कथमन्यथैते ॥ ३७ ॥ आकर्णितोपि महि-
तोपि निरीक्षितोपि नूनं न चेतसि मया विधृतोसि
भक्त्या । जातोस्मि तेन जनबांधव दुःखपात्रं यस्मात्क्रियाः
प्रतिफलंति न भवशून्याः ॥ ३८ ॥ त्वं नाथ दुःखिज-
नवत्सल हे शरण्य कारुण्यपुण्यवसते वशिनां वरेण्य ।

भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय दुःखांकुरोद्दलनत-
त्परतां विधेहि ॥ ३९ ॥ निःसंख्यसार शरणं शरणं शर-
ण्यमासाद्य सादितरिपुप्रथितावदानं। त्वत्पादपंकजमपि
प्रणिधानवंध्यो वंध्योस्मि चेद्भुवनपावन हा हतोस्मि ॥४०॥
देवेंद्रवंद्य ! विदिताखिलवस्तुसार संसारतारक विभो
भुवनाधिनाथ। त्रायस्वदेव करुणाहृद मां पुनीहि सीदं-
तमद्य भयदव्यसनांबुराशेः ॥ ४१ ॥ यद्यस्ति नाथ भव-
दंघ्रिसरोरुहाणां भक्तेः फलं किमपि संततसंचितायाः।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य भूयाः स्वामी त्वमेव भुव-
नेऽत्र भवांतरेऽपि ॥ ४२ ॥ इत्थं समाहितधियो विधिव-
ज्जिनेन्द्र सांद्रोल्लसत्पुलककंचुकितांगभागाः। त्वद्बिं-
बनिर्मलमुखांबुजबद्धलक्ष्याः ये संस्तवं तव विभो रच-
यंति भव्याः ॥ ४३ ॥ जननयनकुमुदचंद्रप्रभास्वराः
स्वर्गसंपदो भुक्त्वा। ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्षं
प्रपद्यंते ॥ ४४ ॥

१५८—एकीभाव स्तोत्र।

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबंधो घोरं
दुःखं भवभवगतोदुर्निवारः करोति। तस्याप्यस्य त्वयि
जिनरवे ! भक्तिरुन्मुक्तये चेज्जेतुं शक्यो भवति न
तया कोपरस्तापहेतुः ॥१॥ ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वांत-
प्रध्वंसहेतुं त्वामेवाहुर्जिनवर चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः।
वासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमानस्तस्मिन्नंहः

कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥ २ ॥
पितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्यश्चायेत त्वयि
स्तोत्रमंत्रैर्भवंतं । तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहव
कमध्यान्निष्कास्यंते विविधविषमव्याधयः
॥ ३ ॥ प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्पृथ्वं
चक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदं । ध्यानद्वारं
रुचिकरं स्वांतगेहं प्रविष्टस्तत्किं चित्रं जिनवपुरिदं यत्
वर्णीकरोषि ॥ ४ ॥ लोकस्यैकस्त्वमसि
बन्धुस्त्वय्येवासौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका ।
स्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्तशय्यां
कथमिव ततः क्लेशयूथं सहेथाः ॥ ५ ॥ जन्माटव्यां कथ
मपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा प्राप्तैवेयं तव नयकथा-स्फा
रपीयूषवापी । तस्या मध्ये हिमकरहिमव्यूहशीते
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःखदावोपतापाः ॥ ६ ॥ पाद
न्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं हेमा
भवति सुरभिः श्रीनिवासश्चपद्मः। सर्वांगेण स्पृशति भग
वंस्त्वय्यशेषं मनो मे श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न माम
भ्युपैति ॥ ७ ॥ पश्यंतं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या
कर्मारण्यात्पुरुषमसमानंदधाम प्रविष्टं । त्वां दुर्वारस्म
रमदहरं त्वत्प्रसादैकभूमिं क्रूराकाराः कथमिव रुजा कं
टका निर्लुठंति ॥ ८ ॥ पाषाणात्मा तदितरसमः
रत्नमूर्तिर्मानस्तंभो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः। दृष्टि-

प्रासो हरति स कथं मानरोगं नराणां प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः ॥ ९ ॥ हृद्यः प्रासो मरुदपि भवन्मूर्तिशैलोपवाही सद्यः पुंसां निरवधिरुजाधूलिबंधं धुनोति । ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टस्तस्याशक्यः क इह भुवने देव लोकोपकारः ॥ १० ॥ जानासि त्वं मम भवभवे यच्च यादृक्च दुःखं जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि । त्वं सर्वेशः, सकृप इति च त्वामुपेतोस्मि भक्त्या यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणं ॥ ११ ॥ प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः पापाचारी मरणसमये सारमेयोपि सौख्यं । कः संदेहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं जलपञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रं ॥ १२ ॥ शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपित्वय्यनीचा भक्तिर्नो चेदनवधि सुखावंचिका कुंचिकेयं । शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो मुक्तिद्वारं परिदृढमहामोहामुद्राकपाटं ॥ १३ ॥ प्रच्छन्नः खल्वयमघमयैरंधकारैः समंतात्पंथा मुक्तेः स्थपुटितपदः क्लेशगर्तैरगाधैः । तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी यद्यग्रेऽग्रे न भवतिभवद्भारतीरत्नदीपः ॥ १४ ॥ आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानंदहेतुः कर्मक्षोणीपटलपिहितोयोनवाप्यः परेषां । हस्ते कुर्वंत्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः स्तोत्रैर्बंधप्रकृतिपुरुषोद्दामधात्रीखनित्रैः ॥ १५ ॥ प्रत्युत्पन्ना नयहिमगिरेरायता

चामृताऽधेयां देव त्वत्पदकमलयोः संगता भक्तिगंगा।
चेतस्तस्यां मम रुचिवशादाप्लुतं क्षालितांहः कल्माषं
यद्भवति किमियं देव संदेहभूमिः ॥ १६ ॥ प्रादुर्भूतस्थि-
रपदसुख त्वामनुध्यायतो मे त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्प-
द्यते निर्विकल्पा। मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्तिमभ्रेषरू-
पां दोषात्मानोप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद्भवंति ॥ १७ ॥
मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभंगीतरंगैर्वागंभोधिर्भुवनम-
खिलं देव पर्येति यस्ते। तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेत-
सैवाचलेन। व्यातन्वंतः सुचिरममृतासेवया तृप्नुवंति
॥ १८ ॥ आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः। सर्वां-
गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां तत्किं भूषा-
वसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥ १९ ॥ इन्द्रः सेवां
तव सुकुरुतां किं तयाश्लाघनं ते तस्यैवेयं भवलयकरी
श्लाघ्यतामातनोति। त्वं निस्तारी जननजलधेः सिद्धि-
कांतापतिस्त्वं त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तो-
त्रमित्थं ॥ २० ॥ वृत्तिर्वाचामपरसदृशी न त्वमन्येन
तुल्यः स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमंते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्तिपीयूषपुष्टास्ते भव्यानाम-
भिमतफलाः पारिजाता भवंति ॥ २१ ॥ कोपावेशो न
तव न तव क्वापि देव प्रसादो व्याप्तं चेतस्तव हि पर-
मोपेक्षयैवानपेक्षं। आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधिर्वै-

रहारी कएवंभूतं भुवनतिलक ! प्राभवं त्वत्परेषु ॥२२॥ देव स्तोतुं त्रिदिवगणिकामंडलीगीतिकीर्तिं तोतूर्ति त्वां सकलविषयज्ञानमूर्तिं जनो यः। तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जाहूर्ति पंथास्तत्त्वग्रंथस्मरणविषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः ॥ २३ ॥ चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं देव त्वां यः समयनियमादादरेण स्तवीति। श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा कल्याणानां भवति विषयः पंचधा पंचितानां ॥ २४ ॥ भक्तिप्रह्वमहेंद्रपूजितपद त्वत्कीर्तने न क्षमाः सूक्ष्मज्ञानदृशोपि संयमभृतः के हंत मंदा वयं। अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते स्वात्माधीनसुखैषिणां सखलु नः कल्याणकल्पद्रुमः ॥२५॥ वादिराजमनु शाब्दिकलोको वादिराजमनु तार्किकसिंहः। वादिराज मनु काव्य कृतस्ते, वादिराजमनु भव्यसहायः ॥ २६ ॥

१५६—विषापहार स्तोत्र।

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्त व्यापारवेदी विनिवृत्तसंगः। प्रवृद्धकालोप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥१॥ परैरचिंत्यं युगभारमेकः स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः। स्तुत्योद्य मेसौ वृषभो न भानोः किमप्रवेशे विशति प्रदीपः ॥२॥ तत्याज शक्रः शकनाभिमानं नाहं त्यजामिस्तवनानुबंधं स्वल्पेन बोधेन ततोधिकार्थं वातायनेनेव निरूपयामि ॥३॥ त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो

विद्वानशेषं निखिलैरवैद्यः । वक्तुं कियान्कीदृशमित्यशक्यः स्तुतिस्ततो शक्तिकथा तवास्तु ॥४॥ व्यापीडितं बालमिवात्मदोषैरुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वं । हिताहितान्वेषणमांद्यभाजः सर्वस्य जंतोरसि बालवैद्यः ॥ ५ ॥ दाता न हर्ता दिवसं विवस्वानद्यश्व इत्यच्युतदर्शिताशः । सव्याजमेवं गमयत्यशक्तः क्षणेन दत्सेभिमतं नताय ॥६॥ उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुखं । सदावदातद्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥७॥ अगाधताब्धेः स यतः पयोधिर्मेरोश्च तुङ्गाप्रकृतिः स यत्रः । द्यावापृथिव्यो पृथुना तथैव व्याप त्वदीया भुवनांतराणि ॥ ८ ॥ तवानवस्थापरमार्थतत्त्वं त्वया न गीतः पुनरागमश्च । दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैपीर्विरुद्धवृत्तोऽपि समंजसस्त्वं ॥९॥ स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्नुद्धूलितात्मा यदि नाम शंभुः । अशेत वृन्दोपहतोपि विष्णुः किं गृह्यते येन भवानजागः ॥१०॥ स नीरजाः स्यादपरोघवान्वा तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वं । स्वतोंबुराशेर्महिमा न देव स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥११॥ कर्मस्थितिं जंतुरनेकभूमिं नयत्यमुं सा च परस्परस्य । त्वं नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ जिनेन्द्र नौनाविकयोरिवाख्यः ॥१२॥ सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्धर्माय पापानि समाचरंति । तैलाय बालाः सिकतासमूहं निपीडयंति स्फुटमत्वदीयाः ॥ १३ ॥ विषापहारं मणिमौष-

धानि मंत्रं समुद्दिश्य रसायनं च । भ्राम्यंत्यहो न त्वमितिस्मरंति पर्यायनामानि तवैव तानि ॥ १४ ॥ चित्ते न किंचित्कृतवानसि त्वं देवः कृतश्चेतसि येन सर्वं । हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं सुखेन जीवत्यपि चित्तवाह्यः ॥१५॥ त्रिकालतत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकीस्वामीति संख्यानियतेरमीषां । बोधाधिपत्यं प्रतिनाभविष्यंस्तेन्येपि चेद्व्याप्स्यदमूनपीदं ॥१६॥ नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं नागम्यरूपस्य तवोपकारि । तस्यैवहेतुः स्वसुखस्य भानोरुद्विभ्रतश्छत्र मिवादरेण ॥१७॥ क्वोपेक्षकस्त्वंक्व सुखोपदेशः स चेत्किमिच्छाप्रतिकूलवादः । क्वासौ क वा सर्वजगत्प्रियत्वं तन्नो यथातथ्यमवेविजं ते ॥१८॥ तुङ्गात्फलं यत्तदकिंचनाच्च प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः । निरंभसोप्युच्चतमादिवाद्रेर्नैकापि निर्याति धुनीपयोधेः ॥ १९ ॥ त्रैलोक्यसेवानियमाय दंडं दध्रे यदिंद्रोविनयेन तस्य । तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं तत्कर्मयोगाद्यदि वा तवास्तु ॥ २० ॥ श्रियापरं पश्यति साधु निःस्वः श्रीमान्नकश्चित्कृपणं त्वदन्यः । यथा प्रकाशस्थितमंधकारस्थायीक्षतेऽसौ न तथा तमःस्थं ॥२१॥ स्ववृद्धिनिःश्वासनिमेषभाजि प्रत्यक्षमात्मानुभवेपि मूढः । किं चाखिलज्ञेयविवर्तिबोधस्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः ॥ २२ ॥ तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव त्वां येऽवगायंति कुलं प्रकाश्य । तेद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजंति

विज्ञानशेष निखिलैरवेद्यः । वक्तुं कियान्कीदृशमित्यशक्यः स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु ॥४॥ व्यापीडितं बालमिवात्मदोषैरुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वं । हिताहितान्वेषणमांद्यभाजः सर्वस्य जंतोरसि बालवैद्यः ॥ ५ ॥ दाता न हर्ता दिवसं विवस्वानद्यश्व इत्यच्युतदर्शिताशः । सव्याजमेवं गमयत्यशक्तः क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय ॥६॥ उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखं । सदावदातद्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥७॥ अगाधताऽब्धेः स यतः पयोधिर्मेरोश्च तुङ्गाप्रकृतिः स यत्र । द्यावापृथिव्यो पृथुता तथैव व्याप त्वदीया भुवनांतराणि ॥ ८ ॥ तवानवस्थापरमार्थतत्त्वं त्वया न गीतः पुनरागमश्च । दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषीर्विरुद्धवृत्तोऽपि समंजसस्त्वं ॥९॥ स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्नुद्धूलितात्मा यदि नाम शंभुः । अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः किं गृह्यते येन भवानजागः ॥१०॥ स नीरजाः स्यादपरोघवान्वा तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वं । स्वतोंबुराशेर्महिमा न देव स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥११॥ कर्मस्थितिं जंतुरनेकभूमिं नयत्यमुं सा च परस्परस्य । त्वं नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ जिनेन्द्र नौनाविकयोरिवाख्यः ॥१२॥ सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्धर्माय पापानि समाचरंति । तैलाय बालाः सिकतासमूहं निपीड़यंति स्फुटमत्वदीयाः ॥ १३ ॥ विषापहारं मणिमौष-

धानि मंत्रं समुद्दिश्य रसायनं च । भ्राम्यंत्यहो न त्वमि-
तिस्मरंति पर्यायनामानि तवैव तानि ॥ १४ ॥ चित्ते न
किंचित्कृतवानसि त्वं देवः कृतश्चेतसि येन सर्वं । हस्ते
कृतं तेन जगद्विचित्रं सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः ॥१५॥
त्रिकालतत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकीस्वामीति संख्यानियतेर-
मीषां । बोधाधिपत्यं प्रतिनाभविष्यंस्तेन्येपि चेद्व्याप्स्य-
दमूनपीदं ॥१६॥ नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं नागम्यरू-
पस्य तवोपकारि । तस्यैवहेतुः स्वसुखस्य भानोरुद्बिभ्रत-
श्छत्र मिवादरेण ॥१७॥ क्वोपेक्षकस्त्वंक्व सुखोपदेशः स
चेत्किमिच्छाप्रतिकूलवादः। क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं
तन्नो यथातथ्यमवेविजं ते ॥१८॥ तुङ्गात्फलं यत्तदकिंचनाच्च
प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः। निरंभसोप्युच्चतमादिवा-
द्रे नैकापि निर्याति धुनीपयोधेः ॥ १९ ॥ त्रैलोक्यसेवा-
नियमाय दंडं दध्रे यदिंद्रोविनयेन तस्य । तत्प्रातिहार्यं
भवतः कुतस्त्यं तत्कर्मयोगाद्यदि वा तवास्तु ॥ २० ॥
श्रियापरं पश्यति साधु निःस्वः श्रीमान्नकश्चित्कृपणं
त्वदन्यः। यथा प्रकाशस्थितमंधकारस्थायीक्षतेऽसौ न
तथा तमःस्थं ॥२१॥ स्ववृद्धिनिःश्वासनिमेषभाजि प्रत्य-
क्षमात्मानुभवेपि मूढः। किं चाखिलज्ञेयविवर्तिबोधस्वरू-
पमध्यक्षमवैति लोकः ॥ २२ ॥ तस्यात्मजस्तस्य
पितेति देव त्वां येऽवगायंति कुलं प्रकाश्य । तेद्यापि
नन्वाश्मनमित्यवश्यं पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजंति

॥ २३ ॥ दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोभिभूताः सुरासुरास्तस्य महान्स लाभः । मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुमूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ॥ २४ ॥ मार्गस्त्वयैको ददृशेविमु-क्तेश्चतुर्गतीनां गहनं परेण । सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन त्वां मा कदाचिद्भुजमालुलोके ॥२५॥ स्वर्भानुरर्कस्य हवि-र्भुजोंभः कल्पांतवातोऽम्बुनिधेर्विघातः । संसारभोगस्य वियोगभावो विपक्षपूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥ २६ ॥ अजा-नतस्त्वां नमतः फलं यत्तज्जानतोन्यं नतु देवतेति । हरिन्मणिं काचधिया दधानस्तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥ २७ ॥ प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायैर्दग्धस्य देव-व्यवहारमाहुः । गतस्य दीपस्य हि नंदितत्वं दृष्टं कपा-लस्य च मंगलत्वं ॥ २८ ॥ नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः । निर्दोषतां के न विभा-वंयति ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥ २९ ॥ न क्वापि वांछा ववृते च वाक्ते काले क्वचित्कोपि तथा नियोगः । न पूरयाम्यंबुधिमित्यदंशुः स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥ ३० ॥ गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना बहुप्रकारा बह-वस्तवेति । दृष्टोयमंतः स्तवने न तेषां गुणो गुणानां किमतः परोस्ति ॥ ३१ ॥ स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि । स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं केनाप्युपायेन फलं हि साध्यं ॥ ३२ ॥ ततस्त्रिलो-कीनगराधिदेवं नित्यं परं ज्योतिरनंतशक्तिं । अपुण्य-

पापं परपुण्यहेतुं नमाम्यहं वंद्यमवंदितारं ॥ ३३ ॥ अशा-ब्दमस्पर्शमरूपगंधं त्वां नीरसं तद्विषयावबोधं। सर्व-स्यमातारममेयमन्यैर्जिनेंद्रमस्मार्यमनुस्मरामि ॥ ३४ ॥ अगाधमन्यैर्मनसाप्यलंघ्यं निष्किंचनं प्रार्थितमर्थवद्भिः। विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं पतिं जिनानां शरणं व्रजामि ॥ ३५ ॥ त्रैलोक्यदीक्षा गुरवे नमस्ते यो वर्द्धमानोपि-निजोन्नतोभूत्। प्राग्गंडशैलः पुनरद्रिकल्पः पश्चान्न मेरुः कुलपर्वतोऽभूत् ॥ ३६ ॥ स्वयंप्रकाशस्य दिवा निशा वा न बाध्यता यस्य न बाधकत्वं न लाघवं गौर-वमेकरूपं वंदे विभुं कालकलामतीतं ॥ ३७ ॥ इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्वरं न याचे त्वमुपेक्षकोसि। छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्म-लाभः ॥३८॥ अथास्ति दित्सा यदिवोपरोधस्त्वय्येव सक्तां दिश भक्तिबुद्धिं। करिष्यते देव तथा कृपां मे को वात्म पोष्ये सुमुखो न सूरिः ॥ ३९ ॥ वितरति विहिता यथा-कथंचिज्जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः। त्वयिनुति विषया पुनर्विशेषाद्दिशति सुखानि यशो 'धनंजयं' च ॥ ४० ॥ इति ॥

१६०—महावीराष्टक स्तोत्र।

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः। समं भांति ध्रौव्यव्ययजनिलसंतोंतरहिताः। जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो महावीरस्वामी नयनप अप्रती-

भवतु मे (नः) ॥ १ ॥ अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुग
स्पंदरहितं, जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यंतरमपि। स्फु
मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला, महावीर० ॥ २
नमन्नाकेंद्राली मुकुटमणिभाजालजटिलं, लसत्पादांभो
जद्वयमिह यदीयं तनुभृतां। भवज्ज्वालाशांत्यै प्रभवति
जलं वा स्मृतमपि, महावीर० ॥ ३ ॥ यदर्च्चाभावे
प्रमुदितमना, दर्दुर इह, क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणस
मृद्धः सुखनिधिः। लभंते सद्भक्ताः शिवसुखसमाज
किमु तदा, महावीर० ॥ ४ ॥ कनत्स्वर्णाभासोऽप्यप
गततनुर्ज्ञाननिवहो विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थ
तनयः। अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगतिर्
महावीर० ॥ ५ ॥ यदीया वाग्गंगा विविधनकल्लोल
विमला, बृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता, महावीर०, ॥६।
अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभटः, कुमारावस्थाया-
मपि निजबलाद्येन विजितः। स्फुरन्नित्यानंदप्रशमपद-
राज्याय स जिनः, महावीर० ॥ ७ ॥ महामोहातंकप्रश-
मनपराकस्मिकाभिषङ्, निरापेक्षो बंधुर्विदितमहिमामंग-
लकरः, शरण्यः साधूनांभवभयभृतामुत्तमगुणो, महा-
नित्यं ॥८॥ महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेंदुना कृतं।
[illegible] याति परमां गतिं ॥ ९ ॥

घाते ॥ ४० ॥ अनादिसंबंधे च ॥ ४१ ॥ सर्वस्य ॥४२॥
तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ४३ ॥
निरुपभोगमंत्यं ॥ ४४ ॥ गर्भसंमूर्छनजमाद्यं ॥ ४५ ॥
औपपादिकं वैक्रियिकं ॥ ४६ ॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥
तैजसमपि ॥ ४८ ॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं
प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥ नारकसंमूर्च्छिनो नपुंसकानि
॥ ५० ॥ न देवाः ॥ ५१ ॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥ औप-
पादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो
घनांबुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥१॥ तासु त्रिंश-
त्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैक नरकशतसहस्राणि
पंचचैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्याऽशुभतरलेश्यापरि-
णामदेहवेदनाविक्रियाः ॥३॥ परस्परोदीरितदुःखाः ॥४॥
संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वे-
कत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा स-
त्त्वानां परास्थितिः ॥ ६ ॥ जंबूद्वीपलवणोदादयः शुभना-
मानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥ द्विर्द्विर्विष्कंभाः पूर्वपूर्व परिक्षे-
पिणो वलयाकृतयः ॥८॥ तन्मध्येमेरुनाभिर्वृत्तो योजन-
शतसहस्रविष्कंभो जंबूद्वीपः ॥९॥ भरतहैमवतहरिविदे-
हरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाःक्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिन
पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिख

शिकार खेलना ।

रिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥ हेमार्जुनपतनीयवैडूर्यर-जतहेममयाः ॥ १२ ॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरिमूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥ पद्ममहापद्मतिगिंछकेशरिमहा-पुंडरीकपुंडरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कंभो ह्रदः ॥ १५ ॥ दशयोजना-वगाहः ॥ १६ ॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करं ॥ १७ ॥ तद्‌द्वि-गुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥ १९ ॥ गंगासिंधुरोहिद्रोहिता-स्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारीनरकांतासुवर्णरूप्य-कूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयोर्द्व-योः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृत्ता गंगासिंध्वादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविं-शतिभागा योजनस्य ॥ २४ ॥ तद्द्विगुण द्विगुण-विस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहांताः ॥ २५ ॥ उत्तरा दक्षि-णतुल्याः ॥ २६ ॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समया-भ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां ॥ २७ ॥ ताभ्यामपरा भूम-योऽवस्थिताः ॥२८॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो है-
कहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥२९॥ तथोत्तराः ॥ ३॥ द्रव्याणि
हेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ भरतस्य विष्कंभे ॥४॥ रूपिणः
स्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥ द्रियाणि ॥६॥ निष्क्रियाणि

पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥ ३७ ॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥ दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥ इंद्रसामानिकत्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंशल्लोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ॥५॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः॥८॥परेऽप्रवीचाराः॥९॥भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यंतराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः कालविभागः ॥१४॥ वहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ [illegible]रि ॥१८॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तव-कापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राण-तयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयंतजयंता-[illegible]र्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥ स्थितिप्रभावसुख-

द्युतिलेश्या विशुद्धींद्रियावधिविषयतोधिकाः ॥ २० ॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥ पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥ ब्रह्मलोकालया लौकांतिकाः ॥२४॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिता व्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्धहीनमिताः ॥ २८ ॥ सौधर्मैशानयोःसागरोपमेऽधिके ॥२९॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंचदशभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥ अपरा पल्योपममधिकं॥३३॥ परतः परतः पूर्वापूर्वानंतराः॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यंतराणां च ॥३८॥ परा पल्योपम मधिकं ॥ ३९ ॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥ लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषां ॥ ४२ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि ॥२॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥ आआकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥ निष्क्रियाणि

च ॥७॥ असंख्येयाः प्रदेशाधर्माधर्मैकजीवानां ॥८॥ आका-
शस्यानंताः ॥ ९ ॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानां ॥१०॥
नाणोः ॥११॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥ धर्माधर्मयोः
कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानां ॥१४॥ असं-
ख्येयभागादिषु जीवानां ॥१५॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां
प्रदीपवत् ॥ १६ ॥ गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः
॥१७॥आकाशस्यावगाहः॥१८॥शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः
पुद्गलानां ॥१९॥ सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥
परस्परोपग्रहो जीवानां ॥२१॥ वर्तनापरिणामक्रियापरत्वा-
परत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥ स्पर्शरसगंधवर्णवंतः पुद्गलाः
॥२३॥ शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपो-
द्योतवंतश्च ॥२४॥ अणवःस्कन्धाश्च ॥२५॥ भेदसंघातेभ्य
उत्पद्यंते ॥२६॥ भेदादणुः॥२७॥भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः
॥२८॥सद्द्रव्यलक्षणं॥२९॥उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्॥
तद्भावाव्ययं नित्यं ॥ ३१ ॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥
स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥ न जघन्यगुणानां ॥३४॥
गुणसाम्ये सदृशानां ॥ ३५ ॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु
॥३६॥ बंधेऽधिकौपारिणामिकौ च ॥३७॥ गुणपर्ययवद्-
द्रव्यं ॥ ३८ ॥ कालश्च ॥ ३९ ॥ सोऽनंतसमयः॥ ४० ॥
द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥१॥ स आस्रवः ॥२॥ शुभः

पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥ सकषायाकषाययोः सांपरायि-
केर्यापथयोः ॥४॥ इंद्रियकषायाव्रतक्रियाःपंचचतुःपंचपंच-
विंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभा-
वाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥ अधिकरणं
जीवाजीवाः ॥७॥ आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतका-
रितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥८॥ निर्व-
र्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परं ॥ ९ ॥
तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्श-
नावरणयोः॥१०॥दुःखशोकतापाक्रंदनवधपरिदेवनान्यात्म-
परोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥ भूतव्रत्यनुकंपादानसरा-
गसंयमादियोगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥
केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥
कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वारंभप-
रिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥
अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ १७ ॥ स्वभावमार्दवं च
॥१८॥ निःशीलव्रतित्वं च सर्वेषां ॥ १९ ॥ सरागसंयम-
संयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥२०॥ सम्य-
क्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः
॥ २२ ॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥ दर्शनविशुद्धिर्वि-
नयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसं-
वेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणम-
र्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभा-

वना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥२४॥ परात
निंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छदानोद्भावने च नीचैर्गोत्र
॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥ २६
विघ्नकरणमंतरायस्य ॥ २७ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं ॥१॥ देश
सर्वतोऽणुमहती ॥२॥ तत्स्थैर्यार्थं भावना पंच पंच ॥३
वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजना
पंच ॥ ४ ॥ क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीची
भाषणं च पंच ॥ ५ ॥ शून्यागारविमोचितावासपरोधा-
करणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच ॥६॥ स्त्रीरागकथा-
श्रवण तन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्व-
शरीरसंस्कारत्यागाः पंच ॥ ७ ॥ मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविष-
यरागद्वेषवर्जनानि पंच ॥८॥ हिंसादिष्विहामुत्रापाया-
वद्यदर्शनं ॥९॥ दुःखमेव वा ॥१०॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य-
माध्यस्थानि च सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥११॥
जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थं ॥१२॥ प्रमत्तयो-
गात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥ असदभिधानमनृतं
॥ १४ ॥ अदत्तादानं स्तेयं ॥१५॥ मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥
मूर्छा परिग्रहः ॥१७॥ निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥ आगार्य-
नगारश्च ॥ १९ ॥ अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥ दिग्देशानर्थ-
दण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमा-

णातिथि संविभागव्रतसंपन्नश्च ॥ २१ ॥ मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥ २२ ॥ शंकाकांक्षाविचिकित्सान्य-दृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥ २३ ॥ व्रत-शीलेषु पंच पंच यथाक्रमं ॥२४॥ बंधवधच्छेदातिभारा-रोपणान्नपाननिरोधाः ॥२५॥ मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः ॥ २६ ॥ स्तेन-प्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मा-नप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥२७॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरि-गृहीतागमनानंगक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥ क्षेत्र-वास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यंतराधानानि ॥ ३० ॥ आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥३१॥कंदर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोग परि-भोगानर्थक्यानि ॥३२॥ योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुप-स्थानानि॥३३॥अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरो-पक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥ सचित्तसंबंधसंमि-श्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपर-व्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवितमरणाशंसा-मित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि ॥३७॥ अनुग्रहार्थं स्वस्या-तिसर्गोदानं॥३८॥विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः

॥ १ ॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बंधः ॥२॥ प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायाः ॥ ४ ॥ पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदाः यथाक्रमं ॥ ५ ॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानां ॥ ६ ॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाःसम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥ नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥१०॥ गतिजातिशरीरांगोपांगनिर्माणबंधनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगंधवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशः कीर्तिसेतराणि तीर्थंकरत्वंच ॥ ११ ॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥ दानलाभभोगोपभोगवीर्याणां ॥ १३ ॥ आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥ अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥ शेषाणा-

मंतर्मुहूर्त्ता ॥ २० ॥ विपाकोनुभवः ॥ २१ ॥ सयथा-
नाम ॥ २२ ॥ ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥ नामप्रत्ययाः
सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्म-
प्रदेशेष्वनंतानंतप्रदेशाः ॥ २४ ॥ सद्वेद्यशुभायुर्नामगो-
त्राणि पुण्यं ॥ २५ ॥ अतोऽन्यत्पापं ॥ २६ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥ स गुप्तिसमितिधर्मा-
नुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥ २ ॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥
सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥ ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपो-
त्सर्गाः समितयः ॥५॥ उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्य-
संयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥ अनि-
त्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबो-
धिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥
मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥ ८ ॥ क्षुत्पि
पासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्री चर्यानिषद्याश-
य्याक्रोशवधयाञ्चालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कार-
प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥ सूक्ष्मसांपरायच्छद्मस्थवीत-
रागयोश्चातुर्दश ॥ १० ॥ एकादश जिने ॥ ११ ॥ बाद-
रसांपराये सर्वे ॥ १२ ॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥
दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥ चारित्रमोहे
नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाञ्चासत्कारपुरस्काराः ॥१५॥
वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मि-

न्नैकोनविंशतिः ॥ १७ ॥ सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातमिति चारित्रं ॥१८॥ अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरं ॥ २० ॥ नवचतुर्दशपंचद्विभेदायथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥ आलोचनाप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः॥२२॥ ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥ आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानां ॥२४॥ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥ २५ ॥ बाह्याभ्यंतरोपध्योः ॥ २६ ॥ उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥ आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥ परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥ आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्वियोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥३०॥ विपरीतंमनोज्ञस्य॥३१॥ वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥ निदानं च ॥ ३३ ॥ तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानां ॥३४॥ हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥ ३५ ॥ आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं॥३६॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥ परे केवलिनः ॥ ३८ ॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्त्तीनि ॥ ३९ ॥ त्र्येकयोगकाययोगायोगानां ॥ ४० ॥ एकाश्रये सवितर्कवी-

श्रुतं ॥ ४३ ॥ वीचारोर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः ॥ ४४ ॥ सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानंतवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥ पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रंथाः ॥ ४६ ॥ संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

इति तित्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलं ॥१॥ बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥ तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकांतात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्वन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालांवुवदेरंडबीजवादग्निशिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥ क्षेत्र कालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकवुद्धबोधितज्ञानावगाहनांतरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसंधिविवर्जितरेफं । साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ १ ॥ दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति । फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ॥ २ ॥ तत्त्वा-

र्थस्य सूत्रकर्त्तारं गृध्रपिच्छोपलक्षितं। वंदे गणींद्रसंयात-उमास्वामिमुनीश्वरं ॥ ३ ॥

इति तत्वार्थसूत्रापरनाम तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रं समाप्तं ॥

१६३—छहढाला।

सोरठा—तीनभुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता।

शिवस्वरूप शिवकार नमौं त्रियोग सम्हारिकैं ॥१॥

चौपाई—जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त। सुख चाहैं दुखतैं भयवंत ॥ तातैं दुखहारी सुखकारि। कहैं सीख गुरु करुणा धारि ॥२॥ ताहि सुनो भवि मन थिर आन। जो चाहो अपनो कल्यान॥ मोह महामद पियो अनादि। भूलि आपको भरमत वादि ॥ ३ ॥ तास भ्रमनकी है बहुकथा। पै कछु कहूँ कही मुनि जथा ॥ काल अनन्त निगोदमझार। बीत्यो एकेंद्रिय तन धार ॥ ४ ॥ एक श्वासमें अठदश बार। जन्म्यो मर्यो भर्यो दुखभार ॥ निकसि भूमि जल पावक भयो। पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥ ५ ॥ दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणी। त्यों परजाय लही त्रसतणी ॥ लटपिपीलि अलि आदि शरीर। धर-धर मर्यो सही बहु पीर ॥ ६ ॥ कबहूं पंचेंद्रिय पशु भयो। मनबिन निपट अज्ञानी थयो ॥ सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर। निबल पशू हति खाये भूर ॥ ७ ॥ कबहूं आप भयो बलहीन। सबलनिकरि खायो अतिदीन ॥ छेदन भेदन भूखपियास। भारवहन हिम आतप त्रास ॥८॥

बध बंधन आदिक दुख घने। कोटि जीभतैं जात न भने ॥ अतिसंक्लेश भावतैं मर्‍यो। घोर श्वभ्रसागरमें पर्‍यो ॥९॥ तहां भूमि परसत दुख इस्यो। बीछू सहस डसैं तन तिस्यो ॥ तहां राध शोणितवाहिनी। कृमिकुलकलित देह-दाहिनी ॥ १० ॥ सेमरतरुजुत दलअसिपत्र। असि ज्यों देह विदारैं तत्र ॥ मेरुसमान लोह गलि: जाय। ऐसी शीत उष्णता थाय ॥११॥ तिलतिल करहिं देहके खंड। असुर भिड़ावैं दुष्टप्रचंड ॥ सिंधुनीरतैं प्यास न जाय। तौ पण एक न बूंद लहाय ॥ १२ ॥ तीनलोकको नाज जु खाय। मिटै न भूख कणा न लहाय ॥ ये दुख बहु सागरलौं सहै। कर्मजोगतैं नरतन लहै ॥ १३ ॥ जननी उदर बस्यो नवमास। अंग सकुचतैं पाई त्रास ॥ निकसत जे दुख पायो घोर। तिनको कहत न आवै ओर ॥ १४ ॥ बालपनेमें ज्ञान न लह्यो। तरुणसमय तरुणीरत रह्यो ॥ अर्धमृतकसम बूढ़ापनो। कैसें रूप लखै आपनो ॥ १५ ॥ कभी अकामनिर्जरा करै। भवनत्रिकमें सुरतन धरै ॥ विषय चाह दावानल दह्यो। मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥ १६ ॥ जो विमानवासी हू थाय। सम्यकदर्शन बिन दुख पाय ॥ तहंतैं चय थावरतन धरै। यों परिवर्तन पूरे करै ॥१७॥

पद्धरी छन्द—ऐसें मिथ्या दृगज्ञानचरण। वश भ्रमत भरत दुख जन्ममरण ॥ तातैं इनको तजिये सुजान।

सुन तिन संक्षेप कहूं बखान ॥ १ ॥ जीवादि प्रयोजन-भूत तत्त्व । सरधै तिनमाहिं विपर्ययत्व ॥ चेतनको है उपयोगरूप । विन मूरति चिनमूरति अनूप ॥ पुद्‌गल नभ धर्म अधर्मकाल । इनतैं न्यारी है जीवचाल ॥ ताकों न जान विपरीत मान । करि, करै देहमें निज पिछान ॥३॥ मैं सुखी दुखी मै रंक राव । मेरो धन गृह गोधन प्रभाव ॥ मेरे सुत तिय मैं सबल दीन । वे रूप सुभग मूरख प्रवीन ॥ ४ ॥ तन उपजत अपनी उपज जानि । तन नशत आपको नाशं मान ॥ रागादि प्रगट जे दुःख-दैन । तिनहीको सेवत गिनत चैन ॥ शुभअशुभबंधके फलमझार । रति अरति करै निजपद विसार ॥ आतमहि-तहेतु विराग ज्ञान । ते लखे आपको कष्टदान ॥६॥ रोकी न चाह निजशक्ति खोय । शिवरूप निराकुलता न जोय । याही प्रतीतजुत कछुक ज्ञान । सो दुखदायक अज्ञान जान ॥ ७ ॥ इनजुत विषयनिमें जो प्रवृत्त । ताको जानो मिथ्याचरित्त ॥ या मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह । अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥ जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव । पोषैं चिर दर्शन मोह एव ॥ अंतररागादिक धरैं जेह । बाहर धन अम्बरतैं सनेह ॥९॥ धारैं कुलिंग लहि महत-भाव । ते कुगुरु जनमजल उपलनाव । जे रागरोषमल-करि मलीन । बनितागदादिजुत चिन्हचीन ॥१०॥ ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव । शठ करत जु तिन भवभ्रमनछेव ।

रागादिभाव हिंसा समेत। दर्वित त्रसथावर मरनखेत ॥११॥ जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म। तिन सरधै जीव लहै अशर्म ॥ याकौं गृहीतमिथ्यात जान। अब सुन गृहीत जो है कुज्ञान ॥१२॥ एकांतवाद दूषित समस्त। विषयादिकपोषक अप्रशस्त ॥ कपिलादिरचित श्रुतको अभ्यास। सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥१३॥ जो ख्याति लाभ पूजादि चाह। धरि करत विविधविध देहदाह। आतम अनात्मके ज्ञानहीन। जे जे करनी तनकरनछीन ॥ १४ ॥ ते सब मिथ्याचारित्र त्यागि। अब आतमके हितपंथ लागि ॥ जगजालभ्रमनको देय त्यागि। अब दौलत, निज आतम सुपागि ॥ १५ ॥

तीसरी ढाल। नरेन्द्रछंद (जोगीरासा)

आतमको हित है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये। आकुलता शिवमाहिं न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये। सम्यकदर्शनज्ञान चरन शिव,-मग सो दुविध विचारो। जो सत्यारथरूप सु निश्चय, कारन सो व्यवहारो ॥ १ ॥ परद्रव्यनितैं भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त भला है। आप रूपको जानपनो, सो सम्यकज्ञानकला है ॥ आप रूपमें लीन रहै थिर, सम्यकचारित सोई। अब व्यवहार मोखमग सुनिये, हेतु नियतको होई ॥२॥ जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो। निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्योंको त्यों सरधानो ॥

है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानौ । तिन
को सुनि सामान्यविशेषै, दृढ़ प्रतीत उर आनौ ॥ ३ ॥
बहिरातम अंतरआतम परमातम जीव त्रिधा है । देह
जीवको एक गिनै, बहिरातमतत्त्व मुधा है ॥ उत्तम मध्यम
जघन त्रिविधिके अंतरआतमज्ञानी । द्विविध संगविन
शुधउपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥ मध्यम अंतर
आतम हैं जे, देशव्रती आगारी । जघन कहे अविरतस-
मदृष्टी तीनों शिवमगचारी ॥ सकल निकल परमातम
द्वै विध तिनमें घाति निवारी । श्रीअरहंत सकल परमा-
तम लोकालोकनिहारी ॥ ५ ॥ ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-
मल-वर्जित सिद्ध महंता ते हैं निकल अमल परमातम,
भोगैं शर्म अनंता ॥ बहिरातमता हेय जानि तजि
अंतर आतम हूजै । परमातमको ध्याय निरंतर, जो नित
आनन्द पूजै ॥ ६ ॥ चेतनता बिन सो अजीव हैं, पंच
भेद ताके हैं । पुद्गल पंचवरन रसपन गंध, दुफरस वसु
जाके हैं, जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अन
रूपी । तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिनमूर्ति निरूप
॥७॥ सकल द्रव्यको वास जासमैं, सो अकाश पिछाने
नियत वरतना निशिदिन सो व्यवहारकाल परिमानो
यौं अजीव अब आस्रव सुनिये, मनवच काय त्रियोगा
मिथ्या अविरत अरु कषायपरमादसहित उपयोगा ॥८
जे ही आतमके दुखकारन, तातैं इनको तजिये । जीवप्रदे

बँधे विधिसों सो बंधन कबहुं न सजिये ॥ शमदमसों जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये । तपबलतैं विधि-झरत निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥९॥ सकल कर-मतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी। इहविधि जो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित व्योहारी ॥ देव जि-नेन्द्रगुरूपरिग्रह विन, धर्म दयाजुत सारो । यहू मान समकितको कारन, अष्ट अङ्गजुत धारो ॥ १० ॥ वसुमद टारि निवारि त्रिशठता षट अनायतन त्यागो । शंका-दिक वसुदोष बिना, संवेगादिक चित पागो । अष्ट अंग अरुदोष पचीसों, अब संक्षेपहु कहिये विन जानेतैं दोष गुननको, कैसे तजिये गहिये ॥ ११ ॥ जिनवचमैं शंका न धारि वृष, भवसुखवांछा भाने। मुनितन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्व पिछानै । जिनगुन अर पर औगुन ढाकै, वा जिनधर्म बढावै । कामादिककर वृषतैं चिगते, निजपरको सु दृढावै ॥ धर्मीसों गउबच्छप्रीति-सम, कर जिनधर्म दिपावै । इन गुनतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै॥ पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय तो न मद ठानै । मद न रूपको मद न ज्ञानको धन बलको मद भानै ॥ १३ ॥ तपको मद न मद जु प्रभुताको, करै न सो निज जानै । मद धारै तो येहि दोष वसु, समकितको मल ठानै ॥ कुगुरुकुदेवकुवृषसेव-नकी नहिं प्रशंस उचरै है । जिनमुनि जिनश्रुत विन

कुगुरादिक तिन्हैं न नमन करै है ॥१४॥ दोपरहित गुन-सहित सुधी जे, सम्यकदरश सजे हैं। चरितमोहवश लेश न संजम पै सुरनाथ जजे हैं॥ गेहीपै गृहमें न रचै ज्यों, जलमें भिन्न कमल है। नगरनारिको प्यार यथा, कादेमें हेम अमल है॥ प्रथम नरक विन पटभू ज्योतिष, वान भवन पँड नारी। थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत समकितधारी॥ तीनलोक तिहुं कालमाहिं नहिं, दर्शनसम सुखकारी। सकल धरमको मूल यही इस, विन करनी दुखकारी॥ १६॥ मोक्षमहलकी परथम सीढी, या विन ज्ञान चरित्रा। संम्यकता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा। 'दौल' समझ सुन चेत सयानो, काल वृथा मत खोवै। यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै॥ १७॥

चौथी ढाल।

दोहा—सम्यक श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यकज्ञान।
स्वपर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान॥१॥

रोला छंद—सम्यकसाथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधो, लक्षण श्रद्धा जान, दुहूमें भेद अबाधो॥ सम्यककारण जान, ज्ञान कारज है सोई। युगपद होतैं हू, प्रकाश दीप-कतैं होई॥ १॥ तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछ तिन-मांहीं। मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं॥ अवधिज्ञानमनपर्जय, दो हैं देशप्रतच्छा। द्रव्यक्षेत्रपरि-

मान लिये जानैं जिय स्वच्छा ॥ सकल द्रव्यके गुन अनंत, परजाय अनंता । जानैं एकै काल, प्रगट केवलि-भगवंता ॥ ज्ञान समान न आन, जगतमें सुखको कारन । इह परमामृत जन्म, जरामृतरोग, निवारन ॥ कोटि जनम तप तपैं, ज्ञान विन कर्म झरैं जे । ज्ञानीके छिनमाहिं गुप्तितैं सहस टरैं ते ॥ मुनिव्रत धार अनंत बार, ग्रीवक उपजायो । पै निजआतमज्ञान विना सुख लेश न पायो ॥ ५ ॥ तातैं जिनवरकथित, तत्त्व अभ्यास करीजै । संशय विभ्रम मोह, त्याग आपो लखि लीजै ॥ यह मानुषपरजाय, सुकुल सुनिबो जिनवानी । इहिविधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधिसमानी ॥ ६ ॥ धन समाज गज बाज राज, तो काज न आवै । ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावै ॥तास ज्ञानको कारन, स्वपरविवेक बखान्यो । कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आन्यो ॥ ७ ॥ जे पूरव शिव गये, जांय अब आगैं जै हैं । सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं ॥ विषयचाह-दव-दाह, जगतजन अरनि दझावै । तासु उपाय न आन ज्ञानघनघान बुझावै ॥ ८ ॥ पुण्यपाप-फल मांहिं-हरख विलखौ मत भाई । यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसैं थिर थाई ॥ लाख बातकी बात, यहै निश्चय उर लावो ॥ तोरि सकल जगदंदफंद, निज आतम ध्यावो ॥ ९ ॥ सम्यक्ज्ञानी होय, बहुरि दृढ चारित्त

लीजै। एकदेश अरु सकलदेश, तस भेद कहीजै ॥ त्रस-हिंसाको त्याग, वृथा थावर न सँघारै। परवधकार कठोर निंद्य नहिं वचन उचारै ॥१०॥ जल मृतका विन और नाहिं कछु गहै अदत्ता। निज वनिताविन सकल नारिसौं रहै विरत्ता॥ अपनी शक्ति विचार परिग्रह थोरो राखै। दश दिश गमनप्रमान, ठान तसु सीम न नाखै ॥११॥ ताहूमें फिर ग्राम गली गृह बाग बजारा। गमनागमन प्रमान ठान अन सकल निवारा ॥ काहूके धनहानि किसी जय हार न चिंतै। देय न सो उपदेश, होय अघ वनिज कृषीतैं ॥ कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै ॥ असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जल लाधै ॥ राग-रौषकरतारकथा, कबहूँ न सुनीजै। और हु अनरथदंड, हेतुअघ तिन्हैं न कीजै ॥ १३ ॥ धर उर समताभाव सदा, समायिक करिये। पर्वचतुष्टयमांहिं पाप तजि प्रोषध धरिये ॥ भोग और उपभोग नियमकरि ममतु निवारै। मुनिको भोजन देय फेर, निज करहि अहारै ॥ १४ ॥ बारहव्रतके अतीचार, पन पन न लगावै। मरनसमय सन्यास धारि, तसु दोष नशावै ॥ यौं श्रावक-व्रत पाल स्वर्ग, सोलम उपजावै। तहतैं चय नरजन्म पा मुनि ह्वै शिव जावै ॥ १५ ॥

पंचम ढाल।

सखीछंद—मुनि सकलवृती बड़भागी। भवभोग-

नतैं वैरागी ॥ वैराग्य उपावन माई। चिंतो अनुप्रेक्षा भाई ॥ १ ॥ इन चिंतत समरस जागै। जिमि ज्वलन पवनके लागै ॥ जबही जि यआतम जानै। तबही जिय शिवसुख ठानै ॥ २ ॥ जोवन गृह गोधन नारी ॥ हय गय जय अज्ञाकारी ॥ इंद्रिय भोगन छिन थाई। सुरधनु चपला चपलाई ॥ ३ ॥ सुर असुर खगाधिप जेते। मृग ज्यों हरि काल दले ते ॥ मणि मंत्र तंत्र बहु होई। मरते न बचावै कोई ॥ ४ ॥ चहुंगतिदुख जीव भरे हैं। परिबर्तन पंच करै हैं ॥ सबविधि संसार असारा। यामें सुख नाहिं लगारा ॥ ५ ॥ शुभ अशुभ करमफल जेते। भोगै जिय एकहि तेते ॥ सुत दारा होय न सीरी। सब स्वारथके हैं भीरी ॥ ६ ॥ जलपय ज्यों जियतन मेला। पै भिन्न भिन्न नहिं भेला ॥ तो प्रगट जुदे धन धामा। क्यों ह्वै इन मिलि सुत रामा ॥ ७ ॥ पल-रुधिर राध-मल थैली। कीकस वसादितैं मैली ॥ नव द्वार बहैं घिनकारी। अस देह करै किम यारी ॥ ८ ॥ भो जगनकी चपलाई। तातैं ह्वै आस्रव भाई ॥ आस्रव दुखकार घनेरे। बुधिवंत तिन्हैं निरवेरे ॥ जिन पुण्यपाप नहिं कीना। आतम अनुभव चित दीना ॥ तिन ही विधि आवत रोके। संवरलहि सुख अवलोके ॥ १० ॥ निज काल पाय विधि झरना। तासौं निजकाज न सरना ॥ तप करि जो कर्म खपावै। सोई शिवसुख दरसावै ॥ ११ ॥ किनहू न

]

करथो न धरै को। पटद्रव्यमयी न हरै को॥ सो लोक-माहिं विन समता। दुख सहै जीव नित भ्रमता॥ १२॥ अंतिम ग्रीवकलौंकी हद। पायो अनंतविरियां पद॥ पर सम्यकज्ञान न लाध्यो। दुर्लभ निजमें मनि साध्यो॥ १३॥ जे भाव मोहतैं न्यारे। दृग ज्ञान व्रतादिक सारे॥ सो धर्म जवै जिय धारै। अवही सुख सकल निहारै॥ १४॥ सो धर्म मुनिनकरि धरिये। तिनकी कर-तृति उचरिये॥ ताको सुनिकै भवि प्रानी। अपनी अनु-भूति पिछानी॥ १५॥

छठा ढाल।

हरिगीता छन्द—पटकाय जीवन हननतैं सवविधि दरवहिंसाटरी। रागादि भाव निवारतैं हिंसा न भावित अवतरी॥ जिनके न लेश मृपा न जल तृन हू विना दीयोगहैं। अठदशसहस विधि शीलधर चिद्ब्रह्ममें नित रस गहैं॥ १॥ अंतर चतुर्दश भेद वाहिर संग दशधातैं टलैं। परमाद तजि चउकर मही लखि समिति ईर्यातैं चलैं॥ जग सुहित कर सव अहितहर श्रुतिसुखद सव संशय हरैं। भ्रमरोग-हर जिनके वचन मुखचंद्रतैं अमृत झरैं॥२॥ छयालीस दोष विना सुकुल श्रावक-तणे घर अशनको। लें तप वढ़ावन हेत नहिं तन पोषते तजि रसनको। शुचि ज्ञान संजम उपकरन लखिकें धरैं। निर्जंतु थान विलोकि तन-मलमूत्र-श्लेषम परिहरैं

॥३॥ सम्यक् प्रकार निरोधि मन-वच-काय आतम ध्यावते। तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगन उपल खाज खुजावते॥ रसरूपगंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने। तिनमें न राग विरोध पचेंद्रियजयन पद पावने ॥ ४ ॥ समता सम्हारैं थुति उचारैं वंदना जिनदेवको। नितकरैं श्रुतरति धरैं प्रतिक्रम तजैं तन अहमेवको ॥ जिनके न न्हौन न दंतधोवन लेश अम्बर आवरन। भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु शयन एकाशन करन ॥५॥ इक बार दिनमें लें अहार खड़े अलप निज पानमें। कचलोंच करत न डरत परिषहसों लगे निज ध्यानमें॥ अरिमित्र महल मसान कंचन काच निंदन थुति करन। अर्घावतारन असिप्रहारनमें सदा समताधरन॥ तप तपैं द्वादश धरें वृष दश रतनत्रय सेवें सदा। मुनिसाथमें वा एक विचरैं चहें नहिं भवसुख कदा॥ यों है सकल संजम चरित सुनिये स्वरूपाचरन अब। जिस होत प्रगटै आपनी निधि मिटै परकी प्रवृत्ति सब ॥७॥ जिन परम पैनी सुबुधि छैनी डारि अंतर भेदिया। वरनादि अरु रागादितैं निज भावको न्यारा किया॥ निजमाहिं निजके हेतु निजकर आपको आपै गयो। गुनगुनी ज्ञाता ज्ञानज्ञेय मझार कछु भेद न रह्यो ॥८॥ जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प वचभेद न जहां। चिद्भाव कर्म [?] देश करता चेतना किरिया तहां॥ तीनों अभिन्न अर्द-

शुध उपयोगकी निश्चल दशा। प्रकटी जहां दृग ज्ञान व्रत ये तीनधा एकै लशा ॥९॥ परमान नय निक्षेपको न उदोत अनुभवमें दिखै। दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा नहिं आन भाव जु मोविखै॥ मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अरु तसु फलनितैं। चितपिंड चंड अखंड सुगुन,-करंडच्युत पुनि कलनितैं ॥१०॥ यों चिंत्य निजमें थिर भये तिन अकथ जो आनन्द लह्यो। सो इन्द्र नाग नरेन्द्र व अहमिन्द्रकै नाहीं कह्यो॥ तब ही शुकलध्यानाग्निकर चउघाति विधिकाननदह्यो। सब लख्यो केवलज्ञानकरि भविलोकको शिवमग कह्यो॥११॥ पुनि घातिशेष अघाति विधि छिनमाहिं अष्टमभू वसैं। वसुकर्म विनशै सुगुन वसु सम्यक्त्व आदिक सब लसै॥ संसार खार अपार पारावार तिर तीरहिं गये। अविकार अकल अरूप शुध चिद्रूप अविनाशी भये॥ १२ ॥ निजमांहि लोक अलोक गुन परजाय प्रतिबिम्बित थये। रहि हैं अनन्तानंतकाल यथा तथा शिव परनये॥ धनि धन्य हैं जे जीव नरभव पाय यह कारज किया। तिनही अनादी भ्रमन पंचप्रकार तजि वर सुखलिया ॥१३॥ मुख्योपचार दुभेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं। अरु धरैंगे ते शिव लहैं तिन सुजस जल जगमल हरैं॥ इमि जानि आलस हानि साहस ठानि यह सिख आदरो। जबलों न रोग जरा गहै तबलों जगत निज हितकरो ॥१४॥ यह राग आग

दहै सदा तातैं समामृत सेइये । चिर भजे विषय कषाय अब तौ त्याग निजपद वेइये ॥ कहा रच्यो परपदमें न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै । अब दौल, होउ सुखी स्वपद रचि दाव मत चूको यहै ॥ १५ ॥

दोहा—इक नव वसु इक वर्षकी, तीज शुकल वैशाख ।
कह्यो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजनकी भाख॥१६॥
लघुधी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थकी भूल ।
सुधी सुधार पढो सदा, जो पावो भवकूल ॥ १७॥

इति छहढाला समाप्त ।

नवमां अध्याय ।

१६४—आलोचना पाठ ।

वन्दौं पांचों परम गुरु, चौबीसौ जिनराज ।
कहूँ शुद्ध आलोचना, शुद्ध करनके काज ॥ १ ॥

सुनिये जिन अरज हमारी । हम दोष कियो अति भारी ॥ तिनकी अब निर्वृति काजा । तुम शरण लही जिनराजा ॥ २ ॥ इक वे ते चउ इन्द्री वा । मन रहित सहित जे जीवा ॥ तिनकी नहिं करुणा धारी । निरदई है घात विचारी ॥ ३ ॥ समरम्भ समारम्भ आरम्भ। मदवचतन कीने प्रारम्भ । कृत कारित मोदन करिकैं । क्रोधादि चतुष्टय धरिकें ॥ ४ ॥ शत आठ जु इम भेद-

नतैं । अघ कीने परछेदन तैं ॥ तिनकी कहुं कोलौं कहानी। तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥ विपरीत एकांत विनयके। संशय अज्ञान कुनयके ॥ वश होय घोर अघ कीने । वचतैं नहिं जात कहीने ॥ ६ ॥ कुगुरुनको सेवा कीनी। केवल अदया करि भीनी ॥ या विध मिथ्यात भ्रमायो। चहुं गति मधि दोष उपायो ॥ ७ ॥ हिंसा पुनि झूठ जु चोरी । परवनितासों दृग जोरी ॥ आरम्भ परिग्रह भीनो। पनपाप जु या विधि कीनो ॥ ८ ॥ सपरस रसना घ्राननको । चखु कान विषय सेवनको ॥ बहुकरम कियो मन माने कछु न्याय अन्याय न जाने ॥ ९ ॥ फल पंच उदंबर खाये । मधु मांस मद्य चित चाहे ॥ नहिं अष्ट मूल गुणाधरी । सेये कुविसन दुखकारी ॥ १० ॥ दुइ वीस अभख जिन गाये । सो भी निशिदिन भुञ्जाये। कछु भेदा भेद न पायो । ज्यों त्यों करि उदर भरायो ॥११॥ अनन्तानु जु बन्धी जानो । प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ॥ संज्वलन चौकरी गुनिये । सब भेद जु षोड़श मुनिये ॥ १२ ॥ परिहास अरति रति शोग । भय ग्लानि त्रिवेदसंयोग ॥ पनवीस जु भेद भये इम । इनके वश पाप कियो हम ॥ १३ ॥ निद्रावश शयन कराई । सुपनेमधिदोष लगाई ॥ फिर जागि विषयवन धायो । नाना विधि विष फल खायो ॥ १४ ॥ किये अहार निहार विहारा । इनमें नहीं जतन बिचारा ॥ विन देखी धरी

उठाई। बिन शोधी भोजन खाई ॥१५॥ तबही परमाद सतायो। बहुविधि विकलप उपजायो ॥ कछु सुधिबुधि नाहिं रही है। मिथ्या मति छाय गई है ॥ १६ ॥ मरजादा तुम ढिग लीनी। ताहूमें दोषजु कीनी ॥ भिन्न भिन्न अब कैसैं कहिये। तुम ज्ञान विषैं सब पइये ॥१७॥ हा! हा! मैं दुष्ट अपराधी। त्रस जीवन राशि विराधी॥ थावरकी जतन न कीनी। उरमें करुणा नहिं लीनी॥१८॥ पृथ्वी बहु खोद कराई। महिलादिक जागां चिनाई। पुनि विन गाल्यो जल ढोल्यौ। पंखाते पवन विलोल्यो ॥ १९ ॥ हा! हा! मैं अदयाचारी। बहु हरितकाय जु विदारी। या मधि जीवनके खंदा। हम खाये धरि आनन्दा ॥ २० ॥ हा! हा! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई। तामधि जे जीव जु आये। तेहू परलोक सिधाये ॥ २१ ॥ वींध्यो अन राति पिसायो। ईंधन बिन सोधि जलायो ॥ झाडू ले जागां बुहारी। चींटी आदिक जीव विदारी॥ २२ ॥ जल छानि जीवानी कीनी। सोही भू डारि जु दीनी ॥ नहिं जल थानक पहुंचाई। किरिया विन पाप उपाई ॥ २३ ॥ जलमल मोरिन गिरवायो। कृमि कुल बहु घात करायो ॥ नदियन बिच चीर धुवाये। कोसनके जीव मराये ॥ २४ ॥ अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई ॥ तिनका नहिं जतन कराया। गलियारे धूप डराया ॥ २५ ॥ पुनि द्रव्य

कमावन काज । बहु आरम्भ हिंसा साज ॥ कीये अघ तिसना वश भारी । करुणा नहिं रंच विचारी ॥ २६ ॥ ताको जु उदय अब आयो । नाना विधि मोहि सतायो ॥ फल भुंजत जिय दुःख पावै । वचतैं कैसे करि गावै ॥ २७ ॥ तुम जानत केवल ज्ञानी । दुख दूर करो शिव-थानी ॥ हम तो तुम शरण लही है । जिन तारन विरद सही है ॥ २८ ॥ जो गांवपती इक होवै । सो भी दुखिया दुख खोवै ॥ तुम तीन भुवनके स्वामी । दुख मेटो अन्त-रजामी ॥ २९ ॥ द्रोपदिको चीर वढायो । सीताप्रति कमल रचायो ॥ अंजनसे किये आकामी । दुख मेटो अंतरजामी ॥ ३० ॥ मेरे अवगुन न चितारो । प्रभु अपनो विरद निहारो ॥ सब दोष रहित करो स्वामी । दुख मेटहु अंतरजामी ॥ ३१ ॥ इन्द्रादिक पदवी न चाहूँ । विषयनिमें नाहिं लुभाऊं । रागादिक दोष हरीजे परमातम निजपद दीजे ॥ ३२ ॥

दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय ।
सब जीवनके सुख बढ़ै, आनन्द मंगल होय ॥
अनुभवमाणिक पारखी, जौहरी आप जिनन्द ।
येही वर मोहि दिजिये, चरण शरण आनन्द ॥

इति आलोचना पाठ समाप्त ।

उपयोगी शिक्षायें।

१६५—इस चंचल जीवनमें अनेक प्रकारके रंज, दुःख और कष्टोंका सामना मनुष्य को करना पड़ता है सिर्फ उपकारही ऐसी चीज है जो उसे इन कष्टोंसे छुड़ाकर सच्चा आनन्द दे सकता है।

१६६—मनुष्य सोचते हैं कि आज, कल, परसों अथवा सप्ताह व महीनोंमें या साल दो सालमें इच्छित धन पैदा करके आराम लेंगे परन्तु वे इतना नहीं सोचते कि हमारी उम्र प्रति क्षण और प्रतिपल, मुट्ठीमें बन्द उस पानीके समान जो एक एक बूंदसे टपक टपक कर खाली होता जाता है, कम होती जा रही है।

१६७—जिस शुभ कामको तुम कल करना चाहते हो उसे आज ही कर डालो।

१६८—इस संसारकी विवेचनाको ध्यानसे देखो, जिस चीजको जिस रूपमें आज हम अपनी करके मानते हैं एक ही दिनमें उसके रूप रंगमें कितना परिवर्तन हो जाता है।

१६९—जागो! यह सोनेका वक्त नहीं है, याद रक्खो तुम्हारे सबसे प्रबल शत्रु बीमारी, बुढ़ापा और मौत तुम्हारा पीछा कर रहे हैं।

१७०—संसार एक चरखीके समान है जिसे चांद

और सूर्य दो डंडे घुमाते हैं, दिन रात दो चर्स दुनियां दारीके कूए'से जिन्दगीका पानी खींच कर उसे खाली करते हैं।

१७१—दुनियांमें कोई मन्त्र, कोई जादू, और दवा ऐसी नहीं जो मृत्युके काटे हुए को बचा सके।

१७२—यह शरीर संसार रूपी तालावमें कमलके समान हैं जिसमेंसे काल (समय) रूपी भौंरा प्रति क्षण (जिन्दगीका) रस चूस चूस कर ले जाता है।

१७३—मृत्यु, छायाके समान हर समय आदमीके पीछे लगी रहती है और शत्रुके समान उसका पीछा करती है। इसलिये हर समय अच्छे कार्य करते रहो जिससे तुम्हें आराम मिले।

१७४—आत्माको अनेक प्रकारके दुःख और कष्ट पूर्व जन्ममें किए गए कर्मोंके बदलेमें सहन करने पड़ते हैं।

१७५—मां, बाप, भाई, पुत्र और स्त्री केवल श्मशान भूमितक मनुष्यके साथ जाकर लौट आते हैं। अखीर तक कोई भी साथी नहीं होता।

१७६—तुम्हारे बाल बच्चे, इष्ट मित्र और दूसरे सम्बन्धी तथा कमाया हुआ धन यहीं रह जायगा, तुम्हारे साथ तुम्हारे किए हुए कर्म जायंगे।

१७७—आत्मा कर्मोंके बन्धनमें फंसकर दुनियांके

पिंजड़ेमें कैद है। जब इससे मुक्ति पाता है तो सीधा अमर लोकमें जाकर वहां भी सुखानुभव करता है।

१७८—घर कुटुम्बियोंका स्नेह और मित्रोंका प्रेम सम्बन्ध, यह कमलके पत्तोंपर की बूंदके समान है। जरासे झोकेमें ढल जायगा।

१७९—तुम्हारी वह शारीरिक शक्ति, रूप सुन्दरता (बृद्धावस्थामें) कहां गई? तुम्हारे देखते २ विलुप्त हो गईं।

१८०—अपने कर्मों के फल भोगनेके लिये ही आत्मा अशुद्ध, अंधेरे और यातनाके कारागार, गर्भमें पड़ता है।

१८१—आत्मा, बीमारी और मृत्युके कष्टोंको सहन करती हुई नए २ जन्मोंमें जाकर पड़ती है। पर इन दुःखोंसे छुटकारा नहीं होता।

१८२—इस दुनियांमें आकर आत्माके विचित्र २ परिवर्तन होते हैं। कभी वेटा बाप होता है। कभी मां बीबी और बीबी मां बन जाती है।

१८३—दुनियाँ में जिस कदर दिल बहलानेकी चीजें और मजें हैं वे तुम्हारी मुसीबतोंके कारण हैं तिस पर पर भी तुम खुद उन दुःखों से छूटने का प्रयत्न नहीं करते।

१८४—संसार में रहो पर उसका हो करन रहो प्रथक रहना, बस इसी सिद्धान्त पर चलने से मुक्ति हो सकती है।

१८५—तुम्हें दुनियां में कोई हानि व लाभ नहीं पहुं-

चाता। जैसा बीज बोते हो वैसा ही फल तुम्हें मिलता है।

१८६—संसार में कोई जाति, कोई योनि ऐसी नहीं जिसमें आत्मा ने जन्म न लिया हो।

१८७—शरीर अनित्य और मिटने वाला है, आत्मा अमर है। केवल कर्म बन्धन के कारण इसमें फंसा है,

१८८—जब अपने और लपने मित्रों के बीच के सम्बन्ध को समझने में असमर्थ हो और उनके अलग होने पर तुम यह जान नहीं सकते कि उसका उद्देश्य क्या है तो फिर उनके साथ तुम्हारा दृढ़ और स्थायी संबन्ध कैसे हो सकता है।

१८९—दुनियाँकी चीजें आकाशके धनुषके समान हैं। शरीर पानीके बबूलेके समान है शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं। यह हम अपनी आंखोंसे देखते हैं पर हमपर असर कुछ भी नहीं होता।

१९०—मनुष्य अपने चरित्र की पवित्रता और नि की शुद्धताका अभ्यास उसी समय तक कर सकत जबतक कि उसके होस हवास ठीक रहते हैं इसलिये वृद्धावस्था बीमारी और मृत्युके पूर्व ही जो कुछ तुम करना चाहते हो उसे कर डालो।

१९१—इन्द्रिय निग्रहको वृद्धावस्था तक मुलतवी कर रखना ऐसा ही है जैसे मकानमें आग लगा कर कुएं

छोटी सी छोकरीको व्याह लिये जाय शेम ! शेम । शेम ।

१९२—तुम्हारा धन और लक्ष्मी चंचल हैं। इन्द्रिय जनित सुख इन्द्र धनुषके रंगके समान थोड़ी देर तक स्थिर रहने वाले हैं तुम्हारी सुन्दरता और रंग रूप विजलीके समान शीघ्र ही दृष्टिसे ओझल हो जाने वाले हैं।

१९३—कर्मोंके बन्धनमें पड़ी हुई तुम्हारी आत्मा ने अनेक दुःख सहे हैं अगर इस कर्म शृङ्खलासे मुक्त होनेका प्रयत्न न करोगे तो मुसीवतोंके शिकार बनोगे।

१९४—मौत तुम्हारे पीछे उसी तरह लगी हुई है जिस तरह दिनके पीछे शाम और रातके पीछे सुबह।

१९५—केवल अपनी ना समझीसे तुम संसारके लोगों को लाभ नहीं पहुंचाओगे, तो स्वयं तुम शत्रु बनोगे।

१९६—वह आदमी जो मृत्यु को अपना मित्र समझता है या उसमें इतनी शक्ति है कि वह उसको अपने पास न आनेदे, किसी भले कामको जिसके करने का उसका इरादा है चाहे जितने समय तक मुल्तवी रख सकता है। क्या तुममें इन दोनोंमेंसे कोई बात है ?

१९७—संसारके धन माल और दूसरी चीजोंको छोड़ कर आत्मा शरीरसे ऐसे प्रथक हो जाता है जिस तरह फूल, पेड़से टूट कर उससे अलग हो जाते हैं। फिर क्यों ऐसी चीजोंसे अपना सम्बन्ध रखते हो ?

१९८—मौत आदमीको उसी प्रकार उठाले जाती है जिस प्रकार सिंह, हिरनोंके गोलसे किसी हिरनको।

१९९—आत्मा शरीरसे उसी प्रकार पृथक् हो जाती है जिस प्रकार पुष्प सुगन्धिसे खाली, शत्रु मित्र और एक सम्बन्धी भी स्मशान घाटोंमें छोड़कर ही जाते हैं।

२००—देव व देवी, मनुष्य व पशु, अमीर व गरीब, विद्वान व मूर्ख इनके शरीर (जेलखाना कारागार) भिन्न भिन्न हैं। इन्हीं शरीरोंमें जन्म लेकर तुमने अनेकों कष्ट और दुःख भोगे हैं, इसलिए अब इनसे छुटकारा हो वह काम करो।

२०१—कर्म बंधनके फल स्वरूप तुमने अनेकों बार नरक योनिमें जन्म लेकर अनेकों यातनायें सहीं। तुम्हारी प्यासको बुझानेके लिए समुद्र और भूखको मिटानेके लिए दुनियां भरकी चीजें बनाई गई पर उनमेंसे तुम्हें चुल्लूभर पानी और एक कौर खानेको न मिला।

२०२—इस शरीरसे तुम्हारी आत्मा बिजलीके समान एक क्षणमें निकल जायगी और फिर तुम ऐसे अन्धकारमें फेंक दिए जाओगे कि जहां न कुछ देख सकोगे और न कुछ कह सकोगे।

२०३—तुम्हारी स्थिति संसारमें पत्ते परके ओस बिंदुके समान है। अतः आलस छोड़ो और कर्तव्य पहिचानो!

२०४—भलाईसे परे हो कर और झूठके फेरमें पड़ कर तुमने सचाई को उसी तरह खो दिया जिस तरह अन्धा अपनी नेत्र शक्तिको खो बैठता है।

२०५—अन्तःकरण की शुद्धता और सचाई की नाव तुमको इस अथाह संसारसे पार कर सकती है जिसके पार होनेपर तुमको जीवन मुक्तका आनन्द प्राप्त होगा।

२०६—खेद ! मैं कैसा मंदभाग्य हूँ, अपनी कमाईसे न तो मैंने निर्धन और बेवसों की ही सहायता की और न शान्तिके साथ अपनी जिन्दगी ही व्यतीत की और न परमात्माके ध्यानमें ही मग्न हुआ। तमाम उम्र यों ही बरबाद हो गई।

२०७—मेरा शरीर रोष की आगसे जल भुन गया। लालचके गुब्बारेसे उस पर मुर्दनी छा गई। अहंकार की तेगसे यह टुकड़े टुकड़े हो गया।

२०८—अए, परमात्मन्, मैंने मनुष्य जातिके साथ कोई भलाई नहीं की, मेरी विद्वता केवल वाद विवाद और व्यर्थके झगड़ोंमें नष्ट हुई।

२०९—मैंने अपनी जवान को झूठ बोलकर अपवित्र किया परछिन्द्रान्वेषण। दूसरोंमें दोष निकालनेको मैंने अपना गुण समझा और असली गुणोंसे दूर रह कर अपने चित्तको कलुषित किया।

२१०—मेरा शरीर तो वृद्धावस्थामें कमजोर हो गया लेकिन इच्छाएें और भी प्रबल हुई हैं।

२११—खेद है! विद्याके प्रकाशमें भी मैंने कुछ नहीं किया तमाम जीवन निराशामें व्यतीत कर दिया।

२१२—न्याय बड़ों का सत्कार, पवित्रता, चातुर्य निःस्वार्थ मित्रभाव, शुभचिन्तन, निर्लोप, निर्लोभ, अतिथ्यप्रेम और दयालुता ये भले आदमियोंकेलक्षण हैं॥

२१३—दानी, शुद्ध चरित्र, दूरदर्शी, मितव्ययी, दिलेर व संयमी, शूर,सलज्ज, और शुद्ध अन्तःकरण वाला ये सब कुलीन मनुष्योंके लक्षण हैं।

२१४—मेंढकजो उछल कर कीड़ोंको खाता फिरता है। उसे पता नहीं कि अजगर मुँह फैलाये खानेको बैठा है।

२१५—आलस्य व निद्रा, घृणा, और द्वेष फूट, व वैर, क्रोध और अधर्म, छल व कपट, अभिमान और अहमन्यता, तथा वेहोशी और गफलत ये चीजें हैं जो तुमको नेकनियती व भलाईके मार्गसे दूर कर रही हैं।

२१६—खुशामदी और स्वार्थी लोगोंकी चपलूसीमें फँस कर तुम अपने हाथसे भी वहुत कुछ गंवा दोगे। किसीके बुरा भला कहने और धमकी सुननेसे कमजोर दिल होकर कभी अपने पथसे विचलित न हो।

२१७—सच्चाईके साथ थोड़ा उपकार करना भी बहुत पर ईर्षा और स्वार्थप्रेरणासे भारी उपकार कामका नहीं।

२१८—भला काम चाहे थोड़ा ही क्यों न हो वह भी हीरेके समान प्रकाशमान होता है।

२१९—अपनी सफलताके भेदको हर किसी अयोग्य आदमीके सन्मुख प्रगट न करना चाहिये क्योंकि जिस

बीजसे पेड़का अंकुर निकलता है अगर उसको पृथ्वीसे बाहर निकाल कर रख दिया जाय तो उससे हरा भरा पेड़ नहीं हो सकता।

२२०—सचाई, दृढ़ता, शिष्टाचार, परिश्रम और संतोष इनके द्वारा मनुष्य इस जीवनमें भी सुख पाता है और भविष्य जीवनमें तकदीरका सिकन्दर होता है।

२२१—जो मनुष्य आलस्यके कारण भलाईके स्वर्ग समयको हाथसे चलाजाने देता है वह उस मूर्खके समान है जो जल-श्रोतकेपास रहकर भी प्यासको नहीं बुझाता।

२२२—जो यह नहीं पहिचानता कि भलाई क्या चीज है, वह सच्चा नहीं है। वह यह भी नहीं जानता कि संसारमें दूसरोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। वह केवल अपने पेट भरनेको संसारमें पैदा हुआ है।

२२३—कालदेव हर दम मुंह खोले हुए तुम्हें निगल जानेकी ताकमें है, इसलिये चैतन्य होकर तुम अपने कर्तव्यको पालन करो।

२२४—अगर तुम योग और तपस्या करनेमें असमर्थ हो तो कर्म वन्धनसे छुटकारा पानेके लिए यही सरल मार्ग है कि अपने हृदयमें बुरीभावनायें मत पैदा होने दो।

२२५—चित्तकी यह प्रवृत्ति है कि जिन २ वस्तुओंसे हमारा सम्बन्ध रहता है वैसी ही ओर उनके सम्बन्ध की बात उसमें पैदा होती रहती हैं अर्थात् कांचके उस

]

गिलासके सदृश है जिसमें जिस प्रकारके फूल रक्खो वैसे ही रंग उसके द्वारा दिखलाई देंगे।

२२६—बस इसीलिये कहते हैं कि तुम ऐसी चीजोंसे अपना सम्बन्ध पैदा मत करो जिनके सँसर्गसे तुममें बुरे विचार पैदा हों। बल्कि भगवतके ध्यान और कर्तव्य पालनके द्वारा अपने उद्देश्यको सफल बनाओ।

२२७—इनको छोड़ो।

(१) बुरी बातोंके सुननेको, (२) बुरी चीजोंके देखनेको (३) अस्वास्थ्य कर वस्तुओंके खानेको (४) दुर्गन्धिमें रहनेको, (५) अशुद्ध वस्तुओंके स्पर्श करनेको।

२२८—इनसे बचो।

(१) किसी जीवको कष्ट पहुंचानेसे, (२) असत्य भाषण से, (३) परनिन्दासे (४) बुरे संगसे और (५) लालचसे।

२२९—काबूमें करो।

(१) अपने दिलको, (२) अपनी जबानको (३) अपने शरीरको, ताकि तुम उससे कोई अनुचित कार्य न ले सको।

२३०—स्वतन्त्रता प्राप्त करो।

(१) क्रोधसे, (२) घमंडसे, (३) धोखेबाजीसे (४) लोभसे।

२३१—दूर रहो।

(१) आलस्यसे, (२) स्वार्थसे, (३) दूसरोंको कष्ट पहुंचानेसे, (४) अपने धोखा देनेसे और (५) ईर्षासे।

२३२—दिलमें स्थान न दो।

(१) बेहद खुशीको,(२) संसारके सुखको, (३) अधिक परिश्रमको,(४) डरको (५) रंज और खेदको (६) घृणाको।

२३३—दिल जवान और शरीरको वशमें करनेका अर्थ यह नहीं है कि कोई विचार तुम्हारे दिलमें पैदा न हों।

२३४—यदि दूसरी चीजोंका तुम उपयोग ही न कर सको। बल्कि उसका मतलब यह है कि तुम सोचो, कार्य करो और संसारकी वस्तुओंका भोग करो पर वे ख्यालात नेक हों, कार्य शुभ हों, और उपभोगकी वस्तुओंमें आशक्ति न हो।

२३५—पंच इन्द्रियोंके भोगोंसे छुटकारा पानेका अर्थ भी यह नहीं है कि तुम श्रवण, दर्शन खान पान घ्राण और स्पर्श करनेकी शक्ति हीको नष्ट कर दो जिससे तुम्हारा शरीर ही वेकार हो जाय, बल्कि इसका अर्थ यह है कि तुम इन्द्रियोंके स्वादमें मत फँसो तुम इच्छानुसार उपयोग करते हुए उनसे कामले सको।

२३६—अगर तम संसारकी चीजोंमें इतनी आशक्ति न करो और उन्हें नाशवान समझ कर उनके प्राप्त होने और वियोग होनेकी खुशी और रंजको महसूस न करो। तो निश्चय तुम अपने उद्देश्यमें सफल हो सकते हो।

२३७—अनेकों बार जन्म और मृत्यु पाकर हमको

यह मनुष्य शरीर मिला है भलाई और अच्छे कामोंके करनेमें मौका न चूको।

२३८—हमारी आत्मा दुनियादारीके चक्करमें भ्रमण करती हुई पर्वत, जंगलों, समुद्र स्वर्ग नरक आदि जगहोंमें अनेकों बार भटकती फिरी है।

२३९—हम कभी बादशाह कभी फकीर, कभी विद्वान कभी मूर्ख, कभी स्वामी कभी नौकर और कभी योग्य कभी अयोग्य। हमने सभी प्रकारके भेष बदले हैं।

२४०—संसार मात्रामें इसप्रकार भ्रमण करते हुए हमने शारीरिक मानसिक बहुतसे अनुभव प्राप्त किये हैं।

२४१—संसारकी चीजोंसे सन्तुष्टि न हुई और न अपार समुद्र हमारी प्यासको वुझा सका।

२४२—हमारा इस मनुष्य शरीरमें आना मानो संसार सागरको पार कर किनारे पर लगना है।

२४३—बीमारी और मौतके नस्तर खाकर हमारी आत्माने लाखों ही बार पैदायशके दुःख झेले हैं!

२४४—सचाई और सत्य मार्गसे अनभिज्ञ रह कर हमारी आत्मा इस संसारी बेहड़ पहाड़ी और जंगली देशोंमें गरदिशके मारे हुए की तरह घूमती फिरी है।

२४५—उन लोगोंके जीवन पर खेद है जो योग्यता और अनुभव रखते हुए भी सचाई और नेक चलनी को नहीं पहिचानते।

२४६—आत्माको शरीर, जबान और दिलके कार्यों में मजा उठानेके बुरे नतीजेसे खुद ही तकलीफ उठानी है।

२४७—धनका लालच, प्रेमियोंका सम्बन्ध और यशकी इच्छा ये तुम्हारे मुक्त होनेके मार्गमें बाधक हैं।

२४८—जैसे खिला हुआ फूल हवाके झोखेसे टूट कर अलग हो जाता है उसी प्रकार तुम्हारी आत्मा शरीरसे भाग जायगी।

२४९—जीवन शरीरसे पानीकी एक एक बूंदके समान छन छन कर खाली हो रहा है, ऐश्वर्य शेखी रौब दौब तथा बड़प्पन की बातें समुद्री लहरोंके समान तथा स्त्री पुत्रोंका मोह स्वप्न जैसा हो जायगा।

२५०—संसारमें इस घने जंगलसे निकलनेका कोई मार्ग नहीं है यह नाना विधि कर्म रूपेण वृक्षों, कालिम और वेलोंसे दुर्गम हो रहा है, दिलकी डालियोंका अंधेरा छाया हुआ है, और लगातार पापोंकी वर्षा हो रही है।

२५१—तुम्हारा जीवन समुद्री नालेके समान है, तुम्हारे भाग्योंसे ही संसार तुम्हें अपनाता है, तुम्हारी सुन्दरता नाज नखरे और दिलके मजे, आकाशी तिलस्मे और दुनियांकी तमाम खुशियां स्वप्न हो जांयगी।

२५२—तुम्हारा शरीर आत्माके लिये कैदखाना है, जिसमें तुम कर्मकी जंजीरको तुम अपनी असली ताक-तको लाकर और चित्त की शुद्धतासे तोड़ सकते हो।

२५३—शरीरके सम्बन्धके कारण तुम्हारी आत्माको सैकड़ों कष्ट भोगने पड़ते हैं जिस तरह लोहे पर अग्नि के संसर्गसे हथौड़ेकी चोटें पड़ती हैं।

२५४—जिस तरह मकानके किरायेदार को मकान पर कुछ खर्च नहीं करना पड़ता उसी तरह तुम्हारा शरीर भी आत्माके लिए एक किरायेका मकान है, फिर चन्द्रोजके लिए क्यों इस पर अपना सब लुटाते हो।

२५५—तुम्हारा शरीर रोग और बीमारियोंका घर है। इसका सदुपयोग यही होगा कि इसको आवश्य-कीय खुराक देकर इनसे परमोद्देश्य की सिद्धि करो।

२५६—मद, विषय चिंतवन, इन्द्रियलोलुपता, अज्ञान और स्वार्थपरता। इन चीजोंसे मनुष्य अपने कर्तव्य को भूल कर इन हालतोंमें गिर पड़ता है।

२५७—अज्ञान, सन्देह, अविश्वास, वासना, द्वेष, कुविचार और कुकर्म इन सब चीजोंसे अत्मा अपने असली रूपको भुला देता है।

२५८—सबसे मैत्रीभाव, विद्वानों का सत्संग और दुखी जीवोंके साथ सहानुभूति रक्खो।

२५९—सबका भला चाहना यही मैत्रीभाव है।

२६०—दुखी जनो की सहायता करना दया है।

२६१—दूसरों को सुखी देख कर प्रसन्न होना प्रमोद है।

२६२—दूसरोंके सम्बन्धसे निःस्वार्थ और उदासीन रहना उपेक्षा कहलाता है।

२६३—कोई मनुष्य पाप न करे किसी को कष्ट न हो और सब जीव अपने बुरे कार्यौंके फलसे मुक्त हो जांय, इस प्रकारके विचारोंको मैत्रीभाव कहते हैं।

२६४—अनाथों की सहायता, दुखमें फँसे हुवोंकी हमदर्दी, भयभीतोंको धैर्य देना और निर्धनों की इच्छा पूर्ति करनेके उपाय सोचना; इसे कारण्य भावना कहते हैं।

२६५—जो मनुष्य निष्पाप और शुद्ध हैं या जो धार्मिक ग्रन्थोंके पण्डित हैं या जो उम्र और रिश्तेदारीमें बड़े हैं उनकी प्रतिष्ठा करना प्रमोद कहलाता है।

२६६—जो न दूसरों पर दया करते हैं और न निर्दयता जिनको न किसी की भलाईसे काम है और न बुराईसे, और जो न अपनी आत्माको कष्ट पहुंचाते हैं ऐसे विचारों को उपेक्षा या उदासवृत्ति कहते हैं।

२६७—जिनके विचार शुद्ध हैं और जिनका हृदय साफ है वे कुटुम्बके सम्बन्ध और संसार की चीजोंमें अनुरक्त होते। ऐसे ही लोग मोक्षके अधिकारी होते हैं।

२६८—जिन्हें आत्म विश्वास है और जो अपने जीवन को संयम नियम और प्रकृतिके अनुसार व्यतीत करते हैं वे ही लोग प्रशंसाके योग्य हैं।

२६९--जो जितेन्द्रिय हैं अपने दिलमें बुरे विचार और वासनायें नहीं पैदा होने देते वे जीवनमुक्त पूज्य हैं।

२७०—राजयोग का यही अर्थ है कि मनुष्य आत्मिक शिक्षा लाभ किये विना ही शारीरिक साधना और योगके परमोद्देश्य की सिद्धि प्राप्त कर सके।

दशवां अध्याय।

२७१—पंचपरमेष्ठीके नाम।

अरहंत, सिद्धि, आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु।

ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा। ओं नमः सिद्धेभ्यः॥

नोट—अ सि आ उ सा नाम पञ्च परमेष्ठीका है।
ॐ में पंच परमेष्ठीकेनाम व २४ तीर्थंकरोंकेनाम गर्भित हैं।

२७२—तीर्थंङ्करोंका निर्वाणक्षेत्र।

ऋषभदेवजीने कैलाश पर्वतपरसे, वासुपूज्यजीने चंपापुरसे, नेमिनाथजीने गिरनारसे, महावीरजीने पावा-पुरसे निर्वाण प्राप्त किया है और शेष २० तीर्थंकरोंने श्रीसम्मेद शिखरजीसे निर्वाण प्राप्त किया है।

२७३—पांच महाकल्याण।

१ गर्भकल्याण २ जन्मकल्याण ३ तप कल्याण ४ ज्ञानकल्याण ५ मोक्ष कल्याण।

२७४—आठ महाप्रतिहार्य।

१ अशोकवृक्ष २ पुष्पवृष्टि देवोंकृत ३ दिव्यध्वनि ४ चमर ५ छत्र ६ सिंहासन ७ भामण्डल ८ दुन्दुभि शब्द।

२७५—चार अनंतचतुष्टय।

अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य।

२७६—चार घातिया कर्म।

ज्ञानावर्ण, खातिभूति, मोहनीयकर्म, अंतरायकर्म।

२७७—समवशरणकी ११ भूमियां।

१ चैत्यभूमि २ खातिभूमि ३ कताभूमि ४ उपवनभूमि ५ ध्वजाभूमि ६ कल्पांगभूमि ७ गृहभूमि ८ सद्गणभूमि ९-१० तथा तीन पीठिका ऐसी ११ भूमि हैं।

२७८—अठारह दोष।

१ क्षुधा २ तृषा ३ जन्म ४ जरा ५ मरण ६ रोग ७ भय ८ मद ९ राग १० द्वेष ११ मोह १२ चिन्ता १३ रति १४ निन्द्रा १५ विस्मय १६ विषाद १७ खेद १८ स्वेद।

२७९—षोडश भावना।

१ दर्शनविशुद्धि २ विनयसम्पन्नता ३ शीलव्रतेष्वनतिचारः ४ अभीक्षणज्ञानोपयोग ५ संवेग ६ शक्तितस्त्याग ७ तप ८ साधुसमाधि ९ वैय्यावृत्यकरण १० अर्हन्तभक्ति ११ आचार्यभक्ति १२ बहुश्रुतिभक्ति १३ प्रवचनभक्ति १४ आवन्यकापरिहान १५ मार्गप्रभावना १६ प्रवचनवात्सल्य।

२८० —दशप्रकारके कल्पवृक्ष ।

१ वादित्रांग २ पात्रांग ३ भूषणांग ४ पानांग ५ भोजनांग ६ पुष्पांग ७ ज्योतिरांग ८ गृहांग ९ वस्त्रांग और १० दीपांग ।

२८१—बारह चक्रवर्ती ।

१ भरत महाराज २ सगर ३ मघव ४ सनतकुमार ५ शांतिजिन ६ कुंथिजिन ७ अरहजिन ८ सुभूमि ९ पद्मनाभि १० हरिषेण ११ जयसेन १२ ब्रह्मदत्त ।

२८२—चक्रवर्तीके राज्योंके सात अंग ।

१ स्वामी मन्त्री ३ जनसमूह प्रजा ४ कोट ५ खजाना ६ मित्रगण ७ सेना ।

२८३—चक्रवर्तीके चौदहरत्न ।

१ सेनापति २ गृहपति ३ शिल्पकार ४ पुरोहित ५ स्त्री ६ हस्ती ७ अश्व ये सात सजीव रत्न हैं। १ काकिनीमणि २ चक्ररत्न ३ चूणामणि ४ चर्म ५ छत्र ६ खड्ग ७ दण्ड ये सात निरजीव रत्न हैं ।

२८४—चक्रवर्तीके नवनिधि ।

१ कालानिधि २ महाकलानिधि ३ माणवनिधि ४ पिंगलनिधि ५ नैसर्प्पनिधि ६ पद्मनिधि ७ पांडुनिधि ८ शंखनिधि ९ नानारत्ननिधि ।

२८५—चक्रवर्तीके दश भोग।

१ रत्ननिधि २सुंदर स्त्रियां ३ नगर ४ आसन ५ शय्या ६ सैन्य ७ भोजन ८ पात्र ९ नाट्यशालाएं १०बाहन।

२८६—नवनारायण।

१ त्रिपृष्टि २ द्विपृष्ठ ३ स्वयंभू ४ पुरुषोत्तम ५ पुरुषसिंह ६ पुण्डरीक ७ दत्त ८ लक्ष्मण ९ कृष्णा।

२८७—नव प्रतिनारायण।

१ अश्वग्रीव २ तारक ३ मेरुक ४ निशुंभ ५ मधु (मधुकैटभ) ६ वली ७ प्रहलारण ८ रावण ९ जरासंध।

२८८—नव वलभद्र।

१ विजय २ अचल ३ भद्र ४ सुप्रभ ५ सुदर्शन ६ आनंद ७ नन्दन नन्द ८ पद्म रामचंद्र ९ राम वलभद्र।

२८९—नव नारद।

१ भीम २ महाभीम ३ रुद्र ४ महारुद्र ५ काल ६ महाकाल ७ दुर्मुख ८ नरकमुख ९ अधोमुख।

२९०—ग्यारह रुद्र।

१ भीमबली २ जितशत्रु ३ रुद्र ४ विश्वानल ५ सुप्रतिष्ठ ६ अचल ७ पुण्डरीक ८ अंजितधर ९ जितनाभि १० पीठ ११ सात्यकी।

२९१—चौदह कुलकर।

१ प्रतिश्रुति २ सन्मति ३ क्षेमंकर ४ क्षेमंधर ५ सीमंकर

६ सीमंधर ७ विमलवाहन ८ चक्षुष्मान् ९ यशस्वी १० अभिचंद्र ११ चंद्राभ १२ मरुदेव, प्रसेनजित, नाभिराजा।

२९२—बारह प्रसिद्ध पुरुष।

१ नाभि २ श्रेयांस ३ बाहुबली ४ भरत ५ रामचंद्र ६ हनुमान ७ सीता ८ रावण ९ कृष्ण १० महादेव ११ भीम १२ पार्श्वनाथ।

२९३—चौदह गुणस्थान।

मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांतकषाय वा उपशांतमोह, क्षीणकषाय वा क्षीणमोह, सयोगकेवली ,अयोगकेवली।

२९४—ग्यारह प्रतिमा।

दर्शनप्रतिमा, व्रतप्रतिमा, समायिकप्रतिमा, प्रोषधोपवासप्रतिमा, सचित्तत्यागप्रतिमा, रात्रिभुक्तित्यागप्रतिमा, ब्रह्मचर्यप्रतिमा, आरम्भत्यागप्रतिमा, परिग्रहत्यागप्रतिमा, अनुमतित्यागप्रतिमा, उद्दिष्टत्यागप्रतिमा।

२९५—श्रावकके १७ नियम।

भोजन, अचितवस्तु, गृह, संग्राम, दिशागमन, औषधिविलेपन, तांबूल, पुष्पसुगन्ध, नाच, गीतश्रवण, स्नान, ब्रह्मचर्य, आभूषण, वस्त्र, शैय्या, औषध खानी, घोड़ा, बैलादिककी सवारी।

२९६—सप्त व्यसन।

दोहा—जूआ खेलना मांसमद, वेश्याविसन शिकार।
चोरी पररमनीरमन, सातों व्यसन विसार॥

२९७—बाईस अभ्यक्ष्य।

पांच उदम्बर [गूलर], कठूम्बर बड़फल, पीपलफल, पाकर फल[पिलखन फल] तीन मकार मद्य मांस, मधु,।

२९८—दशलक्षण धर्म।

उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य।

२९९—तीनप्रकारका लोक।

ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, पाताललोक।

३००—सात नरक।

धर्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी, माघवी।

३०१—चारप्रकारकादुःख।

क्षेत्रजनित दुःख शारीरजनित दुःख मानसिक दुःख असुरकुमार देवोंकृत दुःख।

३०२—छ्यानवें कुभोगभूमि।

लवण समुद्रके दोनों किनारोंपर २४-२४ कुभोगभूमियां हैं, इसप्रकार कालोदधि समुद्रके दोनों किनारोंपर २४-२४ कुभोगभूमियां हैं, ऐसे कुल ९६ हुई।

३०३—पांच मंदारगिरि।

जम्बूद्वीपमें मन्दर [मेरु] गिरि, धतकीखंडमें, और पुष्करद्वीपमें, इसतरह ५ मंदरगिरि हैं।

३०४—एकसौ सरोवर।

देवकुरु भोगभूमिमें सरोवर ५, उत्तरकुरु भोगभूमिमें सरोवर ५, दोनों ओरके दोनों भद्रशाल वनोंमें ५-५ ऐसे एक मेरुसम्बन्धी २० और पांचों मेरुके १०० सरोवर हैं।

३०५—पन्द्रह कर्म भूमि।

पांचों भरतक्षेत्रोंमें ५ कर्मभूमि, पांचों ऐरावत क्षेत्रोंमें ५ कर्मभूमि, ऐसे कर्मभूमि १५ हैं।

३०६—तीस भोगभूमि।

देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रोंमें उत्तम भोगभूमि २, हरि और रम्यकक्षेत्रोंमें मध्यम भोगभूमि २, हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रोंमें जघन्य भोगभूमि २ ऐसे एक मेरु सम्बन्धी ६ भोगभूमि हैं, पांचों मेरुकी ३० भोगभूमि हैं

३०७—मेरुके तीस सरोवर।

पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, पुण्डरीक, महापुण्डरीक यह एक मेरुसम्बन्धी ६ सरोवर हैं, इसतरह पांचों मेरुके सरोवर ३० हैं।

३०८—बीस नाभिगिरि।

श्रद्धावान, विजयवान, पद्मवान, गन्धवान यह एक मेरु

सम्बन्धी ४ नाभिगिरि हैं, पांचोंमेरुके २० नाभिगिरि हैं।

३०६—एकसौ सत्तर विजयार्ध पर्वत।

१६० विजार्ध पर्वत तो १६० विदेहक्षेत्रमें और ५ भरतक्षेत्रमें, ५ ऐरावतक्षेत्रमें इसतरह विजार्ध पर्वत १७०हैं

३१०—एकसौ सत्तर बृषभगिरि पर्वत।

१६० वृषभगिरि तो विदेहक्षेत्रोंमें, ५ भरतक्षेत्रमें और ५ ऐरावतक्षेत्रमें ऐसे बृषभगिरि १७० हैं।

३११—आठ ऋद्धि।

अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्रासि ६ प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व।

३१२ पांचलब्धि।

क्षायोपशाम लब्धि, विशुद्धलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि, करणलब्धि।

३१३—दशप्रकारका सम्यग्दर्शन।

आज्ञा, मार्ग, बीज, उपदेश, सूत्र, संक्षेप, विस्तार अर्थ, अवगाढ़, परमावगाढ़।

३१४—सात मौनसमय।

भोजन, मैथुन, बमन, स्नान, मलमोचक, सामायिक, पूजन।

३१५—भोजनके सात अन्तराय।

हड्डी, मांस, पीव, (राध) रक्त गीला, चमड़ा, बिष्टा

मरा हुआ प्राणी इनके दृष्टिगोचर होनेसे श्रावकको भोजनका त्याग करना चाहिये।

३१६—पांचप्रकारके ब्रह्मचारी।

उपनयन, अदीक्षित, अवलंब, गूढ़, नैष्ठिक।

३१७—छः आर्यकर्म।

इज्या, वार्ता, दत्ति, संयम, स्वाध्याय, तप।

३१८—दश पूजा।

अर्हन्त, सिद्धि, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनबिंब, शास्त्र, जिनवाणी सम्यग्दर्शन, दशलक्षणधर्म।

३१९—चार प्रकारके ऋषि।

राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, परमर्षि।

३२०—दशप्रकारका प्रायश्चित्त।

आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप छेद, परिहार, उपस्थान, मूल ऐसे दश प्रायश्चित्त हैं।

३२१—बारहप्रकारका तप।

अनशन, अवमौदर्य, व्रत परिसंख्यान, रस परित्याग, विवक्तशय्यासन, कायक्लेश ऐसे, वाह्यतप हैं और प्रायश्चित बिनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान ऐसे, अभ्यन्तर तप, सब मिलकर बारहप्रकार हैं।

३२२—पांचप्रकारका स्वाध्याय।

बाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश इस प्रकार स्वाध्याय, पांच प्रकार है।

३२३—दशप्रकारका धर्मध्यान ।

अपायविचय, उपायविचय, जीवविचय, अजीवविचय, विपाकविचय, विरागविचय, भवविचय, संस्थान, आज्ञा, हेतु, ऐसे धर्म्मध्यान १० प्रकार है ।

३२४—सात परमस्थान ।

सज्जाति, सद्गृहीत्व, परिव्राज्य, सुरेन्द्रता, साम्राज्य, परमार्हन्त्य, परिनिर्वाण ।

३२५—ग्यारह प्रकारकी निर्जरा ।

सातिशयमिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत (मुनि), अनंतवियोजक, दर्शनमोहक्षपक उपशामक, उपशांतमोह, क्षपक, क्षीणमोह, जिन इसतरह निर्जराके स्थान ११ हैं ॥

श्रीचौवीस तीर्थंकरोंके २४ चिन्ह ।
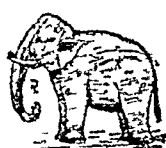
वृषभनाथके 'वृषभ' जु जान, अजितनाथके हाथी मान ।
संभवजिनके 'घोड़ा' कहा, अभिनन्दनपद 'बंदर' लहा ॥

सुमतिनाथके 'चकवा' होय, पद्मप्रभके 'कमल' जु जोय ।
जिनसुपासके 'सथिया' कहा, चंद्रप्रभपद 'चंद्र' जु लहा ॥
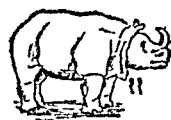
पुष्पदंतपद 'मगर' पिछान, 'कल्पवृक्ष' शीतलपद मान।
श्रीश्रियांसपद 'गेंडा' होय, वासुपूज्यकै 'भैंसा' जोय॥

विमलनाथपद 'शूकर' मान, अनन्तनाथके 'सेही' जान।
धर्मनाथके 'वज्र' कहाय, शांतिनाथपद 'हिरन' लहाय॥

कुंथुनाथके पद 'अज' चीन, अरजिनके पद चिह्न जु 'मीन'।
मल्लिनाथ पद 'कलसा' कहा, मुनिसुव्रतके 'कछुआ' लहा॥

लालकमल नमिजिनिके होय, नेमिनाथ-पद संख जु जोय।
पार्श्वनाथके 'सर्प' जु कहा, वर्द्धमानपद 'सिंह' हि लहा॥

नं० ३२६ से ३४८ तक

ग्यारहवां अध्याय ।

३५०—देखे जिनराज आज, राजरिद्धि पाई। देखें टेक ॥ पहुपवृष्टि महाइष्ट देव दुंदुभी सुमिष्ट, शोक भ्रष्ट सो अशोकतरु बड़ाई ॥ देखे० ॥१॥ सिंहासन झलमलात, तीन छत्र चितसुहात, चमर फरहरात मनों, भगति अति बढ़ाई ॥ देखे० ॥ २ ॥ द्यानत भामंडलमें, दीसै परजाय सात, बानी तिहुंकाल झरै, सुरशिवसुख दाई ॥ देखे० ॥ ३ ॥

३५१—चंदजिनेश्वर नाम हमारा, महासेनसुत जगत पियारा ॥ चंद० ॥ टेक ॥ सुरपति नरपति फनि-पति सेवत, मानि महा उत्तम उपगारा। मुनिजन ध्यान धरत उरमाही, चिदानंद पदवीका धारा ॥ चंद० ॥ १ ॥ चरन सरन बुधजन जे आये, तिनपाया अपना पद सारा ॥ मंगलकारी भवदुखहारी, स्वामी अद्भुत उपमा-वारा ॥ चंद० ॥ २ ॥

३५२—हे जिन मेरी, ऐसी बुधि कीजै। हे जिन० ॥ टेक ॥ रागरोषदावानलतैं विच, समतारसमें भीजै ॥ हे जिन० ॥ १ ॥ परमें त्याग अपनपो जिनमें, लाग न कबहूँ छीजै। हे जिन० ॥ २ ॥ कर्म कर्मफलमाहि न राचै, ज्ञानसुधारस पीजै ॥ हे जिन० ॥ ३ ॥ मुझ कार-जके तुम कारन वर, अरज दौलकी लीजै ॥ हे जिन०॥

३५३—मैं आयो जिन सरन तिहारी। मैं चिर दुखी विभाव भावतैं, स्वाभाविन निधि आप विसारी ॥ मैं० ॥ १ ॥ रूप निहार धार तुम गुम सुन, वैन सुनत भवि शिवमगचारी। यों मसकारजके कारन तुम सेव ऐव उर धारौ ॥ मैं० ॥ मिल्यो अनंत जन्मपै अवसर, अब विनऊं हे भवसरत्तारी। परमें इष्ट अनिष्ट कल्पना, दौल कहै झट मेट हमारी ॥ मैं० ॥

३५४—आज मैं परम पदारथ पायो, प्रभूचरन चित लायो ॥ आज ॥ मै० ॥ टेक ॥ अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं, सहज कल्पतरु छायो ॥ आज० ॥ १ ॥ ज्ञान शक्ति तप ऐसी जाकी, चेतन-पद दरशायो ॥ आज मैं० ॥ २ ॥ अष्ट कर्मरिपु जोधा जीते, शिवअंकूर जमायो ॥ आज० ॥ ३ ॥

३५५—प्रभु मोरी ऐसी बुधि कीजिये, रागदोष दावानलसे बच समतारसमें भीजिये ॥ प्रभु० ॥ टेक ॥ परमें त्याग अपनपो निजमें, लाग न कबहूँ छीजिये। कर्मकर्मफलमांहि न राचत ज्ञानसुधारस पीजिये ॥प्रभु० ॥ १ ॥ सम्यग्दर्शन ज्ञानचरननिधि, ताकी प्रापति कीजिये। मुझ कारजके तुम बड़कारन, अरज दौलकी लीजिये ॥ प्रभु० ॥ २ ॥

३५६—प्रभु म्हाकी सुधि, करुना करि लीजै ॥टेक॥ मेरे इक अवलंबन तुम ही, अब न विलंब करीजै प्रभु०

॥ १ ॥ अन्य कुदेव तजे सब मैंने, तिनतैं निजगुन छीजै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥ भागचंद तुम सरन लियो है, अब निश्चल पद दीजै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

३५७—शेष सुरेश नरेश रटैं तोहि, पार न कोई पावै जू ॥ शेष० ॥ टेक ॥ कापै नपत व्योम बिलसत सौं, को तारे गिन लावै जू ॥ शेष० ॥१॥ कौन सुजान मेघबूंदनकी, संख्यासमुझ सुनावै जू ॥ शेष० ॥ २ ॥ भूधर सुजस-गीत-संपूरन गणपति भी नहिं गावै जू ।शेष०

३५८—स्वामीजी सांची सरन तिहारी ॥ स्वामीजी० ॥ टेक ॥ समरथ शांत सकल गुन पूरे, भयो भरोसो भारी ॥ स्वामीजी० ॥ १ ॥ जनमजरा जगबैरी जीते, टेव मरनकी टारी । हमहूको अजरामर करिये, भरियो आस हमारी ॥ स्वामीजी० ॥ २ ॥ जनमैं मरैं धरैं तन फिर फिर, सो साहिब संसारी । भूधर परदालिद क्यों दलिहै, जो है आप भिखारी ॥ स्वामीजी० ॥ ३ ॥

३५९—मोहि तारो हो देवाधिदेव, मैं मनवचतन-करि करों सेव ॥ टेक ॥ तुम दीनदयाल अनाथ-नाथ, हमहूको राखहु आप साथ ॥ मोहि० ॥१॥ यह मारवाड़ संसार देश, तुमचरणकल्पतरु हरकलेश ॥ मोहि० ॥२॥ तुम नामरसायन जीव पीय, द्यानत अजरामर भवत-रीय ॥ मोहि० ॥ ३ ॥

३६०—तुम ज्ञानविभव फूली बसन्त, यह मधुकर

सुखसों रमन्त ॥तुम०॥ टेक ॥ दिन बड़े भए वैरागभाव मिथ्यामसरजनीको घटाव ॥ तुम० ॥ १ ॥ बहु फूली फैली सुरुचि बेल, ज्ञाताजन समता संग केलि ॥तुम०॥ ॥ २ ॥ द्यानतवानी पिकमधुररूप, सुरनर पशु आनन्द घन-स्वरूप ॥ तुम० ॥ ३ ॥

३६१—त्रिभुवनमें नामी, कर करुना जिनस्वामी ॥ त्रिभु० ॥ टेक ॥ चहुंगति जन्म मरनकिम भाख्यो, तुम सब अन्तर जामी ॥त्रिभु०॥१॥ करनरोगके वैद तुमहि हो, करों पुकार अकामी ॥त्रिभु०॥२॥ द्यानत पूरव-पुण्य-उदयते सरन तिहारी पामी ॥ त्रिभुवनमें० ॥ ३ ॥

३६२—मैं बंदा स्वामी तेरा ॥मैं०॥टेक॥ भवभंजन आदि निरंजन, दूर दुख मेरा ॥मैं०॥१॥ नाभिराय नंदन जगबंदन, मैं चरननका चेरा ॥ मैं० ॥ २ ॥ द्यानत ऊपर करुना कीजे, दीजे शिवपुर डेरा ॥ मैं० ॥ ३ ॥

३६३—स्वामी श्रीजिन नाभिकुमार ! हमको क्यों न उतारो पार ॥ स्वामी० ॥टेक॥ मंगल मूरत है अवि-कार, नाम भजैं भजैं बिघन अपार ॥स्वामी० ॥१॥ भव-भयभंजन महिमासार,तीनलोक जिय तारनहार॥स्वामी० ॥ २ ॥ द्यानत आए शरन तुम्हार, तुमको है सब शरम हमार ॥ स्वामी० ॥ ३ ॥

३६४—नेमजीलो केवलज्ञानी, ताहीकों मैं ध्याऊं ॥ नेमिजी० ॥ टेक॥ अमल अखंडित चेतनमंडित, परम

पदारथ पाऊं ॥ नेमिजी० ॥ १ ॥ अचल अबाधित निज गुणछाजत, वचनन कैसे बताऊं ॥नेमिजी०॥२॥ द्यानत ध्याइये शिवपुर जाइए, बहुरि न जगमें आऊं ॥नेमि०॥

३६५—हम आए हैं जिनभूप ! तेरे दरशनको ॥ हम० ॥ टेक ॥ निकसे घर आरतिकूप तुम पद-परशनको ॥ हम० ॥ १ ॥ बैननिसों सुगुन निरूप, चाहैं दर्शनको ॥ हम० ॥ २ ॥ द्यानत ध्यावें मन रूप, आनँद बरसनको ॥ हम० ॥ ३ ॥

३६६—तुम तार करुणाधार स्वामी आदिदेव निरंजनो ॥ तुम० ॥ टेक ॥ सार जग आधार नामी, भविकजनमनरंजनो ॥ तुम० ॥ १ ॥ निराकार जमी अकामी, अमल देह अमंजनो ॥ तुम० ॥ करहु द्यानत मुकतिगामी, सकल भवभयभंजनो ॥ तुम०

३६७—इक अरज सुनो साहिब मेरी ॥ इक० ॥ टेक ॥ चेतन एक बहुत जड़ घेर्यो, दई आपदा बहुतेरी ॥ इक० ॥ १ ॥ हम तुम एक दोय इन कीने, बिन कारन वेड़ी गेरी ॥ इक० ॥ २ ॥ द्यानत तुम तिहुं जगके राजा, करो जु कछु करुणा नेरी ॥ इक० ॥ ३ ॥

३६८—जिन साहिब मेरे हो, निवाहिये दासको ॥ जिन० ॥ टेक ॥ मोहमहातम घोर भर्यो है, कीजिये ज्ञानप्रकाशको ॥ जिन० ॥१॥ लोभ रोगके वैद प्रभूजी, औषध द्यो गदनासको ॥ जिन० ॥ २ ॥ द्यानत क्रोधकी

आग बुझावो, बरस छिमाजलरासको ॥ जिन० ॥३॥

३६९—सांचे चांद्रप्रभू सुखदाय ॥ सांचे० ॥टेक॥ भूमि सेतु अन्नत वरपाकरि, चांद नामतैं शोभा पाय ॥ सांचे० ॥ १ ॥ नरवरदाई कौन बड़ाई. पशुगन तुरत कियो सुरराय ॥ सांचे० ॥ २ ॥ द्यानत चांद असंखनिके प्रभु, सारथ नाम जपों मनलाय ॥ सांचे० ॥३॥

३७०—काम सरै सब मेरे, देखे पारसस्वाम ॥ काम० ॥ टेक ॥ सप्तफना अहि सीस विराजै, सात पदारथ धाम ॥ काम० ॥ १ ॥ पद्मासन शुभ बिंब अनूपम, श्यामघटा अभिराम ॥ का० ॥२॥ इंद फनिंद नरिंदनिस्वामी, द्यानत मंगल ठाम ॥ काम० ॥ ३ ॥

बालगीत माला ।

३७१—प्रार्थना ।

गुण गावे तेरे भगवान, पावें हम नित विद्या दान ।
मात पिताको नमकर आवें; गुरुचरणोंमें शीस झुकावें ॥
छोड़ें अवगुण अरु अज्ञान, बनें सदाचारी बलवान ॥

३७२ —खेल ।

आओ भाई खेलें खेल, खूब रखें आपसमें मेल ।
हिलमिल उत्तम बातें करलें, प्रेम भाव हिरदेमें धरलें ॥
पढ़ लिख कर होवें गुणवान, कसरत कर होवें बलवान ।
मात पिताका हुक्म बजावें, अच्छी अच्छी कविता गावें ॥

३७३—खिलौना।

बच्चो जभी खिलौने खेलो, साथ भाइयोंको भी लेलो।
खेलोगे क्या खेल अकेले, करो मित्रता रहो दुकेले॥
कभी मिठाई यदि तुम पाओ, सबमें बांट बांटकर खाओ

३७४—सपूत।

जो रोज मदरसे जाते हैं, पढ़नेमें ध्यान लगाते हैं।
जो सबक गुरूसे पाते हैं, उसको कर याद सुनाते हैं।
पढ़ते हैं और पढ़ाते हैं, वेही सपूत कहलाते हैं॥ १॥
जो कहा बड़ोंका करते हैं दुखियोंकी पीड़ा हरते हैं।
शुभ सीख हृदयमें धरते हैं, चुगली चोरीसे डरते हैं।
सचाई जो अपनाते हैं, वेही सपूत कहलाते हैं॥ २॥

३७५—सीख।

लड़को पढ़ना है सुखदाई, मिले इसीसे सभी बड़ाई॥
पहिले थोड़ा कष्ट उठाना, फिर सब दिन आनन्द मनाना।
बिना पढ़े नर पशू कहावें, सदा सैकड़ों दुःखउठावें॥
पढ़नेमें मन खूब लगाओ, बात सत्य बोलो सुखपाओ।
सचका सही बोल है बाला, झूठेका नितही मुँह काला।
रहो साफ सुथरेसे प्यारे, यही तीनगुण सबसे न्यारे॥

३७६—सत्य।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है, ताके हिरदे आप॥ १॥
सत्य नाव पर जो चढ़त, या भव-सिंधु अपार।

आप बचे अरु और को, देवे पार उतार ॥ २ ॥
जहां सत्य तहँ धर्म है, जहां सत्य तहँ योग ।
जहां सत्य तहँ श्री रहत, सत्य तहां शुभ भोग ॥ ३
जो सुशील बालक कहे, नित प्रति सांची बात ।
मान प्रतिष्ठा पाय कर, जगमें होय विख्यात ॥ ४ ॥
जगत माहिं सब कार्य में, सच बोले का मान ।
सबहि करे जन प्रेम तैं, सांचे का गुण-गान ॥ ५ ॥
एक सांच को आंट में, लाखन का व्यापार ।
चलता है बाज़ारमें, यामें फरक़ न सार ॥ ६ ॥
झूठेका जगमें घटे, मान बढ़हि अपमान ।
झूठ वचनके पापसे, पावे दुःख महान ॥ ७ ॥
इह कारण सब जन सदा, बोलो सांची बात ।
सत्य वचन व्रत धार कर, सुख भोगो दिन रात ॥ ८ ।

३७७—मीठी बानी ।

बालको मीठी बानी बोलो ।
सुनने वालोंके कानोंमें, शरबत सा नित घोलो ॥ १ ॥
जो असमय का गाना गाता, उसे न कौन बुरा बतलाता
इससे अपनी जीभ सर्वदा, समय देख कर खोलो ॥२॥
अवसर निकल हाथसे जाता, तो फिर नहीं लौट कर आता।
जो कहना हो पहिले उसको, बुद्धि तुला पर तोलो ॥ ३ ॥
कहो न ऐसी बात किसीसे, कि वह बुराई माने जिससे।
मनके धागेमें मोती सा, यह सुविचार पिरोलो ॥ ४

३७८—प्रकृति से शिक्षा।

भाई, देखो तो यह धरती, जब जितना कुछ पैदा करती
उसको अपने लिए न रखती, ख़र्च दूसरोंके हित करती॥१
फिर देखो, पहाड़ये सारे, जो कुछ उपजाते बेचारे।
सो सब औरो को देदेते, कभी स्वार्थ का नाम न लेते ॥२
वृक्ष फूल फल हैं उपजाते, परवे उनको कभी न खाते
उन्हें न अपने लिए बचाते, सब औरोंके लिये जुटाते ॥३
नदियां जितना पानी पातीं, सब औरोंके लिए लुटातीं
वे खुद पानी कभी न पीतीं, वे भी अपने लिए न जीतीं ॥४
इसी तरह तुम भी हे भाई, औरों की नित करो भलाई
अगर चाहते भले कहाना, तो यह सीख भूल मत जाना॥

३७९—खाना।

भगवत नाम सुमर कर खाना, दीन दुखीको देकर खाना
कड़ी भूख लगने पर खाना, भोजन खूब चबाकर खाना॥१
चित्त खुसी रखना जब खाना, नियत्त समय आवे तब खा
जैसा पचता वैसा खाना, पच न सके वहकैसा खाना ॥२
बार बार मत खाना खा, चलते नहीं चबाना खाना।
लेटे हुए कभी मत खाना, महनत कर जल्दी मत खाना॥
अधिक न मीठा चरका खाना, अपने जाने घरका खाना
गंदा और अभक्ष न खाना, सुथरा सुखी सदा बन खाना

३८०—कसरत।

शुद्ध हवामें साफ जगहमें, कांटे जीव बचालो।
आओ प्यारो करो अखाड़ा, तन बलवान बनालो॥ १॥
बैठक, दण्ड, कौड़ना, चलना, सभी नियम से करलो।
नियम पलेसे बल बढ़ता है, सदा ध्यान यह धरलो॥२॥
खूब रखो आनन्द हृदयमें, खेद शोक मत पाओ।
'वीर धीर बलवान बनें हम,' यही भावना लाओ॥ ३॥
कभी किसी को दुःख न दें हम, और न कभी सतावें।
जितना बल हो उससे दूने, नम्र सभी बन जावें॥ ४॥
निडर बने, बलवान बनें हम, महावीर बन जावें।
रक्षा करें दुखी लोगोंकी, विजय लक्ष्मि फिर पावें॥५॥

३८१—गिनती।

एक और इक होते दो, बड़े सवेरे मुँहको धो।
दो और एक होते तीन, सबक पढ़े हम और नवीन।
तीन और इक होते चार, भली बातका करो विचार।
चार और इक होते पांच, अक्षर गिनती सीखो बांच॥
पांच और इक होते छै, सदा सत्य की होती जै।
छः और एक होते सात, मात पिताकी मानो बात॥
सात और एक होते आठ, मनदे पढ़ना अपना पाठ।
आठ और एक होते नो, अपने पढ़नेमें मन दो!
नो और एक होते दस, इतनी गिनती हमको बस॥

भारतवर्षसे । अब तो बाल्य विवाह उठाओ !

३८२—फूलमाल पच्चीसी ।

दोहा—जैन धरम त्रेपन क्रिया, दया धरम संयुक्त ।
यादौं वंश विषैं जये, तीन ज्ञानकरि युक्त ॥ १ ॥
भयो महोत्सव नेमिको, जूनागढ़ गिरनार ।
जाति चुरासिय जैनमत, जुरे क्षोहनी चार ॥ २ ॥
माल भई जिनराजकी, गूंथी इन्द्रन आय ॥
देशदेशके भव्य जन, जुरे लेनको धाय ॥ ३ ॥

छप्पय—देश गौड़ गुजरात चौड़ सोरठि बीजापुर । करनाटक कश्मीर मालवा अरु अमरेपुर ॥ पानीपत हिसार और वैराट महा लघु । काशी अरु मरहट्ट मगध तिरहुत पट्टन सिंधु ॥ तंह चंग चंद्र वन्दर सहित, उदधि पारला जुरिय सब । आये जु चीन मह चीन लग, माल भई गिरनारि जब ॥ नाराच छन्द—सुगन्ध पुष्प वेलि कुंदि केतकी मंगायके । चमेली चंप सेवती जूहीगुही जु लायकें । गुलाब कंज रायची सबै सुगन्ध जानिके । सुमालती महा प्रमोद लै अनेक भांतिके ॥ ५ ॥ सुवर्ण-तार पोई बीच मोती लाल लाइया । सु हीर पन्न नील पीन पद्म जोति लाइया ॥ शची रची विचित्र भांति चित्त देवनांइ है । सुइन्द्रने उछाहसों जिनेन्द्रको चढाइ है ॥ ६ ॥ सुभागहीं अमोल माल हाथ जोरि वनिये । जुरी तहां सुराति जानि रावराज जानिये ॥ अनेक और भूप जोन सेठ साहुको गने । कहालु नाम वर्णिए सु

देखते सभा बने ॥ ७ ॥ खण्डेलवाल, जैसवाल, अग्रवाल, आठया । बघेरवाल, पोरवाल देशवाल, आठया ॥ सलेलवाल डिङ्खियाल, सैनवाल जानिके । चंदेलवाल गुणमाल श्री श्रीमाल पानिके ॥ ८ ॥ सु ओसवाल पल्लिवाल धूस्याल चौसग्या । पद्मावतीय पोरवाल परवार अठैसग्या । गंगेरवाल धन्धुराल नोर्णवाल सोहिला । करिन्दवाल पल्लिवाल मेडवाल खोहिला ॥ ९ ॥ लमेंचु और माहुरे महेसरी उदार हैं । सुगोलवार गोलपूर्व गोलहू सिंघार हैं ॥ बंधनौर मागधी चितारवाल गुजरा । सुखण्ड राग होय और जानराज धूसरा ॥ सुराल और सोरठ और सुराल चितौरिया । कपोल सोमराठ वर्ग हूमड़ा नागौरिया ॥ सीरागहोड़ भंडिया कनौजिया अजोधिया । मिवाड़ मालवान और जोधड़ा समोधिया ॥ ११ ॥ सुभटनेर रायवल्ल नागरा कथाकरा । सुकन्थ रारु जालुराल वालमीक भाकरा ॥ परवार लाड़ चोड़कोड़ गोड़ मोड़ संभारा । सु खण्डिआत श्री खण्ठाचतुर्थ पंच संभरा ॥ १२ ॥ सु रत्नाकार भोजकार नरसिंह है पुरी । सु जम्बूवाल और क्षेत्रब्रह्म वेश्य लौं जुरी ॥ आई है चुरासी जाति जैनधर्मकी घनी । सबै विराजि गोठियों जु इन्द्रकी सभा बनी ॥ १३ ॥ सुमाल लेनको अनेक भूप लोग आवहीं । सुएक एक तैं सुमांग मालको बढ़ावहीं ॥ कहैं जु हाथ जोरि-जोरि नाथ माल दीजिये ।

मंगाय देउं हेमरत्न सो भण्डार कीजिये ॥ १४ ॥ बघेरवाल बांकड़ा हजार बीस देत हैं। हजार दे पचास परवार फेरि लेत हैं। सु जैनवाल लाख देत माल लेत चोंपसो। जु दिल्लिवाल दोय लाख देत हैं अगोपसों ॥ १५ ॥ सु अग्रवाल बोलिये जु माल मोहि दीजिये। दिनार देहुं एक लक्ष सो गिनाय लीजिये। खण्डेलबाल बोलिया जु दोय लाख देउंगो, सुबांटिके तमोल मैं जिनेन्द्र माल लेउंगो ॥ १६ ॥ जुसंभरी कहैं सुमेरि खानि लेहु जायकैं। सुवर्ण खानि देत हैं चित्तौड़िया बुलायके ॥ अनेक भूप गांव देत रायसो चंन्देरिका। खजाना खोली कोठरी सु देत हैं अमेरिका ॥ १७ ॥ सुगौड़वाल यों कहैं गहन्द बीस लीजिये। मंगाय देव हेमदन्त माल मोहि दीजिये ॥ परमारके तुरंग सजि देत हैं बिना गिनें। लगाम जीन पाहुडे जड़ाउ हेमके बने ॥ १८ ॥ कनौजिया कपूर देत गाड़िया भरायके। सुहीरा मोति लाल देत ओसवाल आयके ॥ सु हूँमड़ा हंकारहीं हमैं न माल देउगे। भराइये जिहाजमें कितेक दाम लेउगे ॥ १ ॥ कितेक लोग आयके खड़ेथे हाथ जोरिके। कितेक भूप देखिके चले जु बाग मोरिकें ॥ कितेक सूम यों कहैं जु कैसे लक्षि देत हो। लुटाय माल आपनों सु फूलमाल लेत हो ॥ २६ ॥ कई प्रवीन श्राविक जिनेन्द्रको बधावहीं। कई सुकण्ठ रागसों खड़ी जु माल

गावहीं। कईसु नृत्यकों करै लहैं अनेक भावहीं। कई मृदंग तालपै सु अंगको फिरावहीं ॥ २१ ॥ कहैं गुरु उदारधी सु यों न माल पाइये ॥ कराइये जिनेन्द्र यज्ञ बिंबहू भराइये ॥ चलाइये जु संघजात संघही कहाइये। तबै अनेक पुण्यसों अमोल माल पाइए ॥ २२॥ संबोधि सर्व गोटिसो गुरू उतारके लई। बुलायकें जिनेन्द्र माल संघरायको दई। अनेक हर्षसों करैं जिनेन्द्रतिलक पाइये सुमाल श्रीजिनन्द्रकी बिनोदीलाल गाइए ॥ २३ ॥

दोहा—माल भई भगवंतकी, पाई सिंघई नरिन्द।
लालबिनोदी उचरैं सबको जयति जिनन्द ॥ २४ ॥
माला श्री जिनराजकी, पावै पुण्य संयोग।
यश प्रगटै कीरति बढ़ै, धन्य कहैं सब लोग॥ २५ ॥

३८३—धर्मपच्चीसी।

दोहा—भव्य कमल रवि सिद्धि जिन, धर्मधुरंधर धीर।
नमूं सदा जगतमहरण, नमूं त्रिविध गुरु वीर ॥

चौपाई—मिथ्याविषयनिमें रत जीव। तातें जगमें भ्रमें सदीव ॥ विविध प्रकार गहे परजाय। श्रीजिनधर्म न नेक सुहाय ॥ २ ॥ धर्म बिना चहुंगतिमें फिरै। चौरासीलख फिर फिर धरैं ॥ दुखदावानल माहिं तपंत। कर्म करै फल भोग लहंत ॥३॥ अति दुर्लभ मानुष परजाय। उत्तमकुल धन रोग न काय ॥ इस अवसरमें धर्म न करै। फिर यह अवसर कबको वरै ॥ ४ ॥ नरकी देह

पायरे जीव । धर्म बिना पशु जान सदीव ॥ अर्थ काममें धर्म प्रधान । ता बिन अर्थ न काम न मान ॥ ५ ॥ प्रथम धर्म जो करै पुनीत । शुभसंगति आवै कर प्रीति ॥ विघ्न हरे सब कारज सरै । धनसों चारों कोने भरै ॥६॥ जन्म जरा मृत्यु वश होय । तिहूँ काल जग डोलै सोय ॥ श्रीजिनधर्मरसायनपान । कबहुं न रुचि उपजै अज्ञान ॥७॥ ज्यों कोई मूरख नर होय । हलाहल गहै अमृत खोय ॥ त्यों शठ धर्म पदारथ त्याग । विषयनसों ठानै अनुराग ॥८॥ मिथ्यागृहगहिया जो जीव । छांड़ि धर्म विषयन चित दीव ॥ ज्यों सठ कल्पवृक्षको तोड़ । वृक्ष धतूरेकी भू जोड़ ॥ ९ ॥ नर देही जानो परधान । विसर विषय कर धर्म सुजान ॥ त्रिभुवन इन्द्रतने सुख भोग । पूज-नीक हो इन्द्रन जोग ॥ १० ॥ चन्द्र बिना निशि गज बिन दंत । जैसैं तरुण नारि बिन कंत ॥ धर्म बिना यों मानुष देह । तातैं करिये धर्म सनेह ॥११॥ हय गय रथ पावक बहु लोग । सुभट बहुत दल चमर मनोग ॥ ध्वजा आदि राजा बिन जान । धर्म विना त्यो नरभव मान ॥१२॥ जैसे गंध विना है फूल । नीरविहीन सरोवर धूल । ज्यों विन धन शोभित नहिं भौन । धर्म बिना त्यों नर चिंतौन ॥ १३ ॥ अरचे सदा देव अरहंत । चर्चै गुरुपद करुणावन्त ॥ खरचे दाम धरमसों प्रेम । रुचे विषय सुफल नरएम ॥ १४ ॥ कमला चपल रहै थिर नाहिं ।

यौवनरूप जरा लिपटाहिं॥ सुत मित नारी नावसंयोग। यह संसार स्वप्नको भोग ॥ १५ ॥ यह लख चित्त धर शुद्ध स्वभाव। कीजे श्रीजिनधर्म उपाव॥ यथाभाव तैसी गति गहैं। जैसी गति तैसा सुख लहै ॥१६॥ जो मूर्ख है धर्म कर हीन। विषय अंध रविव्रत नहिं कीन॥ श्रीजिनभाषित धर्म न गहै। सो निगोदको मारग लहै ॥ १७ ॥ आलस मन्दबुद्धि है जास। कपटी विषय मग्न शठ तास॥कायरता नहिं परगुण ढकै। सो तिर्यंच योनि लह सकै ॥ १८ ॥ आरत रुद्र ध्यान नित करै। क्रोध आदि मतसरता धरै॥ हिंसक वैर भाव अनुसरै। सो पापिष्ट नरकगति परै॥ १९ ॥ कपटहीन करुणा चित माहिं। है उपाधि ये भूलै नाहिं॥ भक्तिवन्त गुणवन्त जो कोय। सरस स्वभाव जो मानुष होय ॥२०॥ श्रीजिन वचनमग्न तपवान। जिन पूजै दे पात्रहि दान॥ रहैं निरंतर विषय उदास। सोही लहे स्वर्ग आवास ॥२१॥ मानुष योनि अंतकी पाय। सुन जिनवचन विषय विसराय॥ गहे महाव्रत दुर्द्धर वीर। शुक्लध्यान धर लहै शिवधीर ॥२२॥ धर्म करत सुख होय अपार। पाप करत दुख विविधप्रकार॥ बालगुपाल कहैं सब नार। इष्ट होय सोई अवधार॥ २३ ॥ श्रीजिनधर्म मुक्तिदातार। हिंसा कर्म परत संसार॥ यह उपदेश जान वड़भाग। एक धर्मसों कर अनुराग ॥२४॥ व्रतसंजम जिनपद थुति सार।

निर्मल सम्यकभाव जु धार ॥ अंत कषाय विषय कृष करो। जो तुम मुक्ति कामिनी वरो ॥ २५ ॥

दोहा—बुधकुमदनिशिसुखकरन, भो दुखनाशन जान।
कह्यो ब्रह्म जिनदास यह, ग्रन्थ धर्मकी खान ॥२६॥
द्यानत जे बांचें सुनें, मनमें करे उछाय।
ते पावें सुख शांति की, मनवांछित फलदाय ॥२७॥

३८४—संक्षिप्त सूतकविधि।

सूतकमें देव शास्त्र गुरुकी पूजन प्रक्षालादिक करना, तथा मन्दिरजीकी जाजम वस्त्रादिको स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूतकका समय पूर्ण हुये बाद पूजनादि करनेके पात्रदानादि करना चाहिये।

१—जन्मका सूतक दश दिन तक माना जाता है।

२—यदि स्त्रीका गर्भपात (पाचवें छठे महीनेमे) हो तो जितने महीनेका गर्भपात हो उतने दिनका सूतक माना जाता है।

३—प्रसूति स्त्रीको ४५ दिनका सूतक होता है कहीं कहीं चालीस दिनका भी माना जाता है। प्रसूतिस्थान एक मास तक अशुद्ध है।

४—रजस्वला स्त्री चौथे दिन पतिके भोजनादिके लिये शुद्ध होती है, परन्तु देवपूजन, पात्रदानके लिये पाचवे दिन शुद्ध होती है। व्यभिचारिणी स्त्रीके सदाही सूतक रहता है।

५—मृत्युका सूतक तीन पीढ़ी तक १२ दिनका माना जाता है। चोथी पीढ़ी में छह दिनका, पाचवीं छट्ठी पीढ़ी तक चार दिनका सातवी पीढीमें तीन, आठवीं पीड़ीमें एक दिन रात, नवमो पीढीमें स्नानमात्रमें शुद्धता हो जाती है

६—जन्म तथा मृत्युका सूतक गोत्रके मनुष्यको पांच दिनका होता है। तीन

दिनके बालककी मृत्युका एक दिनका आठवर्षके बालककी मृत्युका तीन दिन तकका माना जाता है। इससे आगे १२ दिनका।

७—अपने कुलके किसी गृह त्यागीका सन्यास मरण, वा किसी कुटुम्बीका संग्राममे मरण हो जाय तो एक दिनका सुनक माना जाता है।

८—यदि अपने कुलका कोई देशातरमें मरण करै और १२ दिन पहले खबर सुने तो शेप दिनोंकाही सूतक मानना चाहिये। यदि १२ दिन, पूर्ण हो गये हों तो स्नान मात्र सूतक जानो।

९—गौ, भैंस, घोडी, आदि पशु अपने घरमे जनै तो एक दिनका सूतक और घरके बाहर जनै तो सूनक नहीं होता। दासी दास तथा पुत्रीके घरमें प्रसूति होय तो एक दिन, मरण हो तो तीन दिनका सूतक होता है। यदि घरसे वाहर होतो सूतक नहीं। जो कोई अपनेको अग्नि अदिकमे जलाकर वा विप शस्त्रादिसे आत्महत्या करै तो छह महीनेतकका सूतक होता है। इसी प्रकार और भी विचार है सो आदिपुराणसे जानना।

१०—बचा हुये बाद भैंसका दूध १५ दिन तक, गायका दूध १० दिन तक बकरीका ८ दिन तक अभक्ष्य (अशुद्ध) होता है। देशभेदसे सूतक विधानमें कुछ न्यूनाधिक भी होता है परन्तु शास्त्रकी पद्धति मिलाकर ही सूतक मनाना चाहिये।

जैनधर्मपर अजैन विद्वानोंकी राय।

जैन साधु............एक प्रशंसनीय जीवन व्यतीत करनेके द्वारा पूर्ण रीतिसे व्रत, नियम और इन्द्रिय संयमका पालन करता हुआ, जगतके सन्मुख आत्म संयमका एक बड़ा ही उत्तम आदर्श प्रस्तुत करता है। प्राकृत भाषा अपने सम्पूर्ण मधुमय सौन्दर्य को लिये हुए जैनियोंकी रचनामे ही प्रकट की गयी है।

(३८५)

भारत गौरवके तिलक, पुरुष शिरोमणि इतिहासज्ञ माननीय पं० बाल गंगाधर तिलक के ३० नवम्बर सन १९०४ को बड़ोदा नगरमें दिये हुए व्याख्यानसे उद्धृत कुछ वाक्य।

(१) श्रीमान् महाराज गायकवाड़ (बड़ोदा नरेश) ने पहले दिन कान्फ्रेंसमें जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार 'अहिंसा परमोधर्मः, इस उदार सिद्धान्तने ब्राह्मण धर्मपर चिरस्मरणीय छाप मारी है। पूर्वकालमें यज्ञके लिये असंख्य पशु हिंसा होती थी इसके प्रमाण मेघदूत काव्य आदि अनेक ग्रन्थोंसे मिलते है·········परन्तु इस घोर हिंसाका ब्राह्मणा धर्मसे विदाई ले जानेका श्रेय (पुण्य) जैन धर्मके हिस्सेमें है।

(२) ब्राह्मण धर्मको जैन-धर्म हो ने अहिंसा धर्म बनाया है।

(३) ब्राह्मण व हिन्दू धर्ममें जैन धर्मके ही प्रतापसे मास भक्षण व मदिरापान बन्द हो गया।

(३८६)

पेरिस (फ्रान्स की राजधानी) के डाक्टर ए० गिरनाटने लिखा है।

मनुष्योंकी तरक्कीके लिये जैन धर्मका चारित्र बहुत लाभकारी है यह धर्म बहुत ही असली स्वतन्त्र, सादा, बहुत मूल्यवान तथा ब्राह्मणोंके मतोंसे भिन्न है तथा यह बौद्धोंके समान नास्तिक नहीं है।

(३८७)

जर्मनीके डाक्टर जोहन्नेस हर्टल के पात्रमें कहते हैं कि—

मैं अपने देश वासियोंको दिखाऊंगा कि कैसे उत्तम विषय और ऊंचे विचार जैनधर्म और जैन आचार्योंमें है। जेनका साहित्य बौद्धोंसे बहुत बढ़कर है और ज्यो २ मैं जैन धर्म और उनके साहित्यको समझता हू त्यों त्यों मैं उनको अधिक पसन्द करता हू।

जोसड़ रहे हैं खेदसे आलस्य की ही गोदमें,
पढकर इसेवे नर सदा हँसते फिरेंगे मोदमें।
होगा इसीसे ज्ञात सब क्या क्या हमारा हो गया,
सुविशाल इस भंडारमें से रत्न क्या क्या खो गया।

३९२—जैनपूर्वज।

प्राचीन पुरुषोंके गुणों को कौन कह सकता यहाँ ?
सम्पूर्ण-सागर-नीर यों घट मध्य रह सकता कहाँ ?
है जगत अब भी ऋणी उनके विपुल उपकारका,
उनने पढ़ा था पाठ नित, उपकारके उपकार का।

३९३—सार्व धर्म।

इस धर्मको तिर्यञ्च तक भी पाल सकते सर्वदा,
सच पूछिये यह एक ही जगमें सभीकी सम्पदा।
इस धर्मका धारक अधम मातङ्ग भी पावन अहो,
अपवित्र, धर्म विमुख मनुज योगी भले ही क्यों नहो।

३९४—निष्पक्षता।

सर्वज्ञ हो, निर्दोष हो, अविरुद्ध हो अनुपम गिरा,
ये तीन गुण जिसमें प्रगट वह देव है, नहिं दूसरा।
वह बुद्ध हो, श्रीकृष्ण हो, या शंभु हो श्रीराम हो।
वस भेद भाव विना उसे, कर जोड़ नित्य प्रणाम हो।
सर्वोच्च हैं सिद्धान्त सब निस्पक्षता की दृष्टिमें,
इतिहासके पन्ने उलटिये आप इसकी पुष्टिमें।

]

यह हो चुका है सिद्ध जगमें जैन धर्म अनादि है,
स्वीकार करते श्रेष्ठता जगको न वाद विवाद है ॥

३९५—अहिंसा ।

सबही अहिंसा धर्मको कल्याणकारी मानते,
लेकिन न उसके गूढ़-तत्त्वों को कभी पहिचानते ।
जैसा अहिंसा धर्मका लक्षण कहा इस धर्ममें,
वैसा अलौकिक लेख क्या, मिलता किसीके कर्ममें ?

३९६—आदर्श पुरुष ।

आदर्श हों दोचार तो उनको गिनायें हम यहां,
आकाशके तारे अहो, किस विधि गिनायें हम यहां।
आश्चर्य-कारी लोकको, उत्कृष्ट उनके कृत्य थे,
क्षमता विपुल सम या दयासे युक्त उनके चित्त थे।

३९७—जैन-स्त्रियां ।

थे देव यदि इस देशके तो नारियां थीं देवियां,
यों कर न सकती थीं उन्हें पथसे चलित आपत्तियां ।
अथवा कटाके शीघ-रक्षणमें सदा सबला रहीं,
विद्या तथा चातुर्यतामें वे सदा प्रबला रहीं ।

३९८—हमाराश्रद्धान ।

होवे अनल शीतल कहीं योगी चलित हों ध्यानसे,
होते न थे विचलित कभी हम धर्मके श्रद्धानसे ।
सर्वज्ञ का पद विश्वमें मिथ्या कभी होता नहीं,
ऐसा सुदृढ़ श्रद्धान क्या उन पूर्वजों को था नहीं ?

३९९—हमारी विद्या।

माता सदा वह शत्रु है वैरी जनक जगमें वहीं,
सन्तानको जो प्रेम वश विद्या पढ़ाते हैं नहीं।
यह ध्यानमें रख कर हमी विद्या पढ़ाते थे वहां ?
हमसे प्रबल विद्वान थे इस विश्वमें बोलो कहां॥

४००—सूत्र।

छोटे हमारे सूत्र हैं भावार्थ अतिशय ही भरा,
यो कर न सकता अर्थ जिसका स्वप्नमें भी दूसरा
तत्वार्थ सूत्र विलोक लीजे भाष्य हैं उस पर बड़े,
अधुना न मिलते पूर्व हा ? हा ? बन्द तालोंमें पड़े

४०१—न्याय।

गन्धस्ति जैसे भाष्य निज सत्ता यहां रखते रहे,
जिससे सदा हम जीव पुद्गल भेदको लखते रहे
श्री श्लोक वार्तिक ग्रन्थ की किससे छिपी प्राचीनता,
क्या न्याय कुमदोदय तथा मार्तन्ड की विस्तीर्णता,

४०२—अध्यात्म ग्रन्थ।

अध्यात्म विद्याके विपुल सद् ग्रन्थ जितने हैं यहाँ,
अह अन्यलोगोंके यहां पर ग्रन्थ उतने हैं कहां ?
जब तक न अपने रूपमें तल्लीन नर होता नहीं,
तब तक न वह लवलेश भी हा कर्म रज धोता नहीं।

४०३—आचार्य-ग्रन्थ।

विस्तीर्ण इस साहित्यमें नहिं धर्म ग्रन्थों की कमी,

कल्याण हित शुभ शास्त्र कितने रच गये हैं संयमी।
"अनगार धर्मा मृत" तथा "सागार धर्मा मृत" अहो।
"श्री भगवती आराधना" से ग्रन्थ हैं किसमें कहो ?

४०४—नीति-ग्रन्थ ।

एक दिनथे नीतिके अति ग्रन्थ इस साहित्यमें,
अवलोकके जिनको मुदित होते रहे हम चित्तमें।
सुन्दर कथाके साथ किसमेंनीति बतलाई गई,
बस बात यह जीवन चरितमें सर्वथा पाई गई।

४०५—प्राकृत-भाषा ।

कितने यहां पर ग्रन्थ इसके मोद-प्रद उपलब्ध हैं,
अवलोक जिसकी रम्य रचना विज्ञ होते स्तब्ध हैं।
गोम्मटसार त्रिलोक सारादिक उसीके रत्न हैं,
उन पूर्वजोंके ही सदाये सर्व योग्य प्रयत्न हैं।

४०६—श्रीजिनसेनाचार्य ।

होते रहे हममें कवि भगवान् श्रीजिनसेनसे,
अविकार आशा हीनथे गम्भीर भारी धेनसे।
सम्पूर्ण विद्वत्ता-प्रदर्शक आज आदि पुराण है,
उनकी कृतिका लोकमें सर्वत्र ही सम्मान है।

४०७—चित्र विद्या ।

हम चित्र विद्यामें परम नैपुण्य रखतेथे यहां,
निज लेखनीके ही चलाते चित्र लचते थे यहां।

अंगुष्ठ को अवलोक कर सर्वाङ्ग अङ्कित कर सके,
अपनी कलासे विश्व भरका मन विमोहित कर सके,

४०८—श्री रविषेणाचार्य ।

कवि सूर्य श्री रविषेणने लिख कर कथा श्रीरामकी,
मानों लगादी छाप सबके चित्त पर निज नामकी।
बतला दिया, सुग्रीवको वन्दर न था, कपि वंश था,
लंकेश राक्षस था नहीं, विख्यात राक्षस वंश था,

४०९—श्री कुन्दकुन्दाचार्य ।

जो म्लान हृदयों को खिलानेके लिये रवि तुल्य थे,
अज्ञान गिरिको चूर करनेके लिये रवितुल्य थे।
आध्यात्म रस पीयूषको जो सर्वथा पीते रहे,
ऐहिक विषय दुर्वासनासे जो सदा रीते रहे।

४१०—आचार्य ।

आचार्य कैसेथे हमारे ध्यानसे सुन लीजिये,
फिर पूज्य पुरुषों का सदा गुणगान सादर कीजिये।
थी एक दिन शोभित मही आचार्य नेमीचन्द्रसे,
सिद्धान्तके ज्ञाता विकट आचार्य अमृतचन्द्रसे।

४११—मुनिराज ।

तिलतुष बराबर भी परिग्रह नित्य उनको पाप था,
सहते उपद्रवके कठिन मनमें न पर सन्ताप था।
संसार भोगोंसे कभी उनको न कोई कामथा,
प्रिय-रत्न मंदिर त्यागके वनको बनाया धाम था।

४१२—मूर्ति पूजन ।

जबतक हमारे सामने प्रभु मूर्ति मृदु होगी नहीं,
तबतक हृदयमें भक्ति भी उत्पन्न यों होगी नहीं ।
प्रभु तुल्य बननेके लिये करते मनुज आराधना,
आदर्श बिन मनमें कहो उत्पन्न हो क्या भावना ।

४१३—दुर्भिक्ष ।

सब ठौरके दुर्भिक्ष आकरके यहां पर जम गया,
शम, दम, दयाके साथमें धनभी यहां का सब गया।
दुष्काल पीड़ित मानवों की ध्यानसे सुनिये कथा,
हा ! चीर डालेगी हृदयको वेगसे उनकी कथा ।

४१४—मूर्खता ।

सवत्रही कैसी समाई आज यह अज्ञानता,
यों खोजते पर भी न मिलता हाय विद्या का पता।
अज्ञानता का राज्य ही दिखता यहां चहुं ओर है,
प्रासाद या वन की कुटी कोई न खाली ठोरहै ।

४१५—श्रीमानकी सन्तान ।

अवलोक लीजे आप ही दश बीस दुर्गुण गुन नहीं,
ऐसे यहां श्रीमान् सुत होंगे अहो विरले कहीं ।
वे जान सकते हैं नहीं क्या वस्तु शिष्टाचार है ?
अपने पिताके साथ भी उनका कुटिल व्यवहार है ।

❀ जिनवाणी संग्रह समाप्त ❀

* श्री वीतरागाय नमः *

नवग्रह-विधान

लेखक :—

स्वर्गीय पं० मनसुख सागरजी

प्रकाशक :—

जिनवाणी प्रचारक कार्यालय

१६१।१, हरीसन रोड, कलकत्ता-७

मिलने का पता —
[illegible] पुस्तक भण्डार
[illegible] प्रिंटिंग प्रेस
गोपालजी का रास्ता, जयपुर

मूल्य ।)

ओं नमः सिद्धेभ्यः।

नवग्रह अरिष्टनिवारक विधान

प्रणम्याद्यंततीर्थेशं धर्मतीर्थप्रवर्तकं।
भव्यविघ्नोपशांत्यर्थं, ग्रहार्च्या वर्ण्यते मया॥
मार्तंडेन्दुकुजसौम्यसूरसूर्य कृतांतकाः।
राहुश्च केतुसंयुक्तो, ग्रहशांतिकरा नव:॥

दोहा—आदि अन्त जिनवर नमों, धर्म प्रकाशन हार।
भव्य विघ्न उपशातको, ग्रहपूजा चित धार॥
काल दोष परभावसों, विकलप छूटे नाहि।
जिन पूजामे ग्रहनकी, पूजा मिथ्या नाहिं॥
इस ही जम्बूद्वीपमे, रवि-शशि मिथुन प्रमान।
ग्रह नक्षत्र तारा सहित, ज्योतिष चक्र प्रमान॥
तिनहीके अनुसार सों, कर्म चक्रकी चाल।
सुख दुख जानें जीवको, जिन वच नेत्र विशाल॥
ज्ञान प्रश्न व्याकरण मे, प्रश्न अंग है आठ।
भद्रबाहु मुख जनित जो, सुनत कियो मुख पाठ॥
अवधि धार मुनिराजजी, कहे पूर्व कृत कर्म।
उनके बचन अनुसारसौं, हरे हृदयको मर्म॥

समुच्चय पूजा।

दोहा—अर्क चन्द्र कुज सोम गुरु, शुक्र शनिश्चर राहु।
केतुग्रहारिष्ट नाशने, श्री जिन पूज रचाहु॥

ओं ह्रीं सर्वग्रह अरिष्ट निवारक चतुर्विंशति जिन अत्र अवतर अवतर संवौषट आह्वानन, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण।

अष्टक।

गीता छन्द—क्षीर सिंधु समान उज्वल, नीर निर्मल लीजिये।
चौवीस श्रीजिनराज आगे, धार त्रय शुभ दीजिये॥
रवि सोम भूमज सौम्य गुरु कवि, शनितमो पूतकैतवे।
पूजिये चौवीस जिन ग्रहारिष्ट नाशन हेतवे॥

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्ट निवारक श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्राय पंचकल्याणप्राप्ताय जल निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीखण्ड कुमकुम हिम सुमिश्रित, घिसौं मनकरि चावसौं।
चौवीस श्री जिनराज अघहर, चरण चरचो भावसौं॥ रवि०॥

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्राय पंचकल्याप्राप्ताय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत अखण्डित सालि तंदुल, पुञ्ज मुक्ताफल समं।
चौवीस श्रीजिन चरण पूजन, नाम है नवग्रह भ्रमं॥ रवि०॥

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक श्रीचतुर्विंशति तीर्थंकर जिनेन्द्राय पंचकल्याणकप्राप्ताय अक्षत निर्वपामीति स्वाहा।

कुंद कमल गुलाब केतकि, मालती जही जुही।
कामबाण विनाश कारण, पूजि जिनमाला गुही॥ रवि०॥

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक श्रीचतुर्विंशति तीर्थंकर जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

फैनी सुहारी पुवा पापर, लेउ मोदक घेवरं ।

शतछिद्र आदिक विविध विंजन, क्षुधाहर बहु सुखकरं ।। रवि० ।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक श्रीचतुर्विंशति तीर्थंकर जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मणि दीप जग मग जोत, तमहर प्रभू आगे लाइये ।

अज्ञान नाशक जिन प्रकाशक, मोह तिमिर नशाइये ।। रवि० ।।

ओं ह्रीं सर्व ग्रहारिष्टनिवारक श्रीचतुर्विंशति तीर्थंकर जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कृष्णा अगर घनसार मिश्रित, लौंग चन्दन लेइये ।

ग्रहरिष्ट नाशन हेत भविजन, धूप जिनपद खेइये ।। रवि० ।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक श्रीचतुर्विंशति तीर्थंकर जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

बादाम पिस्ता सेव श्रीफल, मोच नीबू सद फलं ।

चौवीस श्रीजिनराज पूजन, मनोवाछित शुभ फलं ।। रवि० ।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक श्रीचतुर्विंशति तीर्थंकर जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गंध सुमन अखण्ड तन्दुल, चरु सुदीप सुधूपकं ।

फल द्रव्य दूध दही सुमिश्रित, अर्घ देय अनूपकं ।। रवि० ।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक श्रीचतुर्विंशति तीर्थंकर जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

दोहा—श्रीजिनवर पूजा किये, ग्रह अरिष्ट मिट जाय ।

पंच ज्योतिषी देव सब, मिल सेव प्रभु पांय ।।

पद्धरी छन्द।

जय २ जिन आदि महन्त देव, जय अजित जिनेश्वर करहिं सेव।
जय २ संभव संभव निवार, जय २ अभिनन्दन जगत तार॥
जय सुमति २ दायक विशेष, जय पद्मप्रभु लख पद्म लेष।
जय २ सुपार्स हर कर्म फास, जय २ चन्द्रप्रभु सुख निवास॥
जय पुष्पदन्त कर कर्म अन्त, जय शीतल जिन शीतल करन्त।
जय श्रेय करन श्रेयान्स देव, जय वासुपूज्य पूजत सुरेव॥
जय विमल २ कर जगत जीव, जय २ अनन्त सुख अति सदीव।
जय धर्म धुरन्धर धर्मनाथ, जय शान्ति जिनेश्वर मुक्ति साथ॥
जय कुंथनाथ शिव-सुख निधान, जय अरह जिनेश्वर मुक्ति खान।
जय मल्लिनाथ पद पद्म भास, जय मुनिसुव्रत सुव्रत प्रकास॥
जय २ नमिदेव दयाल सन्त, जय नेमनाथ तसुगुण अनन्त।
जय पारस प्रभु संकट निवार, जय वर्द्धमान आनन्दकार॥
नवग्रह अरिष्ट जब होय आय, तब पूजे श्रीजिनदेव पाय।
मन वच तन मन सुख सिंधु होय, ग्रह शात रीत यह कही जोय॥

ओं ह्रीं सर्व ग्रहारिष्टनिवारक श्रीचतुर्विंशति तीर्थंकर जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा—चौबीसौं जिनदेव प्रभु, ग्रह सम्बन्ध विचार।
पुनि पूजौं प्रत्येक तुम, जो पाऊं सुख सार॥

इत्याशीर्वादः।

——*——

सूर्यग्रह अरिष्टनिवारक पद्मप्रभु पूजा ।

सोरठा—पूजों पद्म जिनेन्द्र, गोचर लग्न विषे यदा ।
सूर्य करे दुखदंद, सुख होवे सब जीवको ॥
पञ्च कल्याणक सहित, ज्ञान पञ्चम लसैं ।
समोसरन सुख साध, मुक्तिमांही बसैं ॥
आह्वानन कर तिष्ठ, सन्निधी कीजिये ।
सूरज ग्रह हो शांत, जगत सुख लीजिये ॥

ओं ह्रीं श्रीसूर्यग्रहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानन, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठः स्थापनम्, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरण परिपुष्पांजलि क्षिपेत् ।

अथाष्टक ।

छन्द त्रिभंगी ।

सोनेकी झारी सब सुखकारी, क्षीरोदधि जल भर लीजे ।
भव ताप मिटाई त्रास नसाई, धारा जिन चरनन दीजे ॥
पद्मप्रभु स्वामी शिवगण-गामी, भवक मोर सुन कूजत हैं ।
दिनकर दुख जाई पाप नसाई, सब सुखदाई पूजत हैं ॥

ओं ह्रीं श्रीसूर्यग्रहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय जलं० ।

मलियागिरि चन्दन दाह निकंदन, जिनपद वंदन सुखदाई ।
कुमकुम जुत लीजे अरचन कीजे, ताप हरीजे दुख जाई ॥ पद्म०

ओं ह्रीं श्रीसूर्यग्रहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय चन्दनं० ।

तन्दुल गुण मंडित सुर मनि मंडित, पूजत पण्डित हितकारी ।
अक्षय पद पाओ अक्षत चढ़ावो गावो गुण शिव सुखकारी ॥ पद्म०

ओं ह्रीं श्रीसूर्यग्रहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय अक्षतं० ।

मचकुन्द मंगाके कमल चढाके, बकुल वेल दृग चित हारी ॥
मंदर ले आवो मदन नसावो, शिव सुख पावो हितकारी ॥ पद्म०
ओं ह्रीं श्रीसूर्यगृहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्तायपुष्प० ।

गौ घृत ले धरिये, खाजे करिये, भरिये हाटक मय थारी ।
विजन बहु लीजे पूजा कीजे, दोष क्षुधादिक अघहारी ॥ पद्म०
ओंह्रीं श्रीसूर्यगृहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय नैवेद्यं० ।

मणि दीपक लीजे घीव भरीजे, कीजे घनसारक बाती ।
जगजोत जगावे जग मग जग मग, मोहि तिमिरिको है घाती ॥ पद्म०
ओं ह्रीं श्रीसूर्यगृहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक दीप नि० ।

कृष्णागुरु धूपं अधिक अनूपं, निर्मल रूपं घनसारं ।
खेवो प्रभु आगे पातक भागे, जागे सुख दुख सब हरनं ॥ पद्म०
ओं ह्रीं श्रीसूर्यगृहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय धूपं० ।

श्री फल ले आओ सेव चढाओ, अन्य अमर फल अविकारं ।
वांछित फल पावो जिनगुण गाओ, दुख दरिद्र वसु कर्महरं ॥ पद्म०
ओं ह्रीं श्रीसूर्यगृहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय फलं० ।

जल चन्दन लाया सुमन सुहाया, तन्दुल मुक्ता सम कहिये ।
चरु दीपक लीजे धूप सु खीजे, फल लै वसु कर्मन दहिये ॥ पद्म०
ओं ह्रीं श्रीसूर्यगृहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय पूर्णार्घं०

सलिल गन्ध ले फूल सुगन्धित लीजिये ।
तन्दुल ले अरु दीप धूप सु दीजिये ॥
कमल मोदको दोप तुरत ही पूजिये ।
पद्म प्रभु जिनराज सु सन्मुख हूजिये ॥
ओं ह्रीं श्रीसूर्यगृहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय पूर्णार्घं०

जयमाला ।

जै जै सुखकारी सब दुख हारी, मारी रोगादिक हरनं ।
इनआदिक आवे, प्रभु गुण गावे, मंदर गिर मंजन करणं ॥
इत्यादिक साजै दुंदुभि बाजे, तीन लोक सेवत चरणं ।
पद्मप्रभु पूजत, पातक धूजत, भव भव मागत है शरणं ॥

पद्धड़ी छन्द ।

जय पद्मप्रभु पूजा कराय, सूरज ग्रह दूषण तुरत जाय ।
नौ योजन समवसरन बखान, घण्टा झालर सोहत वितान ॥
शत इन्द्र नमत तिस, चरन आय, दशशत गणधर शोभा धराय ।
वाणी घनघोर जु घटा जोर, घन शब्द सुनत भव नचै मोर ॥
भामण्डल आभा लसत भूर, चन्द्रादिक कोटि कला जु सूर ।
तहा बृक्ष अशोक महा उतंग, सब जीवन शोक हरै अभंग ॥
सुमनादिक सुर वर्षा कराय, वे दाग चवर प्रभु पर ढराय ।
सिंहासन तीन त्रिलोक ईश, त्रय छत्र फिरे नग जड़त शीश ॥
मन भई आवत मकरन्द सार, त्रय धूलि सार सुन्दर अपार ।
कल्यानक पाचों सुख निधान, पञ्चम गति दाता है सुजान ॥
साड़े बारा कोडी जु सार, बाजै बिन वेद बजै अपार ।
धरणेन्द्र नरेन्द्र सुरेन्द्र ईश, त्रैलोक नमत कर धरि ऋषीश ॥
सुर मुक्त रमा वर नमत वार, दोऊ हाथ जोड़ कर बार बार ।
याके पद नमत आनन्द होय, दुति आगे दिनकर छिपै जोय ॥
मन शुद्ध समुद्र हृदय विचार, सुखदाता सब जनको अपार ।
मन वच तन कर पूजा निखार, कीजे सुखदायक जगत सार ॥

ओं ह्रीं श्रीसूर्यग्रहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभु जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्ताय अर्घं० ।

घत्ता छन्द।

सब जन हितकारी सुख अति भारी, मारी रोगादिक हरणं।
पापादिक टारै ग्रह निरवारै, भव्य जीव सब सुख करणं॥
इत्याशीर्वाद परिपुष्पाजलि क्षिपेत्।

चंद्र अरिष्टनिवारक श्रीचंद्रप्रभु पूजा।

सोरठा - निशपति पीडा ठान, गोचर लग्न विषे परे।
वसु विधि चतुर सुजान, चन्द्रप्रभु पूजा करे॥

अडिल्ल छन्द — चन्द्रपुरीमे बीच चन्द्र प्रभु अवतरे।
लक्षण सोहे चन्द्र सबनके मन हरे॥
भव्य जीव सुखकाज द्रव्य ले धरत है।
सोम दोपके हेत थापना करत है॥

ओं ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिन अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानन, अत्र तिष्ट तिष्ट ठ ठ स्थापन, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरण, परिपुष्पाजलिं क्षिपेत्।

अथाष्टक।

कंचन झारी जड जडात, क्षीरोदक भर जिनहि चढ़ात।
जगत गुरु हो, जै जै नाथ जगत गुरु हो॥
चन्द्रप्रभु पूजो मन लाय, साम दोप तातैं मिट जाय।
जगत गुरु हो, जै जै नाथ जगत गुरु हो॥

ओं ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय जल०।

मलयागिर केशर घनसार, चरचो जिन भवताप निवार॥ जगत०॥

ओं ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय चन्दन०।

खडरहित अक्षत शशिरूप, पुञ्ज चढ़ाय होय शिवभूप ॥ जगत० ॥

ओ ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय अक्षत० ।

कमल कुन्द कमलिनी अभंग कल्पतरु जस हरं अभङ्ग ॥ जगत० ॥

ओं ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय पुष्प० ।

घेवर बावर मोदक लेउ, दोष क्षुधाहर थार भरेउ ॥ जगत० ॥

ओं ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय नैवेद्य० ।

मणिमय दीपक घृत जु भरेउ, बाती वरत तिमिर जु हरेउ ॥ जगत० ॥

ओं ह्रीं चन्द्रारिष्ट निवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय दीप० ।

कालागुरुकी कनी खिवाय, वसु विधि कर्म जु तुरत नसाय ॥ जगत० ॥

ओं ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय धूप० ।

श्रीफल आदि सदा फल लेउ, चोच मोच अमृत फल देउ ॥ जगत० ॥

ओं ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय फलं ।

जल गन्ध पुष्प शालि नैवेद्य, दीप धूप फल ले अनिवेद्य ॥ जगत० ॥

ओं ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिनेंद्राय पचकल्याणक प्राप्ताय अर्घं ।

अडिल्ल छन्द ।

जल चन्दन बहु फल जु तंदुल लीजिये ।
दुग्ध शर्करा सहित सु विजन कीजिये ॥
दीप धूप फल अर्घ बनाय धरीजिये ।
पूजो सोम जिनेन्द्र सु दुःख हरीजिये ॥

ओं ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिनेंद्राय पचकल्याणक प्राप्ताय अर्घं० ।

जयमाला ।

चन्द्र प्रभु चरण, सब सुख भरण, करणं आतम हित अतुलं ।
सब दर्दजु हरण भव जल तरण, मरन हरं शुभकर विपुलं ॥

त्रोटक छन्द ।

भव्य मन हृदय मिथ्यात तम नाशकं ।
केवलज्ञान जग सूर्य प्रति भापकं ॥
चन्द्रप्रभु चरण मन हरण सब सुखकरं ।
शाकिनी भूत ग्रह सोम सब दुख हरं ॥
वर्धनं चन्द्रमा धर्म जलनिधि महा ।
जगत सुखकार शिव-मार्ग प्रभुने गहा ॥ चन्द्रप्रभु० ॥
ज्ञान गंभीर अति धीर वर वीर है ।
तीन लोक सब जगतके मीर है ॥ चन्द्रप्रभु० ॥
विकट कंदर्पको दर्प छिनमे हरा ।
कर्म वसु पाय सब आप ही तैं झरा ॥ चन्द्रप्रभु० ॥
सोमपुर नगरमे जन्म प्रभुने लहा ।
क्रोध छल लोभ मद मान माया दहा ॥ चन्द्रप्रभु० ॥
देह जिनराजकी अधिक शोभा धरे ।
स्फटिकमणि काति तोहि देख लज्जा करे ॥ चन्द्रप्रभु० ॥
आठ अरु एक हजार लक्षण महा ।
दाहिने चरणको निशपति गह रहा ॥ चन्द्रप्रभु० ॥
कहत मनसुख श्री चन्द्रप्रभु पूजिये ।
सोम दुःख नाशके जगत भय धूजिये ॥ चन्द्रप्रभु० ॥

ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय नम अर्घं०

दोहा—पाप तापके नाशको, धर्मामृत रस कूप ।
चन्द्रप्रभु जिन पूजिये, होय जो आनन्द भूप ॥

मंगल अरिष्टनिवारक श्री वासुपूज्यकी पूजा।

दोहा—वासुपूज्य जिन चरण युग, भूसुत दोष पलाय।
तातें भवि पूजा करो, मनमें अति हरषाय॥

अडिल्ल छन्द—वासुपूज्यके जन्म समय हरषायके।
आये गज ले साज इन्द्र सुख पायके॥
लै मंदिर गिरि जाय जु न्हवन करायके।
सोपे माता जाय जो नाम धरायके॥

ओं ह्रीं भौम अरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिन! अत्र अवतर अवतर, संवौषट् आह्वानन, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापन, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरण।

कनक झारी अधिक उत्तम रतन जडित सु लीजिये।
पद्म द्रहको जल सुगंधित कर धार चरनन दीजिये॥
भूतनय दूषण दूर नाश जु सकल आरत टारके।
श्री वासुपूज्य जिन चरन पूजे हर्ष उरमें धारके॥

ओं ह्रीं भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्रादि पंचकल्याणक प्राप्ताय जलं०।

श्रीखण्ड मलय जु महा शीतल, सुरभ चन्दन घिस धरौं।
जिन चरन चरचो भविक हित, सो पाप ताप सबै हरौं॥ भूतनय०॥

ओं ह्रीं भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय चन्दनं०।

अक्षत अखिण्डत सुरभि मण्डित, थारि भर कर मैं गहों।
अक्षत सु पुञ्ज दिवाय जिन पद, अखय पदमें जो लहों॥ भूतनय०॥

ओं ह्रीं भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय अक्षतं०।

कमल कुन्द गुलाब चम्पा, पारिजातक अति घने।
पहुप पूजत चरण प्रभुके, कुसुम शर तब ही हने॥ भूतनय०॥

ओं ह्रीं भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पञ्चकल्याणक प्राप्ताय पुष्पं० ।

गो सद्य मंगाय भविजन, दुग्ध मिश्रित शक्करी।
चरु चारु लेकर जजो जिनपद, क्षुधा वेदन सब हरो ॥ भूतनय० ॥

ओं ह्रीं भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पञ्चकल्याणक प्राप्ताय नैवेद्य ० ।

मणि जड़ित कञ्चन दीप सुन्दर, सद्य घृत तामे भरों।
उद्योत कर जिन चरण आगे, हृदय मिथ्यातम हरो ॥ भूतनय० ॥

ओं ह्रीं भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पञ्चकल्याणक प्राप्ताय दीपं० ।

काला अगर घन सार मिश्रित, देव फूल सुहावने।
खेवत धुंआ सो सुरङ्ग मोदित, करत वसु कर्मन हने ॥ भूतनय० ॥

ओं ह्रीं भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पञ्चकल्याणक प्राप्ताय फल० ।

श्रीफल अनार जो आम नींबू, चोच मोच सुधा फलं।
जिन चरन चरचत फलन सेती, मोक्ष फल दाता रलं ॥ भूतनय० ॥

ओं ह्रीं भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पञ्चकल्याणक प्राप्ताय फल० ।

जल गन्ध अक्षत पुष्प विंजन, दीप धूप फलोत्तमं।
जिनराज अघ चढाय भव जन, लेऊ मुक्ति सुखोत्तम ॥ भूतनय० ॥

ओं ह्रीं भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पञ्चकल्याणक प्राप्ताय अर्घं० ।

अडिल्ल छन्द ।

सुरभित जल श्रीखण्ड कुसुम तन्दुल भले।
विजन दीपक धूप सदा फल सो रले ॥
वासुपूज्य जिन चरण अर्घ शुभ दीजिये।
मङ्गल ग्रह दुख टार सो मङ्गल लीजिये ॥

ओं ह्रीं भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पञ्चकल्याणक प्राप्ताय अर्घं० ।

जयमाला ।

मङ्गल ग्रह हरनं मंगल करनं, सुखकर शिव-रमनी वरनं ।
आतम हित करनं भवजल तरनं, वासुपूज्य सेवत चरनं ॥

पद्धडी छन्द ।

इन्द्र नरेद्र खगेन्द्र जु देव, आय करं जिनवरकी सेव ।
वासुपूज्य जिन पूजा करो, मङ्गल दोष सकल परिहरो ॥
विजया जननी मन हर्षाय, जनक जु वासुपूज्य सुखदाय ।
शुभ लक्षण कर लक्षितकाय, चम्पापुर जनमे जिनराय ॥
महिषा अङ्क चरणमें परो, देखत सबको संशय हरो ।
फागुन असि जो चोदश जान, हो वैराग्य सुधरियो ध्यान ॥
घात घातिया केवल पाय, जैन धर्म जगमे प्रगटाय ।
षट शत एक मुनीश्वर भयो, गिरिमन्दारतैं शिवलहि गयो ॥
मंगल हेतु जजो जिनराय, मंगल ग्रह दूषण मिटजाय ।
वासुपूज्य जिनपूजा करो, मंगल दोप सकल परिहरो ॥

घत्ता छन्द ।

पूजन प्रभु कीजे दोष हरीजे, छीजे पातक जन्म जरा ।
सुख होय अधिकारी ग्रह दुखहारी, भवजल भारी नीरतरा ॥

ओं ह्रीं भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पञ्चकल्याणक प्राप्ताय महार्घ ।

इति श्री भौमअरिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्य जिनपूजा संपूर्ण ।

——*——

बुधग्रह अरिष्टनिवारक अष्ट जिन पूजा।

दोहा—सौम्य ग्रह पीड़ा करे, पूजे आठ जिनेश।
आठों गुण जिनमें लसें, नावत शीस सुरेश॥

छप्पै—विमलनाथ जिन नमो, नमों जु अनन्तनाथ जिन।
धर्मनाथ जिन वंद वंद हो, शान्ति शान्ति जिन॥
कुंथु अरह जिन सुमरि, सुमरि पुन वधमान जिन॥
इन आठो जिन जजों, भजो सुख करन चरन तिन॥
बुध महाग्रह अशुभता, धरत करत दुख जार जब।
आह्वानन कर तिष्ठ तिष्ठ, सन्निधी करहु तब॥

ओं ह्रीं बुधग्रहअरिष्टनिवारक श्रीअष्टजिन अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वान, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापनम्, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरण। परिपुष्पांजलि क्षिपेत्।

अष्टक—गीताका छन्द।

हेम झारी जडित मन जल, भरों क्षीरोदक तनं।
धार देत जिनराज आगे, पाप ताप जु नाशनं॥
विमलनाथ अनंतनाथ, सु धर्मनाथ जु शात थे।
कुंथुअरह जु नमिय जिन महावीर आठों जिनजजे॥

ओं ह्रीं बुधग्रहारिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो जल नि०।

सुरभि सुरभि लेउ चंदन, घिसो कुमकुम संगही।
जिन चरन चरचत मिटे ग्रीषम, मोह ताप जु भागही॥ विमलनाथ॥०

ओं ह्रीं बुधग्रहारिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो चन्दन नि०।

अक्षत अखण्ड उभय कोट, समान शुभ जो अति घने।
ले कनक थार भराय भविजन, पुञ्ज देत सुहावने॥ विमलनाथ०॥

ओं ह्रीं बुधग्रहारिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो अक्षत नि० ।

मंदार बेला मालती, मचकुन्द मरुवो मोतिया ।
कमल कुन्द कुसुम करता, काम बान जु घातिया ।। विमलनाथ० ।।

ओं ह्रीं बुधग्रहारिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो पुष्प नि० ।

घृत शुद्ध मिश्रित शर्करामृत, करहु विजन भावसो ।
ग्रह शान्तिक होत जिनके, चरन चरचों चावसों ।। विमलनाथ० ।।

ओं ह्रीं बुधग्रहारिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो नैवेद्य नि० ।

मणि जडित हाटक दीप सुन्दर, खातका घनसार है ।
सर्पि सहित शिखा प्रकाशित, आरती तमहार है ।। विमलनाथ० ।।

ओं ह्रीं बुधग्रहारिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो दीप नि० ।

लोभान अगर कर्पूर चन्दन, लौंग चूरन लेइये ।
वन्हि धूम विवर्जितम, जिन चरन आगे खेइये ।। विमलनाथ० ।।

ओं ह्रीं बुधग्रहारिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो धूप नि० ।

कल्पपादप जिन श्रीफल, फल समूल चढ़ाइये ।
भक्ति भाव बढ़ाय करके, सरल श्रीफल लाइये ।। विमलनाथ० ।।

ओं ह्रीं बुधग्रहारिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो फल नि० ।

शुभ सलिल चंदन सुमन अक्षत, क्षुधा हर चरु लीजिये ।
मणि दीप धूपक फल सहित, वसु द्रव्य अघ करीजिये ।। विमलनाथ० ।।

ओं ह्रीं बुधग्रहारिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो अर्घ नि० ।

दोहा—जल चन्दन आदिक दरव, पूजो वसु जिनराय ।
सौम्य ग्रह दूषण मिटे, पूरन अर्घ चढ़ाय ।।

ओं ह्रीं बुधग्रहारिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो महार्घ नि० ।

जयमाला।

विमलनाथ जिन नमों, नमो जु अनन्तनाथ जिन।
धर्मनाथ पुनि नमो, नमों शांति कर्त्ता तिन॥
कुन्थुनाथ पद वन्द, वन्द हों अरहनाथ जिन।
नमिय प्रणमि जिन पाय, पाय जिन वर्धमान जिमि॥
ये आठों जिनरायको, हाथ जोड शिर धरत हो।
सोम तनुज दुख हरनको, मंगल आरति करत हो॥

पद्धडी छन्द।

जय विमल विमल आतम प्रकाश।
षट् द्रव्य चराचर लोक वास॥
जय जय अनन्त गुण है अनन्त।
सुर नर जस गावत लहे न अन्त॥
ये धर्म धुरन्धर धर्मनाथ।
जग जीव उधारन मुक्ति साथ॥
जय शान्तिनाथ जग शान्ति करन।
भव जीवनके दुख दरिद्र हरन॥
जय कुन्थ- जिनं कुन्थादि जीव।
प्रतिपालन कर सुख दे अतीव॥
जय अरह जिनेश्वर अष्ट कर्म।
रिपु नाम लियो शिव रमन शर्म॥
जय नियम नियम सुर वर खगेश।
इन्द्रादि चन्द्र थुति करत शेष॥

जय वर्धमान जग वर्धमान ।
उपदेश देय लहि मुक्ति नाम ॥
शशि सुत अरिष्ट सब दूर जाय ।
भव पूजे अष्ट जिनेन्द्र पाय ।
मन वच तनकर जुग जोड हाथ ।
मनसिन्धु जलधि तव नवत नाथ ॥

ओ ह्रीं बुधग्रहअरिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो अर्घं नि० ।

ये आठ जिनेश्वर नमत सुरेश्वर, भव्य जीव मंगल करनं ।
मन वाछित पूरे पातक चूरे, जन्म मरण सागर तरनं ॥

इति आशीर्वादः ।

गुरु अरिष्टनिवारक श्रीजिन पूजा ।

मन वच काया शुद्ध कर, पूजों आठ जिनेश ।
गुरु अरिष्ट सब नाश हो, उपजे सुक्ख विशेष ॥

छप्पै—ऋषभनाथ जिनराज, अजित जिन सम्भव स्वामी ।
अभिनंदन जिन सुमति, सुपारस शीतल नामी ॥
श्री श्रेयांस जिनदेव, सेव सब करत सुरासुर ।
मनवाछित दातार, मारजित तीन लोक गुरु ॥
संवौषट् ठ ठ॰ तिष्ट, सुसन्निधि हूजिये ।
गुरु अरिष्टके नाशको, आठ जिनेश्वर पूजिये ॥

ओं ह्रीं गुरु अरिष्टनिवारक अष्ट जिनाः अत्र अवतर अवतर, संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन, अत्र ममसन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक ।

उज्वल जल लीजे, मन शुच कीजे हाटकमय भृंगार भरं ।
जिन धार दिवाई तृषा नसाई, भवजल निधि वे पार परं ॥
ऋषभ अजित, संभव अभिनन्दन, सुमति सुपारस नाथ वरं ।
शीतलनाथ श्रेयांस जिनेश्वर, पूजत सुरगुरु दोष हरं ॥

ओं ह्रीं गुरुअरिष्टनिवारक श्री अष्टजिनेभ्यो जल नि० ।

मलयागिर चन्दन दाह निकन्दन, कुंकुम शुभ ले घनसारं ।
चरचा जिन चरनं, भव तपहरनं मनवाछित सब सुख निकरं ॥ ऋषभ०

ओं ह्रीं गुरुअरिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो चन्दन नि० ।

सरल शाली कृष्ण जीरक, वासुमती जो मन हरनं ।
उभय कोटक, अरु अखण्डित, अखय गुन शिवपद धरं ॥ ऋषभ०

ओं ह्रीं गुरुअरिष्टनिवारक श्रीअष्ट जिनेभ्यो अक्षत नि० ।

चम्पक चमेली, करन केतकी, मालती मरुवो मोल सरं ।
कमल कुमुद गुलाब कुन्दज, सरन जुही शिव तिय वरं ॥ ऋषभ०

ओं ह्रीं गुरु अरिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो पुष्प नि० ।

घेवरहि सुचावर पूवा पुरैया, मोहक फंनी घेवरं ।
सुरहि घृत पय शर्कराजुत, विविध चरु क्षुध क्षयकरं ॥ ऋषभ०

ओं ह्रीं गुरु अरिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो नैवेद्य नि० ।

मणिकर जडित, सुवर्ण थाल ले, कदली सुत घृत माहि तरं ।
दीपक उद्योतं, तम क्षय होतं, जिन गुन लखि भा भारभरं ॥ ऋषभ०

ओं ह्रीं गुरु अरिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो दीप नि० ।

चन्दन अगर, लौंग सुतरंग, विविध द्रव्य लै सुरभितरम् ।
खेवत जिन आगे, पातक भागे, धूवा मिस वसु कर्मजरम् ॥ ऋषभ०

ओं ह्रीं गुरु अरिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो धूप नि० ।

बादाम सुपारी, श्रीफल भारी, चोच मोच कमरख सु वरम् ।
लैके फल नाना, शिव सुख थाना, जिनपद पूजत देत तुरम् ॥ ऋषभ०

ओं ह्रीं गुरु अरिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो फल नि० ।

जल चन्दन फूलम् तन्दुल तूलम्, चरु दीपक ले धूप फलम् ।
वसु विधिसे अरचे, वसु विधि विरचे, कीजे अविचल मुक्ति धरम् ॥ वृ०

ओं ह्रीं गुरु अरिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो अर्घ नि० ।

अडिल्ल छन्द—मन वच काया शुद्ध पवित्र जु हूजिये ।
लेकर आठों दरब आठ जिन पूजिये ॥
मंगलीक वसु वस्तु पूर्ण सब लीजिये ।
पूरन अर्घ मिलाय आरती कीजिये ॥

ओं ह्रीं गुरु अरिष्टनिवारक श्रीअष्टजिनेभ्यो महार्घ नि० ।

जयमाला ।

सुर गुरु दुख नाशन, कमलपत्रासन, वसु विधि वसुजिन पूजकरं ।
भव भव अघहरनं, सब सुखकरनं, भव्यजीव शिवधामकरम् ॥

पद्धड़ी छन्द ।

जय धर्म धुरन्धर ऋषभ धार, जय मुक्ति कामनी कन्त सार ।
जय अजित कर्म अरि प्रबलजान, जय जीत लियो वसु गुणनिधान ॥
जय सम्भव २ दम्भछेद, जय मुक्ति रमा लह्यो अखेद ।
जय अभिनन्दन आनन्दकार, जय जय जय सुख कर्त्ता अपार ॥
जय सुमति देव, देवाधिदेव, जय शुभगति जुत सुरकरहिं सेव ।
जय जय सुपार्श्व सुख परमज्ञान, जय लोकालोक प्रकाशमान ॥
जय जन्म जरा मृतवहि हर्न, जय तिनका हमको नित्य शर्ण ।
जय श्रेय करन श्रेयासनाथ, जय श्रेय सुपद दय मुक्ति साथ ॥

जय जय गुणगरिमा जग प्रधान, जय भव्य कमल परकाश भान।
जय मनसुखसागर नमत शीस, जय सुरगुरु दोपन मेट ईश॥
ओं ह्रीं गुरु अरिष्टनिवारक अष्टजिनेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा—आठ जिनेश्वर पूजते, आठ कर्म दुख जाय।
अष्ट सिद्ध नव निधि लहै, सुरगुरु होय सहाय॥

इति आशीर्वाद:।

शुक्र अरिष्टनिवारक श्रीपुष्पदंत पूजा।

दोहा—पुष्पदंत जिनरायको, भवि पूजौं मनलाय।
मन वच काया शुद्धसो, कवि अरिष्ट मिट जाय॥

अडिल्ल छन्द—गोचरमे ग्रह शुक्र आय जब दुख करै।
पुष्पदंत जिन पूज सकल पातक हरै॥
आह्वानन कर तिष्ठ सन्निधी हूजिये।
आठ द्रव्य ले शुद्ध भावसों पूजिये॥

ओं ह्रीं शुक्र अरिष्ट निवारक पुष्पदत जिन! अत्र अवतर अवतर सवौषट, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ. स्थापन, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक।

सोरठा—निर्मल शीत सुभाय, गंगाजल झारी भरौ।
कवि अरिष्ट मिट जाय, पुष्पदंत पूजा करौ॥
ओं ह्रीं श्रीशुक्रअरिष्टनिवारक श्रीपुष्पदत जिन पंचकल्याणक प्राप्ताय जल नि०।
कुम कुम लेइ घिसाय; कनक कटोरीमे धरैं॥ कवि अरिष्ट०॥
ओंह्रीं श्रीशुक्रअरिष्टनिवारक श्रीपुष्पदत जिन पचकल्याणक प्राप्ताय चन्दन नि०।

तन्दुल अक्षत लाय, भाव सहित तुषपरिहरौ ।। कवि अरिष्ट० ।।

ओंह्रीं श्रीशुक्रअरिष्टनिवारक श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय अक्षत नि० ।

कमल चमेली, जाय, जुही कुन्द जु केवरो ।। कवि अरिष्ट० ।।

ओं ह्रीं श्रीशुक्रअरिष्टनिवारक श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय पुष्प नि०

विजन विविध बनाय, मधुर स्वाद जुत आचरो ।। कवि० अरिष्ट ।।

ओंह्रीं श्रीशुक्रअरिष्टनिवारक श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय नैवेद्य नि० ।

कंचन दीप कराय, कदलीसुत बाती करौं ।। कवि अरिष्ट० ।।

ओं ह्रीं श्रीशुक्रअरिष्टनिवारक श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय दीप नि० ।

अगर कपूर मिलाय, लोंग धूप बहु विस्तरौं ।। कवि अरिष्ट० ।।

ओ ह्रीं श्रीशुक्रअरिष्टनिवारक श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय धूप नि० ।

चोच मोच फल पाय, सरस पक्व लीजे हरो ।। कवि अरिष्ट० ।।

ओं ह्रीं श्रीशुक्रअरिष्टनिवारक श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय पंचकल्याणक प्राप्ताय फल नि० ।

नीरादिक लै आय, अर्घ देत पातक हरो ।। कवि अरिष्ट० ।।

ओं ह्रीं श्रीशुक्रअरिष्टनिवारक श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय पचकल्याणक प्राप्ताय अर्घं नि० ।

जल चन्दन ले फूल और अक्षत घने ।
दीप धूप नैवेद्य सुफल मनमोहने ।।

गीत नृत्य गुण गाय अर्घ पूरण करो ।
पुष्पदंत जिन पूज शुक्र दूषण हरो ।। महा अर्घं०

जयमाला ।

मन वच तन ध्यावो पाप नसावो, सब सुख पावो अघ हरणं
ग्रह दूषण जाई हर्ष बढ़ाई, पुष्पदन्त जिनवर चरणं ।।

पद्धडी छन्द ।

जय पुष्पदन्त, जिनराज देव, सुर असुर सकल मिल करहिं सेव ।
जय फागुन सुदि नौमी बखान सुरपति सुर कल्याण ठान ॥
जय मार्गशीर्ष शशि उदय पक्ष नौमी तिथि जगमे भये प्रत्यक्ष ।
जय जन्म महोत्सव इन्द्र आय, सुरगिर ले इन्द्र न्हवन कराय ॥
जय वज्र वृषभ नाराचदेह, दस शत वसु लक्षण सुनहि गेह ।
जय राजनीति कर राज कीन, मगसरसित पडमा तपसु लीन ॥
जय घात घातिया कर्मधीर, जिन आतम शक्ति प्रकाश वीर ।
जय कातक सुदि दुतिया महान, लहि केवलज्ञान उद्योत भान ॥
जय भव्य जीव उपदेश देय, जग जलधि उबारन सुजस लेय ।
जय भादो सदि आठं प्रसिद्ध हन शेष कर्म प्रभु भये सिद्ध ॥
जय जय जगदीश्वर भये देव, भृगु तनहिं दोष हर करत सेव ॥
जय मन वाञ्छित तुम करत ईश, मन शुद्ध जलधि तुमनमत शीश ॥

ओं ह्रीं श्रीशुक्रअरिष्टनिवारक श्रीपुष्पदन्त जिन पंचकल्याणक प्राप्ताय अर्घं नि० ।

सब गुण अधिकारी दूषण हारी, मारी रोगादिक हरनं ।
भृगु सुत दुख जाई पाप मिटाई, पुष्पदन्त पूजत चरनं ॥

इति आशीर्वाद

शनिअरिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन पूजा ।

दोहा—जन्म लग्न गोचर समय, रवि सुत पीड़ा देय ।
तब मुनिसुव्रत पूजिये, पातक नाश करेय ॥

अडिल्ल छन्द—मुनिसुव्रत जिनराज, काज जिन करनको ।
सूर्य पुत्र ग्रह क्रूर, अरिष्ट जु हरनको ॥

आह्वानन कर तिष्ठ ठः ठः करो।
होय सन्निधि जिनराय, भव्य पूजा करो॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक।

चाल कातक।

प्राणी गंगोदक ले सीयरो, निर्मल प्रासुक ले नीर हो।
प्राणी झारी भर त्रय धारदे, जासे कर्म-कलंक मिटाय हो॥
प्राणी मुनिसुव्रत जिन पूजिये॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन पंचकल्याणक प्राप्ताय जल नि०।

प्राणी चन्दन घिस मलियागिरी, अरु कुमकुमतामें डार हो।
प्राणी जिनपद चरचो भावसों, जासों जन्म जरा जर जायहो॥
प्राणी मुनिसुव्रत जिन पूजिये॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन पंचकल्याणक प्राप्ताय चन्दन नि०।

प्राणी उज्ज्वल शशिसम लीजिये, एजी तन्दुल कोट समान हो।
प्राणी पांच पुंज दे भावसों, अक्षय पद सुखदाय हो॥
प्राणी मुनिसुव्रत जिन पूजिये॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन पंचकल्याणक प्राप्ताय अक्षत नि०।

प्राणी बेल चमेली केवड़ा करना कुमुद गुलाब हो॥
प्राणी केतकी दलले पूजिये, तब कामबाण मिट जाय हो॥
प्राणी मुनिसुव्रत जिन पूजिये॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन पंचकल्याणक प्राप्ताय पुष्प नि०।

प्राणी विंजन नाना भांतिके, एजी षट् रस कर संयुक्त हो।
प्राणी जिनपद पूजो भावसों, तब जाय क्षुधादिक रोग हो॥
प्राणी मुनिसुव्रत जिन पूजिये॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्टनिवारक श्रीमनिसुव्रत जिन पचकल्याणक प्राप्ताय नैवेद्य नि०

प्राणी रतन जोत तम नाशनी, कर दीपक कंचन थार हो।
प्राणी जिन आरतीकर भावसो एजी भव आरत तम जायहो॥
प्राणो मुनिसुव्रत जिन पूजिये॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्ट निवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन पचकल्याणक प्राप्ताय दीप नि०

प्राणी चन्दन अगर कपूर ले, सब खेवो पावक माहिं हो।
प्राणी अष्ट करम जर क्षार हों, जिन पूजत सब सख होय हो॥
प्राणी मुनिसुव्रत जिन पूजिये॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन पचकल्याणक प्राप्ताय धूप नि०

प्राणी आम अनार पियूप फल, एजी चोच मोच बादाम हो।
प्राणी फलसों जिनपद पूजिये, एजी पावे शिव फल सार हो॥
प्राणी मुनिसुव्रत जिन पूजिये॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन पचकल्याणक प्राप्ताय फल नि०

प्राणी नीरादिक वसु द्रव्य ले, मन वच काय लगाय हो।
प्राणी अष्टकर्मको नाश है, एजी अष्टमहागुण पाय हो॥
प्राणी मुनिसुव्रत जिन पूजिये॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन पचकल्याणक प्राप्ताय अर्घं नि०।

अडिल्ल छन्द जल चन्दन ले फूल और अक्षत घने।
चरु दीपक बहुधूप महाफल सोहने॥
पूरण अर्घ बनाय जिन आगे हूजिये।
मुनिसुव्रत जिनराय भावसों पूजिये॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन पचकल्याणक प्राप्ताय पूर्णार्घं नि०।

जयमाला।

दोहा—मुनिसुव्रत करन, त्याग करन जगजाल।
शनि ग्रह पीडा हरनको, पढ़ो हर्ष जयमाल॥

पद्धड़ी छन्द ।

जय जय मुनिसुव्रत त्रिजगराय, शत इन्द्र आय माथा नमाय ।
जय जय पद्मावति गर्भे आय, सावन दुतिया हर्ष दाय ॥
जय जय सुमित्र घर जन्म लीन, वैशाख कृष्ण दशमी प्रवीन ।
जय जय दश अतिशय लसत काय,
त्रयज्ञान सहित हित मित कहाय ॥
जय जय तन लक्षण सहस आठ,
भवि जीवन में थुतिकरन पाठ ।
जय जय सौधर्म सुरेश आय,
जन्म कल्याणक करियो सुभाय ॥
जय जय तप ले वैशाख मास,
सुदि दशमी कर्म कलंक नाश ।
जय जय वैशाख जो असित पक्ष,
नौमी केवल लहि जग प्रत्यक्ष ॥
जय जय रचियो तब समवसरन,
सुर नर खग मुनिके चित्त हरन ।
जय छियालीस गुण सहित देव,
शत इन्द्र आय तहां करत सेव ॥
जय जय फागुन बदि द्वादशीय,
शिवथान बसे मुनि सिद्ध लीय ।
जय जय शनि पीड़ा हरन हेत,
मन सुखसागर कर सुख निकेत ॥

ओं ह्रीं शनिअरिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रत जिन अनर्घपद प्राप्ताय अर्घं नि० ।

घत्ता छन्द ।

मुनिसुव्रत स्वामी सब जग नामी, भव्य जीव बहु सुख करनं ।
मन वाछित पूरं पातक चूरं, रविसुतग्रह पीडा हरनं ॥

इति आशीर्वादः ।

राहु अरिष्टनिवारक श्रीनेमिनाथ जिनपूजा ।

गोचर जब आय पीडा करे,
नेमिनाथ जिनराज तब पूजा करे ।
आठ द्रव्य ले शुद्धभाव हि आनके,
श्याम पुष्प मन लाय भक्तिको ठानके ॥
पूजों नेम जिनेश भव्य सित लायके,
राहु देय दुख दुष्ट राशिमें आयके ।
कर आह्वानन तिष्ठि तिष्ठ ठःठ. उच्चरों,
होय सन्निधि शक्ति भक्त पूजा करों ॥

ओं ह्रीं राहु अरिष्टनिवारक श्रीनेमिनाथ जिन अत्र अवतर अवतर संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् परिपुष्पांजलि क्षिपेत् ।

अष्टक ।

गीतका छन्द ।

कनक झारी मणिजडित ले, शीत उदक भरायके ।
प्रभु नेम जिनके चरन आगे, धार दे मन लायके ॥
जब राहु गोचर समय दुख दे, देय दुष्ट स्वभावसों ।
तब नेम जिनके भावसेती, चरन पूजो चावसों ॥

ओं ह्रीं राहुअरिष्टनिवारक श्रीनेमनाथ जिनेन्द्राय जलं० ।

श्रीखण्ड मलय मिलाय केशर कदलि सुत तामे घिसों ।
जिन चरन चरचत भाव धरके, पाप ताप तबै नसों ॥ जब राहु० ॥

ओं ह्रीं राहुअरिष्टनिवारक श्रीनेमनाथ जिनेन्द्राय चन्दन० ।

अक्षत अनूपम सालिसम्भव कनक भाजन लेइये ।
जिन अग्रपूंज चढ़ाय भव जन, एक चित मन देइये ॥ जब राहु० ॥

ओं ह्रीं राहु अरिष्टनिवारक श्रीनेमनाथ जिनेन्द्राय अक्षत० ।

कमल कुन्द गुलाब गुञ्जा, केतकी करना भले ।
सुमन लेके सुमन सेती, पूजते जिन, अघ टले ॥ जब राहु० ॥

ओं ह्रीं राहु अरिष्टनिवारक श्रीनेमनाथ जिनेन्द्राय पुष्प० ।

विंजन विधिरस जनित मनहर क्षुधादूषणको हरे ।
भर थार कचन भावसेती, नेमि जिन आगे धरे ॥ जब राहु० ॥

ओं ह्रीं राहुअरिष्टनिवारक श्रीनेमनाथ जिनेन्द्राय नैवेद्य० ।

मणिमई दीप अनूप भरके, चन्द्र ज्योति सु जगमगै ।
निज हाथ ले प्रभु आरती कर, मोह तम तब ही भगै ॥ जब राहु० ॥

ओं ह्रीं राहु अरिष्टनिवारक श्रीनेमनाथ जिनेन्द्राय दीप० ।

कृष्णागरु लोभान लेके, और द्रव्य सुगन्ध मय ।
जिन चरण आगे अगनिपर धर, धूप धूम पलाय है ॥ जब राहु० ॥

ओं ह्रीं राहु अरिष्टनिवारक श्रीनेमनाथ जिनेन्द्राय धूप० ।

अम्बा बिजोरा नारियल, श्रीफल सुपारी सेवकी ।
फल ले मनोहर सरस मीठे, पूजले जिनदेव की ॥ जब० राहु० ॥

ओं ह्रीं राहुअरिष्टनिवारक श्रीनेमनाथ जिनेन्द्राय फल० ।

जल गन्ध अक्षत पुष्प सुरभित, चरु मनोहर लीजिये ।
दीप धूप फलौघ सुन्दर, अर्घ जिन पद दीजिये ॥ जब राहु० ॥

ओं ह्रीं राहुअरिष्टनिवारक श्रीनेमनाथ जिनेन्द्राय अर्घ० ।

अडिल्ल छन्द—आठ द्रव्य ले सार नेम प्रभु पूजिये ।
राहु होय ग्रह शान्ति पाप सब धूजिये ॥

मैं पूजों मल्लि जिनेश, पारस सुखकारी।
ग्रहकेतु अरिष्टनिवारक, मनसुख हितकारी॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्ट निवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जल नि०।

श्री खण्ड मलय तरु ल्याय, कदलीसुत डारी।
घिस केसर चरणनि ल्याय, भव आतप हारी॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं श्रीकेतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय चन्दन।

तन्दुल अक्षत अविकार, मुक्ता सम सोहैं।
भरले हाटक मय थाल, सुर नर मन मोहैं॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षत नि०।

लै फूल सुगन्धित सार, अलि गुञ्जार करै।
पदपङ्कज जिनहिं चढ़ाय, काम बिथा जु हरै॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पुष्प नि०।

विंजन बहुत प्रकार, षट्रस स्वाद भई।
चरु जिनवर चरण चढ़ाय कञ्चन थार लाई॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नैवेद्य नि०।

मणि दीपक तूप भराय, चन्द्रकनी बाती।
जग ज्योति जहां लायक, मोहतिमिर घाती॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय दीप नि०।

कृष्णागरु चन्दन लाय, धूप दहन खेई।
मोहित सुरगण ह्वै जाय रुचि सेती लेई॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय धूप। नि०।

बहु चोच मोच बादाम, श्रीफल फल देई।
अमृत फल सुख बहु धाम, लीजे मन लाई॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय फल नि०

जय जय बस विधि विधि सकल नास,

लहि सुख अनन्त शिव लोक वास ॥

जय जय अजरामर पद प्रधान,

हो त्रिभुवन पति लोकाग्र थान।

जय जय छाया सुत परिहरान,

मनसुख समुद्र जु गहिये शरान ॥

ओं ह्रीं राहु अरिष्टनिवारक श्रीनेमनाथ जिनेन्द्राय अर्घ ।

घत्ता छन्द।

भव जन सुखदाई होउ सहाई, मन वच काया गावत हों।

सब दूषण जाई पाप नसाई, नेम सहाई ध्यावत हो ॥

आशीर्वादः ।

अरिष्टनिवारक श्रीमल्लि, पार्श्वनाथ पूजा।

दोहा—केतु आय गोचर विखे, करे इष्टकी हान।

मल्लि पार्श्व जिन पूजिये, मन वांछित सुख खान॥

अडिल्ल—मल्लि पार्श्व जिन देव सेव, बहु कीजिये।

भक्ति भाव वसु द्रव्य शुद्ध कर लीजिये॥

आह्वानन कर तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः करौं।

मम सन्निधि कर पूजा हर्ष हियमे धरौं॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिन अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ ठ ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चाल नंदीश्वर।

उत्तम गंगाजल लाय, मणिमय भर झारी।

जिन चरण धार दे सार, जन्म जरा हारी॥

मैं पूजां मल्लि जिनेश पारस सुखकारी।
ग्रहकेतु अरिष्टनिवारक, मनसुख हितकारी॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्ट निवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जल नि०।

श्री खण्ड मलय तरु ल्याय, कदलीसुन डारी।
घिस केसर चरणनि ल्याय, भव आतप हारी॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं श्रीकेतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जनेन्द्राय चन्दन।

तन्दुल अक्षत अविकार, मुक्ता सम सोहैं।
भरले हाटक मय थाल, सुर नर मन मोहैं॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षत नि०।

ले फूल सुगन्धित सार, अलि गुञ्जार करै।
पदपङ्कज जिनहिं चढ़ाय, काम विर्था जु हरै॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पुष्प नि०।

विजन वहुत प्रकार, पटूरस स्वाद भई।
चरु जिनवर चरण चढाय कञ्चन थार लाई॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नैवेद्य नि०।

मणि दीपक तूप भराय, चन्द्रकनी वाती।
जग ज्योति जहां लायक, मोहतिमिर घाती॥ मैं पूजो०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय दीप नि०।

कृष्णागरु चन्दन लाय, धूप दहन खेई।
मोहित सुरगण ह्वै जाय रुचि सेती लेई॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय धूप। नि०।

वहु चोच मोच बादाम, श्रीफल फल देई।
अमृत फल सुख वहु धाम, लीजे मन लई॥ मैं पूजों०॥

ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय फल नि०

जल चंदन सुमन सुलेय, तन्दुल अघहारी।
चरु दीप धूप फल लेइ, अर्घ करूं भारी ॥ मैं पूजों०
ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घं नि०।
अडिल्ल छन्द—ले वसु द्रव्य विशेष सु मंगल गायके।
गीत नृत्य करवाय जु तूप बजायके॥
मनमें हर्ष बढ़ाय, अर्घ पूरण करौं।
केतु दोषको मेट पाप सब परिहरौं॥
ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय महाअर्घं नि०

अथाष्टक।

जय मल्लि जिनेसुर सेव करे सु, पार्श्वनाथ जिन चरण नमों।
मन वच तन लाई अस्तुति गाई, करौं आरती पाप थामों।

पद्धड़ी छन्द।

जय जय त्रिभुवनपति देव देव, इन्द्रादिक सुरनर करहिं सेव।
जयजय जिन गुणज्ञायक महंत, गुणवर्णन करत न लहत अंत॥
जय जय परमातम गुण अरिष्ट भवपद्धति नाशन परम इष्ट।
जयजय अष्टादश दोष नाश कर दिनसम लोकालोक भास॥
जयजय वसु कर्म कलंक छीन, सम्यक्त आदि वसु सुगुण लीन।
जय जय वसुप्रतिहारज अनूप, वसुनी शुभ भूमिके भये भूप॥
जय जय अदेह तुम देह धार, वर्णादि रहित है रूप सार।
जय जय अजराम पद प्रधान, गुण ज्ञान अलोकालोक भान॥
जयजय सुख सातावोध दर्श, निज गुण-जुतपर गुण नहीं पर्श।
जय जय चित शुद्ध समुद्र सार, कर जोर नमो हों बार बार॥
ओं ह्रीं केतु अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घं नि०

आशीर्वादः

अथ नवग्रह शांति स्तोत्र ।

जगद्गुरुं नमस्कृत्य, श्रुत्वा सद्गुरुभाषिते ।
ग्रहशाति प्रवक्ष्यामि, लोकाना सुखहेतवे ॥
जिनेन्द्राः खेचरा ज्ञेया, पूजनीया विधिक्रमात् ।
पुष्पंविलेपनंधूपैनैवेद्यै स्तुष्टिहेतवे ।
पद्मप्रभस्य मार्तंडश्चन्द्रश्चन्द्रप्रभस्य च ॥
वासुपूज्यस्त भूपुत्रो, वुधश्चाष्टजिनेशिना ।
विमलानन्तधर्मेश, शातिकुन्थनमेस्तथा ॥
वर्धमानजिनेंद्रस्य पादपद्मं वुधो नमेत् ।
ऋषभाजिनसुपार्श्वा· साभिनन्दनशीतलौ ।
सुमतिः सम्भवस्वामी, श्रेयासेषु वृहस्पति ॥
सुविधिः कथित· शुक्रे सुव्रतश्च शनिश्चरे ।
नेमनाथो भवेद्राहीः, केतुः श्रीमल्लपा'र्श्वयोः ॥
जन्मलग्नं च राशि च, यदि पीडयन्ति खेचरा ।
तदा संपूजयेद्धीमान, खेचरान् सहतान् जिनान् ॥
आदित्यसोममगल, वुधगुरुशुक्रे शनिः (?)
राहुकेतु मेरवाग्रे या, जिनपूजाविधायक ॥
जिना नमोग्न तयोहि, ग्रहाणा तुष्टिहेतवे ।
नमस्कारशत भक्त्या जपेदष्टोत्तरं शतं ॥
भद्रवाहुगुरुर्वाग्मी, पंचम· श्रुतकेवली ।
विद्याप्रसादत पूर्वं ग्रहशांतिविधिः कृता ॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय, शुचिर्भूत्वा समाहित ।
विपत्तितो भवच्छातिः क्षेमं तस्य पदे पदे ॥